आचार्य दीनानाथ सिद्धान्तालंकार

भारत की प्राचीन नीतियां

भारत की प्राचीन नीतियाँ

किताब घर

भारत की प्राचीन नीतियाँ

(राष्ट्र-रक्षा के लिए तथा देश में अनुशासित जनतन्त्र और सच्चा लोकतन्त्र चलाने के लिए शस्त्र और शास्त्र दोनों की आवश्यकता होती है। यह ग्रन्थ संस्कृत के प्राचीनतम ग्रन्थों में से नीतियों का संकलन है। इस ग्रन्थ से भारत के वरिष्ठ नेता तथा प्रशासकों को मार्गदर्शन मिलेगा। इस ग्रन्थ को नई उपलब्धि, भारत की सम्पदा तथा देश की आत्मा कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगा।)

लेखक
आचार्य दीनानाथ सिद्धान्तालंकार

प्रकाशक
किताबघर दिल्ली-31

प्रकाशक □ किताबघर
मेन रोड, गांधीनगर
दिल्ली-११००३१

संस्करण □ १९७६

मूल्य □ पच्चीस रुपये

मुद्रक □ वार्ष्णेय प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली-११००३२

BHARAT KI PRACHIN NITIYAN (Hindi)

By : Acharya Dinanath Sidhantalankar Price Rs. 25·00

सत्यमेव जयते

भारत के उपराष्ट्रपति
महामहिम बसप्पा दानप्पा जत्ती

"भारत की प्राचीन नीतियाँ" ग्रन्थ को इन दिनों में जो कुछ थोड़ा-बहुत पढ़ पाया हूँ, उससे मैं यह कह सकता हूँ कि इस ग्रन्थ के संकलन के लिए भारतीय दर्शन-शास्त्रों का गहराई से अध्ययन किया गया है और उसमें वैदिक धर्म के मूल-भूत सिद्धान्तों की पृष्ठ-भूमि में उन ही सर्व-उपयोगी नीतियों का संकलन किया है जो समय और औचित्य की दृष्टि से आज की परिस्थितियों में भी उतनी ही तर्क-संगत और मूल्यवान हैं, जितनी प्रचीन युग में थे। इसके लिए मैं लेखक तथा प्रकाशक को बधाई देता हूँ।

देश की स्वतंत्रता के बाद अन्तर्देशीय और अन्तर्राष्ट्रीय नीति निर्धारण में मानवीय पक्ष को ही हमारे राष्ट्र-नायकों ने सामने रखा, किसी एक वर्ग, जाति, सम्प्रदाय अथवा धर्म के वर्चस्त्र के स्थान पर उसे समानता का प्रबल आधार प्रदान किया। इसके लिए हमने चार आदर्श अपनाए। प्रथम है—लोकतंत्र, द्वितीय है—समाजवाद, तृतीय है—धर्म-निर्पेक्षता और चौथा है गुट निर्पेक्षता। इस नीति निर्धारण में हमें सबसे बड़ी सहायता भारतीय वांङ्मय की अमूल्य निधि से मिली है। हम यदि अपने प्राचीन ग्रंथों में उपलब्ध जीवन मूल्यों का आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन कर सकें तो समाज उनसे लाभ उठा सकता है। इस दृष्टि से आचार्य दीनानाथ सिद्धान्तालंकार जी लिखित 'भारत की प्राचीन नीतियाँ' पुस्तक मुझे आशा है कि बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी। किताबघर के प्रबंधक और सदस्यों का इस पुस्तक के प्रकाशन में सहयोग बड़ा सराहनीय है। मुझे खुशी है कि आप नैतिक-शिक्षा, देश-भक्ति, चरित्र-निर्माण तथा भारतीय संस्कृति पर पुस्तकों को प्रकाशित करने का कार्य कर रहे हैं। ऐसी पुस्तकें आधुनिक शैली और भाषा में अधिक मात्रा में छपनी चाहिएँ, जिससे कि भावी पीढ़ी अपने प्राचीन राष्ट्रीय गौरव से परिचित हो और उनमें राष्ट्रीय स्वाभिमान सुदृढ़ हो। इन्हीं शब्दों के साथ मैं पुनः लेखक और प्रकाशक को धन्यवाद देता हूँ।

७ मई, १९७६ —ब० द० जत्ती

सत्यमेव जयते

केन्द्रीय कृषि तथा सिंचाई मन्त्री
भारत सरकार
नई दिल्ली-११०००१

भूमिका

भारतीय वाङ्मय में 'नीति' शब्द एक विशिष्ट अर्थ एवं मूल्य की अभिव्यक्ति करता है। इसे प्रायः अँग्रेज़ी के 'पोलिसी' व 'डिप्लोमेसी' का समानार्थक समझा जाता है। वस्तुतः ऐसा नहीं है। भारतीय वाङ्मय की दृष्टि से 'नीति' शब्द बड़ा व्यापक है। आमतौर से जहाँ यह कर्तव्य का द्योतक है—व्यक्ति के प्रति व्यक्ति का, नागरिक के प्रति व्यक्ति का तथा समाज और राष्ट्र के प्रति व्यक्ति का। कई जगह इसे 'धर्म' शब्द के पर्याय के रूप में भी प्रयुक्त किया गया है।

भारत के प्राचीन मनीषियों और चिन्तकों ने जीवन को अखंडित अविभाज्य और समग्र रूप से ही स्वीकारा है। व्यक्ति का स्वरूप उनके सामने 'समयक् व्यक्तित्व' अर्थात् (Integrated Personality) का ही रहा है। इसकी चौमुखी परिधि में व्यक्ति, परिवार, समाज-राष्ट्र और विश्व अविकल रूप से अन्तर्निहित हैं। जीवन-चक्र इन सब धुरियों में पारम्परिक समन्वय, सहयोग सह-अस्तित्व और सन्तुलन—इन चारों के प्रस्थापन की विद्या का नाम ही नीति है। जगत के दो पार्श्व—चेतन-अचेतन—इन दोनों तटों में मर्यादित मानव-जीवन-सरिता किस प्रकार सतत् कुशलता से प्रवाहित होती हुई सुख, आनन्द की परिणति उपलब्ध कर सके—यही भारत का नीति-शास्त्र बताता है।

इस समय कई नीति-ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इन्हें 'स्मृति' भी कहा जाता है। इनमें कुछ प्राचीन और कई नवीन भी हैं। इन स्मृतियों और नीति-ग्रन्थों में कई जगह आभ्यन्तरिक विरोध भी पाया जाता है। इनमें समय-समय पर मिलावट व प्रक्षेप न हुआ हो—ऐसा नहीं कहा जा सकता। परिस्थितियों और युग के अनुरूप बनाने के लिए इनमें समय-समय पर संशोधन और परिवर्धन भी किये जाते रहे हैं। मूल और संशोधित दोनों स्वरूप पाये जाते हैं। अधिकांश में यह कहना आसान नहीं कि कौन मूल है और कौन संशोधित। विख्यात नीति प्रणेता के नाम से दूसरों ने भी कुछ अपनी बातें नीति-शास्त्रों में घुसेड़ी। अतः परस्पर विरोधी तथ्यों और आचारों का प्रतिपादन नीति-शास्त्रों में मिलना कोई आश्चर्य का विषय नहीं। जन्मूलक वर्ण-व्यवस्था जात-पात के विषय भेद, सवर्ण, असवर्ण की घृणामूलक ऊँची दीवारें, सवर्णों का वर्चस्व और असवर्णों के प्रति अमानुषिक और नृशंस व्यवहार, नारी के प्रति हीन भावना—इत्यादि उग्र पक्षपात पूर्ण वचन इन उपलब्ध स्मृति व नीति-ग्रन्थों में प्राचुर्य से पाये जाते हैं। हिन्दू

समाज की मान्यताएँ सम्पूर्ण भारतीय समाज को प्रभावित करती आ रही हैं। परिणामतः हिन्दू जाति को ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भारतीय समाज को भारी क्षति का शिकार, सदियों से, बनना पड़ रहा है।

फिर भी, मेरा विश्वास है, यह नीति-ग्रन्थ मानव समाज के लिए अविकल कल्याण प्रेरक सामग्री के भण्डार हैं और इनकी सांगोपांग जानकारी आज के युग में भी अत्यन्त उपादेय व हितकारी है। वैज्ञानिक प्रणाली से यदि उपलब्ध नीति-शास्त्रों के विरोधाभास का युक्तिपूर्ण कारण निकालने का प्रयत्न हो तो नीतियों को शाश्वत आधुनिक तथ्यों के रूप में समाज से स्वीकारा जा सकता है।

'भारत की प्राचीन नीतियाँ'—इस ग्रन्थ के सम्पादन एवं प्रकाशन से इस दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रयास किया गया है। विद्वान् सुधी लेखक ने युक्ति, तर्क, औचित्य और वैदिक धर्म के मूलभूत सिद्धांतों की दृष्टि से इस ग्रन्थ में से उन सब संदर्भों को अलग कर दिया है जो भेद-सूचक ऊँच-नीच द्योतक और समाज के किसी भी वर्ग के प्रति तनिक भी घृणा, विषमता व हीनता सूचक हैं। इस पुस्तक के विद्वान् सम्पादक का यह सराहनीय प्रयास है।

मेरा विश्वास है, इस परिपेक्ष में यह ग्रन्थ आज के प्रबुद्ध पाठक-वर्ग के लिए विशेष स्फूर्तिप्रद होता हुआ भारत के नव-समाज निर्माण के लिए दिशा निर्देश करने में अनवरत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

५ अप्रैल, १९७६ —जगजीवनराम

लेखक के दो शब्द

मानवजीवन बड़ा पेचीदा है। इसका सम्बन्ध केवल एक व्यक्ति से नहीं किन्तु परिवार, समाज, राष्ट्र, देश, विश्व—ये सब मानव को केन्द्र बिन्दु मानकर उसकी विशाल परिधि का निर्माण करते हैं। स्थावर और जंगम सृष्टि भी मानव के साथ आवद्ध है। इससे मानवता वरीयता के पद पर अभिषिक्त तो हो जाती है पर साथ ही, अविच्छिन्न रूप से, भारी दायित्व का कांटेदार मुकुट भी उसे अपने सिर पर रखने के लिए बाध्य होना पड़ता है। दोनों में अविरोध, सामंजस्य और सन्तुलन रखना ही मानव का एकमात्र अनिवार्य कर्त्तव्य है। अक्षरों के रूप में इसे लिख देना तो सहज है पर इसे, सतत परिवर्तनशील परिस्थितियों, परिवेशों और युग-युग में प्रादुर्भूत हो रहे उल्टे-सीधे, टेढ़े-मेढ़े कोणकों के साथ समन्वित करना अत्यन्त दुरूह और दुष्कर है।

नीति-शास्त्र ही, एकमात्र, इन अनगिनत समस्याओं से समावृत्त इस ऊँच-नीच मार्ग में सही दिशा का अवबोधक और पथ-प्रदर्शक है। नीति-शास्त्र क्या है? इसके अन्तर्गत इहलौकिक आचार-व्यवहार विश्व इतिहास पर आधारित उत्तम जीवन-यात्रा के संकेत, सृष्टि में घटित होने वाली मानव व मानवेतर सम्बन्धी घटनाएँ, सृष्टि क्रम और सृष्टि नियम पर आधारित विश्व के समूचे मानव समुदाय के व्यक्ति और समष्टि सम्बन्धी कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य सम्बन्धी निर्देश इत्यादि सब समाविष्ट हैं। संक्षेपतः, धर्म, अर्थ और काम—इस विषय का अविकल व्याख्यान इस नीति-शास्त्र के अन्तर्भुक्त है। शुक्राचार्य के शब्दों में—

सर्वोपजीवकं लोके स्थिति कृन्नीति शास्त्रकम्।
धर्मार्थ काममूलं हि स्मृतं मोक्षप्रदं यतः॥ शुक्रनीति १/५

अर्थात् – नीति-शास्त्र वह है जो लोक में स्थित रहने के लिए सब का मार्ग दर्शक और धर्म, अर्थ, काम की पूर्ति का साधन होता हुआ मोक्षप्रद है।

नीति-शास्त्र का मूल, बीज रूप में, तो सार्वभौम ईश्वरीय ज्ञान वेद में है। वेद चतुष्टय में अनेक मंत्र जीवन प्रेरक और उन्नायक नीति तत्त्वों से आपूरित हैं। उदाहरण के लिए केवल एक मन्त्र यहाँ प्रस्तुत है—

ओ३म् । अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥

ऋग् मंडल १०, सूक्त ६३, मंत्र ११

भावार्थ—हे शुद्ध चरित्र पुरुषो ! आप सब प्रकार के (दुरित) पापों से छुड़ा कर सुनीतियों—धर्म युक्त उत्तम आचरण द्वारा सुमार्ग दिखाते हो । ऐसा (मर्त्तः) मनुष्य समूह कभी हार न मानता हुआ संसार में सदा प्रजाजन सहित आगे बढ़ता जाता है ।

भारत के प्राचीन आचार्यों और ऋषि-मुनियों ने वेद में बीज रूप से निर्दिष्ट नीति शिक्षाओं की पृष्ठ भूमि में, अपने काल की वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय और जागतिक परिस्थितियों के अनुसार जो सिद्धान्त उपबृंहण किए हैं वे, आज भी, इस तथाकथित नई और अनेक प्रकार से सर्वथा विपरीत सभ्यता के युग में, अत्यन्त उपादेश और नव दिशा प्रेरक हैं ।

भारत के इन प्राचीन मनीषियों द्वारा रचित नीति सम्वन्धी अनेक ग्रन्थ हैं । पर, इस समय कुछ ही उपलब्ध हैं । वैसे तो वाल्मीकि रामायण और महाभारत-नीति शिक्षाओं की दृष्टि से समुद्रवत् हैं । महाभारत तो, विशेषतः अनगिनत नीति उपदेशों का भण्डार है । हमने अपने इस ग्रन्थ में रामायण और महाभारत के विशिष्ट अंशों का, वर्तमान काल को दृष्टि में रखते हुए, संकलन किया है । अपौरुषेय और सार्वभौम ईश्वरीय ज्ञान होने और नीति के मूलभूत तत्त्वों का उद्गम स्थान होने से वेद के कुछ विशिष्ट निर्देशक मन्त्रों के भावार्थ का ही हमने इस पुस्तक में संग्रह किया है । इसके बाद ही, ऋषि-मुनि कृत उपनिषदों सहित १२ स्मृतियों में से विविध प्रकार के और बहुमुखी नीति सिद्धान्तों का विशद रूप से संकलन किया गया है ।

हिन्दी में अभी तक इस प्रकार के प्राचीन भारत की नीतियों के संग्रह, ग्रन्थ रूप में प्रकाशित नहीं हुए हैं । पृथक्-पृथक् रूप से तो कुछ नीति ग्रन्थ उपलब्ध हैं । इस ग्रन्थ में प्राचीन भारत की नीतियाँ जो मूल रूप से संस्कृत भाषा में छपी हुई हैं उनको हिन्दी भाषा में संकलित किया गया है, जिससे सभी लोग लाभान्वित हो सकें । आशा है हिन्दी जगत् में इस सत् साहस का स्वागत किया जाएगा ।

—दीनानाथ सिद्धान्तालंकार

विषय-सूची

उपशीर्षक

(अध्याय ८)

(अध्याय ९)

४. वाल्मीकि रामायण

(बालकाण्ड)

(अयोध्याकाण्ड)

(अरण्यकाण्ड)

(किष्किन्धाकाण्ड)

७. कणिक नीति

(महाभारत आदि पर्व अध्याय १४६ और शांति पर्व अध्याय १४० के अन्तर्गत)

८. नारद नीति

(महाभारत सभा पर्व अध्याय ५)

९. दण्ड नीति

महाभारत शान्ति पर्व (अध्याय १५) अर्जुन-युधिष्ठिर संवाद

१०. कौटिल्य अर्थशास्त्र

(अध्याय १) चाणक्य सूत्र

(अध्याय २)

(अध्याय ३)

वेद

चारों वेदों में नीति-शिक्षाओं के तत्त्व, सूत्र रूप में, निर्दिष्ट हैं। प्राचीन भारत के ऋषि-मुनियों ने उन्हीं के आधार पर अपने काल और स्थान के परिवेश में स्मृति ग्रन्थों और नीति-शिक्षाओं का निरूपण किया है। सूत्र रूप से वेदों में पूरी संख्यायें नीति वचन अंकित हैं। इन शिक्षाओं में से हम यहाँ कुछ का ही, उल्लेख कर रहे हैं। व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र, राजधर्म—इन विषयों पर वेद क्या पथ-प्रदर्शन करता है—इन पृष्ठों में पढ़िए—

१. व्यक्तिगत

[१] मनुष्य! आयु को यज्ञ की भावना से सम्पन्न कर। तुम्हारा प्रत्येक श्वास प्रश्वास यज्ञ से बलवान् होकर यज्ञ में ही लगे। चक्षु, श्रोत्र, वाक्, मन और आत्मा सब यज्ञमय हों और यज्ञ भी यज्ञ की भावना से युक्त हो। (यजु १८/२९)

यज्ञ का अभिप्राय है, त्याग, सेवा और परोपकार पूर्ण जीवन।

[२] तू कौन है? तू कौन सा है, तू किसका है? किस नाम और शक्ति वाला है? (यजु ७/२९)

सबसे पूर्व अपने आपको पहचानना मानव के लिए आवश्यक है।

शरीर में ही अमृत रस का प्रवाह

[३] यह शरीर रूपी पुरी व्यापक जीवन शक्ति से, अमृत से आवृत है। शरीर में स्थित देवगण—दिव्य शक्तियाँ—इसका पान करने वाली हों। (अथर्व १०/२/२९)

सात ऋषि

[४] सात ऋषि इस शरीर में स्थित हैं। यह सातों इस शरीर की निरन्तर रक्षा कर रहे हैं। यह सुप्त अवस्थायें शरीर में स्थित सातों ऋषि—जीवात्मा को प्राप्त हो जाते हैं। (यजु ३४/५५)

मेरा यह शरीर स्वस्थ बलिष्ठ हो

यह सात ऋषि हैं, पाँच ज्ञानेंद्रियाँ, मन और बुद्धि।

[५] मेरा शिर दिव्य चिन्तन (श्री) युक्त है, मेरा मुख यशस्वी एवं उज्ज्वल है। दाढ़ी-मूँछ परिपक्व हैं, शरीर का राजा प्राण अमृत का पान करता है, चक्षु दिव्य प्रकाश युक्त हैं; कान सुनने में विराट् शक्ति युक्त हैं, जिह्वा भद्र बोलने वाली है, मन तेजस्वी, मेरे अंग-प्रत्यंग, मेरी अंगुलियाँ हर्ष युक्त हैं। मेरी बाहुओं में बल, इन्द्रियों में ऐश्वर्य और हाथों में कर्म और पराक्रम और मेरे आत्मा में बल है। मेरी पीठ, मेरा उदर, कंधे, ग्रीव। कटि प्रदेश, नाभि केन्द्र, जंघा, घुटने, पैर—सब सशक्त और मेरे आत्मा के नियंत्रण में हैं। (यजु २०/५६)

२. पारिवारिक

व्यक्तिगत जीवन के बाद पारिवारिक जीवन प्रारम्भ होता है। उत्तम और सुखी परिवार ही उन्नत और विकसित समाज के आधार हैं। माता-पिता, भाई-बहिन, पुत्र-पुत्री, पति-पत्नी इत्यादि मुख्य तथा इनके अवान्तर सम्बन्धों से परिवार की चारदीवारी खड़ी होती है। प्रत्येक व्यक्ति पारिवारिक दृष्टि से इन कोमल और स्नेहमय तन्तुओं से एक-दूसरे से आवद्ध है। वेद में इन स्नेहपाशों को सुमधुर, सुदृढ़ और सुव्यवस्थित करने के लिए अनेक शिक्षाएँ देने के साथ उपाय भी बताए गए हैं। इस सम्बन्ध में, दिग्दर्शन के रूप में, कुछ मंत्रों का भावार्थ यहाँ दिया जाता है :—

पुत्र पिता का अनुव्रती

[१] पुत्र पिता के व्रत—श्रेष्ठ आचरण के अनुकूल व्यवहार करने वाला हो, माता के साथ उसकी मानसिक एकता हो। पति-पत्नी एक-दूसरे के प्रति मीठी और शान्ति रसपूर्ण वाणी का व्यवहार करने वाले हों। (अथर्व ३/३०/२)

पति-पत्नी की घोषणा

[२] पति-पत्नी समाज के सम्मुख घोषणा करते हैं —

हम दोनों के हृदय दो जलों के मिल जाने के समान सर्वथा एक रूप हों, हम दोनों की प्राण शक्ति में समानता हो, हम दोनों एक-दूसरे को अच्छी प्रकार धारण करने वाले हों, हम दोनों एक-दूसरे के वचनों को अच्छी प्रकार ग्रहण और धारण करने वाले हों।

पौत्र-नातियों से खेलने वाले बनो

[३] इसी गृह जीवन में तुम दोनों तत्पर रहो। कभी एक-दूसरे से पृथक् न होवो। सम्पूर्ण आयु प्रबल आशा और उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करो। इस प्रकार

पुत्र, पौत्र, नातियों के साथ खेल-कूद करते हुए अपने गृहाश्रम में आनन्दित रहो।
(ऋग् १०/८५/४२)

गृहस्थाश्रम में सदा प्रसन्न

[४] हे स्त्री पुरुषो ! जैसे सूर्य सुन्दर प्रकाशयुक्त प्रभात वेला को प्राप्त होता है, वैसे सुख पूर्वक, समाज पालन आदि क्रिया को अच्छी प्रकार जानने वाले, सदा हँसते आनन्द प्रसन्न रहते, धर्म व्यवहार में अच्छी प्रकार चलते, और अच्छे गृहों में रहते हुए उत्तम सन्तानों के साथ गृहाश्रम के पारस्परिक व्यवहारों का पालन करो।
(अथर्व १४/२/४३)

भाई-बहिन में द्वेष न हो

[५] भाई भाई से कभी द्वेष न करे, बहिन बहिन से द्वेष, ईर्ष्या न करे, सम्यक् प्रकार से एक मन और एक प्रकार के जीवन उद्देश्यों के साथ एक-दूसरे के प्रति कल्याणी वाणी का व्यवहार करो। (अथर्व ३/३०/३)

परिवार में प्रेम का वातावरण

[६] परिवार में सबके हृदयों में प्रीति, प्रेम हो, सबकी मानसिक एकता हो, पारस्परिक द्वेष की भावना न हो, जैसे सद्य: जात बछड़े के साथ गौ वात्सल्य प्रकट करती है, ऐसे ही परिवार में सब एक-दूसरे को प्रेम से ग्रहण करने वाले हों।
(अथर्व ३/३०/१)

घर में पशु-अन्न आदि हों

[७] हमारे घर में गौ और भेड़ बकरी आदि उत्तम पशु दूध देने वाले हों, हमारे घरों में अनेक प्रकार के अन्न के भंडार हों। इस प्रकार यह घर हमारे और तुम्हारे लिए शक्ति प्रदान करने और व्यावहारिक एवं पारमार्थिक दोनों प्रकार का सुख देने वाला हो। (यजु ३/४३)

३. सामाजिक और राष्ट्रीय

समाज का स्वरूप

[१] हे भगवान् ! हमारे राष्ट्र में ब्रह्म से तेज युक्त ब्रह्म वेत्ता—ब्राह्मण-उत्पन्न हों। शूर और शस्त्रास्त्र में कुशल, शत्रु को अति उद्विग्न करने वाले महारथी राष्ट्रहित-कारी क्षत्रिय पैदा हों। दूध देने वाली गौ, भार उठाने वाला बैल, रथ ले जाने वाला शीघ्रगामी घोड़ा, अति बुद्धिमती नारी और यजमान की विजयशील, रथ पर आरूढ़,

सभ्य, सभा संचालन में चतुर युवा, वीर सन्तान उत्पन्न हो, हमारे कल्याण के लिए बादल बरसें, हमारी औषधियाँ, अन्न, फल-फूल समयानुसार पकें और हम पूर्ण योग क्षेत्र में समर्थ और सिद्ध हों। (यजु २२/२२)

चारों वर्णों में सहयोग

[२] मुझे विद्वानों (ब्राह्मणों) में प्यारा कर, मुझे राजन्य (राजा, क्षत्रियों) में प्यारा कर, सब देखने वालों में प्यारा कर, और शूद्र और वैश्य में प्यारा कर।
(अथर्व १६/३२/१)

[३] हे भगवान् ! हमारे ब्राह्मणों—विद्वानों में तेज डाल, हमारे राजाओं और क्षत्रियों को तेज प्रदान कर, वैश्यों और शूद्रों को तेज दे और मुझे तेज से युक्त कान्तिमय बना। (यजु १८/४८)

४. ज्ञान और बल के साधन सबके लिए

[१] एक विचार वाले और समान भाव वाले मित्रो ! उठो, जागो। एक स्थान पर रहने वाले तुम सब ज्ञान और बल के साधनों को क्षमता से जागृत करो। अर्थात्, शिक्षा, विद्या प्रचार आदि संस्थाओं और यज्ञ आदि श्रेष्ठ कार्यों को मिल कर करो। इससे तुम्हारे सामाजिक और राष्ट्रीय बल की वृद्धि होगी।

तुम्हारे नेता और प्रमुख व्यक्ति कैसे हों—इस मंच के दूसरे भाग में प्रभु कहते हैं—क्रियाशील, तेजस्वी, कान्ति युक्त, दिव्य गुण युक्त, नेता ऐश्वर्य सिद्धि के लिए सदा प्रयत्नशील हो। (ऋग् १०/१०/११)

राष्ट्र में प्रत्येक के लिए अन्न

[२] हे समान भावना वालो ! तुम सब आनन्द देने वाली क्रियाएँ करो। श्रेष्ठ कर्म और ज्ञान को सब प्रकार से चारों ओर फैलाओ। राष्ट्र रूपी नौका को शत्रुओं से बचाकर तुम पार ले जाओ। समाज के प्रत्येक सदस्य के लिए अन्न की व्यवस्था करो। राष्ट्र को प्रबल आयुधों से सुसज्जित करो। आगे चलने के लिए प्रेरक सामूहिक यज्ञ को उत्तमता से संगठित करो। (ऋग् १०/१०/२)

पुण्य देश

[३] जिस राष्ट्र में ज्ञान शक्ति और कर्मशक्ति (शूरवीरता) एक रस हो विचरते हैं, जहाँ व्यवहार कुशल विद्वान् नेता धैर्य और बल के साथ नेतृत्व करते हैं, उस देश को पुण्य माना जाता है। (यजु २०/२५)

एक धुरी में सब बँधे रहें

[४] राष्ट्र में जो प्रमुख, विचारशील, मिलकर कार्य सिद्ध करने वाले हैं, वे सब एक धुरी में रह कर विचरते हुए कभी आपसी संघर्ष में न आएँ। तुम्हें प्रभु आदर्श देते हैं—सब एक-दूसरे के लिए परस्पर मधुर बोलते हुए आगे आओ। समान मन वाले तुम सबको, मैं समान लक्ष्य की ओर गतिशील करता हूँ।

खान-पान पूजन में एकता

[५] प्रभु आदेश देते हैं—हे राष्ट्रवासियो ! तुम्हारे पेय पदार्थों के स्थान एक समान हों; तुम्हारा भोजन-सेवन एक साथ हो, तुम सबको मैं एक लक्ष्य में बाँधता हूँ। तुम एक गति वाले होकर ज्ञान का संग्रह करो और मिलकर भगवान् का पूजन करो, जिस प्रकार रथ के अरे सब ओर से रथ की नाभि के धुरे का सेवन करते हैं।

(अथर्व ३/३०/३)

५. समाज के चार अंग

[१] इस समाज का मुख स्वरूप ब्राह्मण है, भुजाएँ क्षत्रिय तुल्य हैं, इस समाज का मध्य स्थान वैश्य हैं और पैर तुल्य शूद्र होता है। (यजु ३१/११)

समाज एक विराट् पुरुष तुल्य है और चार भागों में समान रूप से विभक्त है।

६. राष्ट्र की उन्नति का मूल—संगठन

ऋग्वेद के अन्तिम सूक्त के चार मंत्र—

[१] हे सुख वर्षक, सर्वोन्नति साधक, सर्वज्ञानाधार, स्वामिन् प्रभो ! सब पदार्थों को, सचमुच, उत्तम रीति से तुम मिलाते हो। हमारे हृदयरूपी भूमि के ठिकाने में तुम उत्तम रीति से प्रकाशित होते हो। हम सब पर तुम उत्तम गुणों के धन की तृप्ति करते रहो। (ऋग् १०/१९१/१)

[२] प्रभु आदेश देते हैं—हे मनुष्यों ! तुम सब एक साथ चलो, एक समान, बिना परस्पर विरोध के, बोलो, तुम सबके मन एक सदृश ज्ञान प्राप्त करें। जिस प्रकार पूर्ण, कर्त्तव्य निष्ठ ज्ञानी, एकता की भावना को समझते हुए अपने कर्त्तव्य का सेवन करते हैं—तुम सब भी ऐसे ही करो। (ऋग् १०/१९१/२)

[३] प्रभु आदेश देते हैं—हे मनुष्यो ! तुम्हारे विचार एक सदृश हों, तुम्हारी सभा-समितियाँ एकता के सूत्र में आबद्ध हों, तुम्हारी मनन शक्ति एक रूप हो, तुम्हारा चिन्तन तक साथ हो। मैं तुम सबको एक सदृश वेद की शिक्षाओं से संयुक्त करता हूँ और तुम सबको एक समान भोज्य पदार्थ देता हूँ। (ऋग् १०/१९१/३)

[४] हे मनुष्यो ! तुम्हारी संकल्प शक्ति, लक्ष्य शक्ति, एक जैसी हो, तुम्हारी हृदय-भावनाएँ—एक सी हों, तुम्हारा मनन, चिन्तन, मस्तिष्क एक समान हो, जिससे तुम्हारा बल, सामर्थ्य उत्तम रूप धारण करने वाला हो। (ऋग् १०/१९१/४)

७. वेद में राजनीति

राजा का चुनाव

[१] प्रजाएँ तुमको राज्य के लिए चुनें। पाँचों दिशाओं में रहने वाली उत्तम गुण युक्त प्रजाएँ तुमको राज्य के लिए चुनें। तुम राष्ट्र के शक्ति युक्त, सुखदायी, श्रेष्ठ स्थान का आश्रय लो। तेजस्वी होकर उस स्थान से हमारे लिए धन का न्यायपूर्वक, उत्तम रीति से विभाजन करो जिससे प्रजा में किसी प्रकार की आर्थिक विषमता न रहे। (अथर्व ३/४/२)

[२] हे राजन्! यह राष्ट्र तुझको प्राप्त हुआ है। तुम तेज के साथ उदय होओ। पूजित होकर प्रजा का पालन करने वाला बनो। एक गुण युक्त राजा बनकर तू विराजमान हो। सब दिशाओं में रहने वाली प्रजाएँ तुझे पुकारें। तू सर्वत्र वंदनीय और सब को प्राप्त होने वाला हो।

समिति की रचना

[३] हे राजन्! दृढ़ और पदच्युत न होता हुआ शत्रुओं का नाश कर और शत्रु के समान आचरण करने वालों को नीचे गिरा दे। सब दिशाओं में रहने वाले लोग उत्तम मन वाले और मिल-जुल कर रहने वाले हों और इस राष्ट्र में तेरी स्थिरता के लिए सभा सशक्त होवे। (अथर्व ६/८८/३)

राज सभा

[४] प्रजा रक्षक राजा की पुत्रीवत पालने योग्य लोकसभा और राष्ट्र परिषद् है। राजा कहता है—यह दोनों मेरी रक्षा करें। यह दोनों एक-दूसरे के अनुकूल कार्य करने वाली हों। जिस सभासद् से मैं मिलूँ, वह मुझे ज्ञान दे। पालन करने वाले सभासदो ! सभाओं में मैं ठीक प्रकार से बोलूँ। (अथर्व ७/१२/१)

लोकसभा की स्थापना

[५] प्रजाशक्ति उत्क्रान्त हो गई और सभा के रूप में परिणत हो गई। जो यह जानता है वह सभ्य अर्थात् सभा के योग्य बनता है।

[६] वह प्रजाशक्ति उत्क्रान्त होने लगी और समिति के रूप में परिणत हो गई। जो यह जानता है वह समिति के योग्य बनता है। अर्थात्—अनेक ग्रामों की सुव्यवस्था के लिए ग्राम-सभाओं के प्रतिनिधियों से समितियाँ बनें।

[७] वह प्रजाशक्ति उत्क्रमण को प्राप्त हुई और आमंत्रण में परिणत हो गई। जो यह जानता है वह इस आमंत्रण परिषद् के लिए योग्य बन जाता है।

ग्राम की लोकसभा का नाम —'सभा' है। प्राँत की लोकसभा का नाम 'समिति' है और जो मंत्रिमंडल राष्ट्र का नियन्त्रण करता है, उसका नाम 'आमन्त्रण' है। यह तीन सभाएँ राष्ट्र की शासक सभाएँ हैं। राजा-प्रजा मिलकर तीनों सभाओं का निर्माण करें। (अथर्व ८/१०/६-१३)

स्वराज्य

[८] आन्दोलन करने वाले जब सबसे प्रथम इकट्ठे होकर बैठते हैं तो वही संगठन स्वराज्य को प्राप्त करता है। इस स्वराज्य से दूसरा कोई श्रेष्ठ नहीं है।

(अथर्व १०/७/३१)

स्वराज्य कैसा हो ?—इसका उत्तर—

[९] हे परस्पर मित्रता रखने वालो ! जिनकी दृष्टि विशाल है, ऐसे सज्जनो ! तुम सब और हम सब विद्वान् मिलकर विस्तृत तथा अनेक जनों की सहायता से प्राप्त स्वराज्य की व्यवस्था को ठीक चलाने का प्रयत्न करें। (ऋग् ५/६६/६)

राजा कैसा हो ?

[१०] नियम पालन करने वाला, समय के अनुसार चलने वाला, और क्षात्र तेज से युक्त, उत्तम कार्य करता हुआ साम्राज्य पद पर बैठने का यत्न करे।

(ऋग् ८/२५/८)

राजा के कर्त्तव्य

[११] व्रतधारी, नियमानुसारी यज्ञ द्वारा जनहित सत्कर्मों का करने वाला, अत्यन्त तेजस्वी, हिंसा शून्य कर्मों द्वारा शोभायमान, अग्निहोत्र करने वाला, सत्यनिष्ठ, विद्रोह न करने वाला, क्षात्रगुण युक्त राजा सब कर्मों को अनुकूलता से करता है।

(ऋग् १०/६६/८)

राष्ट्र का झण्डा ऊँचा रहे

[१२] उत्तम नीति वाले, आदित्य, रुद्र, वसु, विशाल द्यौ और पृथ्वी, अन्तरिक्ष, विद्वान्, परोपकारी, समान प्रीति वाले होकर इस राष्ट्र यज्ञ की रक्षा करें, और राष्ट्र यज्ञ के झण्डे को सदा ऊँचा रखें। (ऋग् ३/८/८)

प्रजा पीड़कों को दण्ड

[१३] हे राजन् ! जो हमारा अपना सजातीय अथवा अपना साथी हो, जो दुष्ट व्यक्ति प्रजा को दबाना चाहता है, इन सब प्रजा पीड़कों को राजा के वीर सेना-पति और कर्मचारी अनेक प्रकार से दंडित करें। (अथर्व १/१/६/३)

राज्य का व्यापारी वर्ग सहयोग दे

[१४] राजा कहता है—मैं ऐश्वर्यशाली व्यापारी वर्ग को प्रेरणा देता हूँ कि वह राष्ट्र में अपना उचित स्थान ले और व्यापार द्वारा राष्ट्र का अगुआ हो। वह समर्थ होकर शत्रु, कंजूस, डाकू, विरोधी और पशु स्वभाव वाले को हटाता हुआ सदा राष्ट्र के हित में धन देने वाला हो। (अथर्व ३/१५/१)

राष्ट्र के ब्राह्मण सहयोग दें

[१५] जो शत्रु अथवा अशत्रु और द्वेषी राष्ट्र का अहित करना चाहता है, उन सबको विद्वान् ब्राह्मण फटकारें और श्रेष्ठ मार्ग पर लाएँ। इन विद्वान् ब्राह्मणों सबसे का बड़ा शस्त्र ज्ञान ही है। (अथर्व १/१९/४)

राज्य में तीन सभाएँ हों

[१६] ईश्वर उपदेश करता है कि राजा और प्रजा मिलकर सुख प्राप्ति और राजा-प्रजा के सम्बन्ध रूप व्यवहार के लिए तीन सभाएँ—विद्यार्य सभा, धर्मार्य सभा और राजार्य सभा—नियत करके सब प्रकार के प्रजासम्बन्धी कार्य और मनुष्यादि प्राणियों को सब ओर से विद्या, स्वातन्त्र्य, धर्म, सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें।

(ऋग् ३/३८/६)

[१७] उस राजधर्म को तीनों सभाएँ संग्रामादि की व्यवस्था और सेना मिल कर पालन करें। (अथर्व १५/२/२)

[१८] राजा सभासदों को आज्ञा दे कि—हे सभा के योग्य मुख्य सभासद् ! तू मेरी सभा की धर्मयुक्त व्यवस्था का पालन कर और जो सभा के योग्य सभासद हैं वे भी सभा की व्यवस्था का पालन करें। (अथर्व १९/७/६)

अभिप्राय यह कि एक को स्वतन्त्र अधिकार न हो, किन्तु राजा जो सभापति, तदधीन सभा, समाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहें। (ऋषिदयानन्द सत्यार्थ प्रकाश षष्ठ समुल्लास)

उपनिषद्

(नीति-शिक्षाएँ)

१. ईश

जीवन-निर्माण की दिशाएँ

(१) त्याग पूर्वक भोग करो। (२) किसी दूसरे के धन की आकांक्षा मत करो। (३) कर्म करो पर निष्काम भाव से। (४) कर्म करते हुए ही सौ वर्ष तक जीने की इच्छा कर। (५) इस प्रकार मनुष्य में कर्म का लेप नहीं होता। इसके बिना अन्य कोई मार्ग नहीं है। (६) आत्म-हत्या करने वाला मनुष्य गहरे अन्धकार में जाता है। (७) जो सब भूतों को आत्मा में देखता है और आत्मा को सब भूतों में देखता है, वह पाप नहीं कर सकता। (८) इस प्रकार सर्वत्र एकत्व को देखने वाले के लिये मोह और शोक—कुछ नहीं रहता। (९) जो केवल जड़ जगत् की उपासना करते हैं वे अन्धकार में जा पहुँचते हैं और जो केवल अध्यात्मवाद में फँसे रहते हैं वह पहले से भी अधिक गहरे अन्धकार में जा पहुँचते हैं। (१०) भौतिक विज्ञान से दुःखों के प्रवाह को तैरा जाता है और अध्यात्म ज्ञान से अमृत की प्राप्ति होती है। दोनों का सहयोग आवश्यक है (११) इसी प्रकार केवल व्यक्तिवाद अथवा केवल समष्टिवाद—पृथक्-पृथक् रूप में घातक हैं। दोनों को एक साथ जीवन में ढालने से दुःख का विनाश और अमृत की प्राप्ति होती है। (१२) चमक-दमक वाले पर्दे से सत्य का मुँह ढका हुआ है। हे मनुष्य! इस पर्दे को हटा कर सत्य का दर्शन कर। (१३)इस शरीर का अन्त भस्म के साथ है। इसलिए हे मनुष्य! भविष्य के लिए ओंकार नाम सहित श्रेष्ठ कर्म का स्मरण कर और अपने जीवन में अब तक जो कर चुका है, उसका स्मरण कर। (१४) प्रभु के कल्याणतम तेजोमय रूप का हृदय में ध्यान कर। तू भी वही ज्योतिर्मय पुरुष है। (१५) हे मानव! प्रभु तुम्हारे सब कर्मों को जानता है। उससे प्रार्थना कर कि वह तुम्हें कुटिल मार्ग से बचा कर, अन्तरात्मा को शुद्ध कर, श्रेष्ठ मार्ग पर चलने की प्रेरणा दे।

२. केन

मानव जीवन की प्रतिष्ठा (आधार-नींव) तप, दम और कर्म हैं, अर्थात् शारीरिक नियन्त्रण, मानसिक नियन्त्रण और इन दोनों का कर्म के रूप में पालन। इस पर

जो जीवन रूपी भवन खड़ा होगा, वह वेदों और उसके सब अंगों और सत्य के अनुकूल होगा।

३. कठ

(१) मरण धर्मा मनुष्य इस संसार में अन्न की तरह पैदा होता, पकता, नष्ट होता और पुनः उत्पन्न होता है। (२) जिस छोटी बुद्धि वाले मनुष्य के घर में विद्वान् अतिथि बिना भोजन आदि आतिथ्य सत्कार के रहता और चला जाता है, उस मनुष्य की समस्त 'आशाओं' और 'प्रतीक्षाओं' का फल नष्ट हो जाता है। पुत्र और पशु भी सब बेकार हो जाते हैं।

जीवन के दो मार्ग—श्रेय और प्रेय

(३) मनुष्य धन से कभी तृप्त नहीं होता। मृत्यु का रहस्य जानने से ही सब कुछ प्राप्त होता है।(४) जीवन के दो मार्ग हैं—'श्रेय' और 'प्रेय'। श्रेय मार्ग का ग्रहण करने से कल्याण होता है। 'प्रेय' मार्ग बाहर से आकर्षक प्रतीत होता है पर इसे अपनाने वाला जीवन के लक्ष्य से विचलित हो गिर जाता है। (५) श्रेष्ठ बुद्धि को प्राप्त करके तर्क-वितर्क से हटा नहीं देना चाहिए। (६) धन-सम्पत्ति अध्रुव अस्थिर हैं इनसे 'ध्रुव'--स्थिर ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। (७) इन्द्रियों को विषयों से हटा आत्मा की ओर केन्द्रित करने—अध्यात्म योग—से ही धैर्य के साथ ब्रह्म प्राप्ति कर हर्ष और शोक—दोनों से छूट जाता है।

'ओ३म्' का ही चिन्तन

(८) 'ओ३म्' नाम का वेद बार-बार वर्णन करते हैं, तपस्वी इसकी प्राप्ति के लिए ही तप करते और ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, इस संक्षिप्त नाम का ही निरन्तर ध्यान करना चाहिए। इस 'ओ३म्' अक्षर को जानकर जो इष्ट है, उसकी प्राप्ति हो जाती है। (९) मनुष्य के लिए यह 'ओ३म्' नाम ही सबसे श्रेष्ठ और अन्तिम सहारा है। इसे जान कर ही महानता को प्राप्त होता है।

(१०) यह आत्मा न उत्पन्न होता, न मरता, न कभी उत्पन्न हुआ और न कभी मरा। यह अजन्मा, नित्य, निरन्तर, पुरातन और शरीर के नष्ट होने पर भी कभी नष्ट नहीं होता। (११) जो व्यक्ति दुराचार से हटा नहीं, अशान्त, तर्क-वितर्क में उलझा, चंचल चित्त वाला है, वह अपने आत्मा को व ब्रह्म को जान नहीं सकता। उत्कृष्ट ज्ञान द्वारा ही उसे प्राप्त किया जा सकता है।

शरीर रथ—आत्मा स्वामी

(१२) आत्मा रथ का मालिक है। शरीर एक रथ है। बुद्धि सारथी है। मन लगाम है। इन्द्रियाँ घोड़े हैं और इन्द्रियों के विषय वे मार्ग हैं जिन पर इन्द्रिय रूपी

घोड़े जाते हैं। आत्मा, इन्द्रियाँ और मन मिल कर सुख-दु:ख के भोक्ता हैं। (१३) श्रेष्ठ ज्ञान—विज्ञान—जिसका सारथी—कोचवान है, जो मन रूपी लगाम को अपने हाथ में रखता है, वह इस संसार रूपी विस्तृत मार्ग को पार कर लेता है और परमधाम को प्राप्त कर लेता है।

उठो! जागो!!

(१४) उठो, जागो, जिन महात्माओं—शान्तात्माओं—को प्रभु का वरदान मिल चुका है, उनकी शरण में जाओ और जीवन मार्ग का ज्ञान प्राप्त करो। यह मार्ग तेज छुरे की धार के समान कठोर है। विद्वान् इस मार्ग को दुर्गम बताते हैं।

(१५) जब पाँचों ज्ञान इन्द्रियाँ मन के साथ स्थिर हो जाती हैं, भागती नहीं फिरतीं, और मन निश्चल बुद्धि के साथ आ मिलता है, उस अवस्था को 'परमगति' कहते हैं। (१६) इन्द्रियों की स्थिर धारणा को 'योग' कहते हैं। जिसकी इन्द्रियाँ स्थिर हो जाती हैं, वह प्रमादहीन—सावधान—हो जाता है। योग का अभिप्राय है—शुभ संस्कारों की उत्पत्ति और अशुभ संस्कारों का नाश।'

४. मुंडक

(१) प्रणव (ओंकार) धनुष है, आत्मा शर है, ब्रह्म लक्ष्य है, बिना प्रमाद के इस लक्ष्य का वेध करे, फिर जैसे शर लक्ष्यमय होता है, वैसे आत्मा ब्रह्ममय हो जाता है। (२) उस ब्रह्म की ज्योति के सम्मुख सूर्य की ज्योति क्षीण हो जाती है। चन्द्र, तारे, विद्युत् वहाँ तेजोहीन हो जाते हैं। इस भौतिक अग्नि का तो कोई महत्त्व ही नहीं। उसकी ज्योति के पीछे ही सब प्रकाशित होते हैं। उस ब्रह्म के प्रकाश से ही सम्पूर्ण विश्व प्रकाशित हो रहा है।

एक वृक्ष पर दो पक्षी

(३) दो पक्षी हैं, सुन्दर पंखों वाले, साथ-साथ जुड़े हुए, एक-दूसरे के सखा। एक ही वृक्ष को सब ओर से घेरे हुए हैं। इनमें से एक वृक्ष के फल को बड़े स्वाद से चख रहा है, दूसरा बिना चखे सब कुछ देख रहा है। अर्थात्—ब्रह्म और जीव दो पक्षी हैं, प्रकृति ही वृक्ष है, कर्मफल ही वृक्ष का फल है। जीव को कर्मफल मिलता है, ब्रह्म प्रकृति में किसी भी प्रकार से आसक्त हुए बिना सम्पूर्ण विश्व का और जीव के कर्मों का दृष्टा मात्र है। (४) इस एक सदृश वृक्ष पर बैठा जीवात्मा फल खाने में मस्त हुआ, पीछे अपनी मूर्खता पर पछताता है। पर जब यह जीवात्मा अपने अत्यन्त समीप इस ब्रह्म को देख लेता है, तब उसकी महिमा का अनुभव कर अपने सामर्थ्य को पुन: प्राप्त कर शोक रहित हो जाता है।

(५) अपने स्वरूप को देखने-जानने वाला यह जीवात्मा उस उज्ज्वल प्रकाश स्वरूप, विश्व के कर्ता, स्वामी, विश्व के कारण स्वरूप ब्रह्म को जब देख लेता है तब

पुण्य-पाप से पृथक् हो, शोक-मोह, राग, द्वेष से अलग हो परम समता को प्राप्त कर लेता है।

आत्म ज्ञान के साधन

(६) यह आत्मा नित्य, सत्य, तप, सम्यक् ज्ञान और ब्रह्मचर्य से पाया जाता है। शरीर के भीतर ही वह शुभ ज्योतिर्मय रूप में विद्यमान है। यति, तपस्वी जन राग-द्वेषादि दोषों का क्षय करके उसे देख पाते हैं।

(७) 'सत्य' का ही विजय होता है, अनृतका नहीं। देव—ब्रह्म अथवा उन्नति, विकास की ओर जाने वाला मार्ग सत्य से बना है। आप्तकाम ऋषि जिस मार्ग से चलते और जहाँ पहुँचते हैं, वह सत्य का ही परमधाम है।

(८) आत्मा बड़े-बड़े भाषणों से नहीं मिलता, तर्क-वितर्क से नहीं मिलता, केवल बहुत कुछ पढ़ने-सुनने से नहीं मिलता। जिसे वह वर लेता है, वही इसे प्राप्त कर सकता है। उसके सम्मुख आत्मा अपने स्वरूप को खोलकर रख देता है। (९) बलहीन द्वारा यह आत्मा प्राप्त नहीं होता, मानसिक प्रमाद में पड़ा और बिना उद्देश्य तप करने वाला भी इसे प्राप्त नहीं कर पाता। इन उपायों से जो उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करता है, उसका आत्मा ब्रह्म के समीप स्थित होता हुआ भी ब्रह्म दर्शन नहीं कर सकता।

५. तैत्तिरीय

आचार्य और शिष्य की सम्मिलित प्रार्थना

मित्र, वरुण, अर्यमा, इन्द्र, बृहस्पति, विष्णु, ब्रह्म, वायु इत्यादि विविध नामों से युक्त परमात्मा हमारे लिए कल्याणकारी हो। तुम्हें नमस्कार। तू प्रत्यक्ष स्वरूप ब्रह्म है, तुम्हें नमस्ते। मैं तुझें ही प्रत्यक्ष रूप ब्रह्म कहूँगा, ऋत कहूँगा, सत्य कहूँगा। हे ब्रह्म! तुम मेरी रक्षा करो, मुझे उपदेश देने वाले मेरे गुरु की रक्षा करो, मेरी रक्षा करो, ब्रह्म का उपदेश देने वाले गुरु की रक्षा करो।

हम दोनों का यश एक साथ बढ़े, हम दोनों का ब्रह्म तेज एक साथ बढ़े।

मैं अमृत के दिव्य गुणों को धारण करूँ। मेरा शरीर बलवान् हो। मेरी जिह्वा मधु में सनी हो। कानों से मैं अच्छा सुनूँ। हे इन्द्र (आत्मा)! तू ज्ञान का कोश है, मेधा से चारों ओर से घिरा हुआ है। मैं जो कुछ सुनूँ, उसकी रक्षा भी कर सकूँ—ऐसी मुझे शक्ति दो।

मेरी मेधा नवीन ज्ञान का आह्वान करती रहे, उसका विस्तार करती रहे, शीघ्र-शीघ्र बढ़ती रहे। मुझे वस्त्र, गाय आदि पशु तथा अन्न-पान सदा प्राप्त हों। इन सबसे मैं श्रीमान् रहूँ। इन सबको प्राप्त कर ब्रह्म अर्पण कर दूँ। मुझे चारों ओर से ब्रह्मचारी प्राप्त हों। ब्रह्मचारी मुझे चारों ओर से घेरने वाले हों। इन्द्रियों का दमन करने वाले, शान्त अन्तःकरण के ब्रह्मचारी मुझे प्राप्त हों।

जन समुदाय में भी मैं यश को प्राप्त करूँ। उत्तम पुरुषों में श्रेष्ठ माना जाऊँ। प्रभो ! मैं तुझ में समा जाऊँ, तू मुझ में समा जा। मुझे प्रकाश दो ताकि मैं अन्धकार में मार्ग से भटक न जाऊँ। अगर भटक जाऊँ तो आप मुझे ठीक रास्ते पर डाल दें।

ऋत का पालन करे और स्वाध्याय और प्रवचन का पालन करे। सत्य का पालन करता हुआ स्वाध्याय प्रवचन को न छोड़े। तप करता हुआ स्वाध्याय-प्रवचन का पालन करे। दम, शम, अग्निहोत्र, अग्न्याधान, अतिथि सेवा, मानवसेवा, प्रजापालन, सन्तानोत्पादन, पुत्र-पौत्र का पालन, इत्यादि सब कुछ करे पर स्वाध्याय और प्रवचन का त्याग कभी न करे।

शिष्य को आचार्य का उपदेश (दीक्षान्त शिक्षाएँ)

गुरुकुल में वेद विद्या पढ़ा चुकने के बाद संसार में प्रवेश करने को उद्यत शिष्य को आचार्य अनुशासन रूप में दीक्षान्त शिक्षा देता है—

सत्य बोलना। धर्म का आचरण करना। स्वाध्याय से प्रमाद मत करना। आचार्य को जो प्रिय हो, वह दक्षिणा रूप भेंट कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना और प्रजा के सूत्र को मत तोड़ना। सत्य व्यवहार से प्रमाद न करना। धर्म के आचरण से प्रमाद न करना। जिस साधन से कल्याण प्राप्त हो, उससे प्रमाद न करना। अपनी उन्नति करने में प्रमाद न करना। स्वाध्याय और प्रवचन से प्रमाद मत करना।

संसार में जो 'देव'—गुणों में और 'पितर आयु में तुम से बड़े हैं, उनके प्रति अपने कर्त्तव्य पालन में प्रमाद न करना। माता का आदर करना। पिता, आचार्य, अतिथि—इन्हें देव मानते हुए इनका आदर करना। हमारे जो निन्दाहीन कर्म हैं, उन्हीं का सेवन करना, दूसरों का नहीं। जो हमारे श्रेष्ठ कर्म हैं, उन्हीं का अनुकरण करना, दूसरों का नहीं।

हम से श्रेष्ठ विद्वान् जहाँ भी हो, उनके उपदेश को ध्यान से सुनना, वाद-विवाद में मत पड़ना। श्रद्धा से देना, अश्रद्धा से भी देना। अपनी बढ़ती श्री में से देना। श्री न बढ़ रही हो, तब भी लोक लज्जा से देना। भय से देना। प्रेम से देना।

तुम्हारी जीवन-यात्रा में अगर किसी कार्य में सन्देह उपस्थित हो, धर्माचार क्या है, किस स्थिति में लोकाचार क्या है। कैसे बरतना है—ऐसा सन्देह हो तो तुम्हारे आस-पास धर्म कार्य में स्वतः प्रवृत्त, प्रेरणावश प्रवृत्त, अरुक्ष स्वभाव के, सब पहलुओं पर विचार करने वाले विद्वान् (ब्राह्मण) जैसा व्यवहार करें, उसी के अनुसार करना। विवाद और सन्देह पैदा होने पर युक्त, आयुक्त, अरुक्ष, धर्मकाम, समदर्शी विद्वानों (ब्राह्मण) के पीछे ही चलना। यही आदेश है, यही उपदेश है, यही वेद और उपनिषद् का सार है। यही हमारा अनुशासन है। ऐसा ही आचरण करना। ऐसा ही अनुष्ठान करना।

हम दोनों (आचार्य-शिष्य) एक साथ संसार के पदार्थों से लाभ उठाएँ, हम दोनों साथ-साथ बल की वृद्धि करें, हम दोनों का पठन-पाठन तेज युक्त हो, हम आपस में कभी द्वेष न करें।

मनुस्मृति

महर्षिगण मनु महाराज की सेवा में

सत्युग का प्रारम्भ था। महर्षि मनु एकाग्रचित्त हो ध्यान मग्न थे। उस समय उनके पास कुछ ऋषि-महर्षि आए। अभिवादन आदि के बाद विनम्र भाव से बोले—भगवान्! आप विश्व कल्याण के लिए हमें व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र इत्यादि और इनके अन्तर्गत आश्रम, वर्ण, राजा-प्रजा इत्यादि सबके सम्बन्ध में धर्म, नीति, आचार-व्यवहार का सांगोपांग उपदेश दें ताकि प्रत्येक अपने कर्त्तव्यों का भलीभाँति परिपालन करता हुआ सुख-समृद्धि-आनन्द की प्राप्ति कर सके।

धर्म और नीति का स्रोत—वेद

महर्षि मनु ने जिज्ञासुओं के प्रश्नों का उत्तर देते हुए सबसे पहले धर्म और नीति की कसौटी वेद को बतलाया। वेद और शास्त्र द्वारा वर्णित मार्ग पर चलने वाला अपने जीवन में यश और मृत्यु के बाद आनन्द प्राप्त करता है। वेद और शास्त्र का अनादर करने वाला नास्तिक है और वह सम्मान के योग्य नहीं है। धर्म के मार्ग को जानने की चार कसौटियाँ हैं, पहली जो अपने आत्मा को प्रिय हो, दूसरी श्रेष्ठ पुरुषों का जीवन, तीसरी शास्त्र विधि और चौथी वेद की आज्ञा। इसमें क्रमशः पहली से दूसरी कसौटी श्रेष्ठ है और अन्तिम प्रमाण श्रुति (वेद) ही है।

ब्रह्मचर्य के बाद ही गृहस्थ

वेद के अनुसार गुण, कर्म, स्वभाव से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र यह चार वर्ण हैं और इन चारों वर्णों के लड़के-लड़कियों के गर्भाधान से लेकर अन्त्येष्टि पर्यन्त—१६ संस्कार आवश्यक हैं। यह सब गायत्री मन्त्र के अधिकारी हैं। चार वर्ण के समान ही चार आश्रम हैं, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। संन्यास आश्रम केवल विद्वान्,

तपस्वी और उत्कृष्ट धर्मात्मा-सदाचारी के लिए है। शेष तीनों आश्रम सब वर्णों के पुरुष-स्त्रियों के लिए एक समान हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम कम से कम २५ वर्ष की आयु तक तप, गुरु सेवा, अध्ययन इत्यादि समाप्त करके ही गृहस्थ में प्रवेश करे। वर-वधू एक-दूसरे के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल हों। परिवार में नारी का सदा सम्मान होना चाहिए। जिस कुल में नारी का आदर होता है, वहाँ दिव्य गुणों की वृद्धि होती है और जहाँ इनका अपमान होता है, वहाँ सब कार्य-निष्फल हो जाते हैं। जिस कुल में पत्नी से पति और पति से पत्नी दोनों सन्तुष्ट-प्रसन्न रहते हैं, वहाँ निश्चय ही कल्याण होता है। घर में पाँच महायज्ञ प्रतिदिन होने चाहिए। यह हैं—(१) ब्रह्म यज्ञ-वेद का स्वाध्याय और सन्ध्या (२) अग्नि होत्र (३) जीवित माता-पिता की सेवा-शुश्रूषा पितृ यश (४) विद्वान्, परोपकारी, धर्मोपदेशक—अतिथियों का सत्कार-पूजन, अतिथि यज्ञ (५) पशु-पक्षी-कीट-पतंग, अपांग आदि को अन्न-वस्त्र दान, भूत यज्ञ। गृहस्थ आश्रम सब आश्रमों में बड़ा है। जैसे वायु के आश्रय सब प्राणी जीवित रहते हैं, इसी प्रकार गृहस्थ के आश्रय तीनों आश्रम रहते हैं। यह आश्रम सुख की इच्छा करने वाले बलवान् द्वारा ही प्रयत्न से धारण किया जाना चाहिए, दुर्बल व्यक्ति द्वारा नहीं।

गृहस्थ में कैसे रहें ?

बाह्म मुहूर्त (चार घड़ी रात्रि के बाद) में उठकर धर्म और सुख के साधनों का चिन्तन करे, शरीर के रोगों और उनके कारणों और अर्थ के साधन तथा वेद के तत्त्व अर्थात् ब्रह्म ज्ञान का भी ध्यान करे। नित्य कर्मों से निवृत्त हो प्रातः सायं दोनों समय सन्ध्या जप करे और प्राणायाम करे। सत्य और मिष्ट भाषण करे। कटु सत्य न बोले, प्रिय असत्य भी न बोले। सबके साथ भद्र बोले, किसी के साथ निरर्थक वैर व विवाद न करे। आलस्य त्याग कर यथाकाल नित्य वेद का ही अभ्यास करे, यही परम धर्म है, शेष सब उपधर्म हैं। आचार से ही आयु, उत्तम सन्तान और अक्षय धन प्राप्त होता है। दुराचार से निन्दा, सदा दुःख और अल्पायु ही प्राप्त होती है। जो कर्म दूसरे के आधीन है वह दुःख और जो अपने आधीन हैं वही सुख है। यही सुख-दुःख का लक्षण है। जिस कर्म से आत्मा का सन्तोष हो, वही सप्रयत्न करे और इसके विपरीत का त्याग करे। नास्तिकता, वेद निन्दा, विद्वानों के प्रति कुत्सित भाषण, द्वेष, दम्भ, अभिमान, क्रोध तीक्ष्णता—इन सब का त्याग करे। अधर्मी और पापियों को धनादि शीघ्र आता देखकर धर्म से कष्ट पाने पर भी अधर्म का आचरण न करे और धर्म का त्याग न करे। जैसे गौ तत्काल दूध नहीं देती, इसी प्रकार अधर्म भी शीघ्र फल नहीं देता। धीमे-धीमे चलता हुआ कर्त्ता का समूल नाश कर देता है। यदि अधर्मी को स्वयं फल नहीं मिलता, तो उसके पुत्र-पौत्र-नाती इत्यादि को मिलता है। अधर्म कभी निष्फल नहीं होता। अधर्म से पहले बढ़ता है। फिर कल्याण देखता है, फिर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है, फिर समूल नष्ट हो जाता है। इसलिए भद्र पुरुष सदा सत्य, धर्म, आचार, पवित्रता का पालन करते हैं, शिष्य, स्त्री, पुत्र इत्यादि को भी यही शिक्षा देते हैं और अपनी वाणी, पेट पर संयम रखते हैं। दान लेने की सामर्थ्य रखते हुए भी दान न लेवे क्यों

कि दान ग्रहण करने से ब्रह्म तेज नष्ट हो जाता है। यमों का सदा सेवन करे केवल नियमों का नहीं। वमों का परित्याग कर, केवल नियमों के पालन से पतित हो जाता है। तप करके अभिमान न करे, यज्ञ करके अनृत भाषण न करे, क्रोध व दु:खी हो विद्वान् के प्रति अपशब्द न बोले, दान देकर प्रकट न करे। धर्म का धीरे-धीरे संचय करे, वाल्मीकि के समान, ताकि परलोक में यह धर्म सहायक हो और इसमें प्राणियों को कष्ट न दे। परलोक में पिता-माता, पुत्र-दारा कोई साथ नहीं देता। अकेला संसार में आता और अकेला ही जाता है, मरे हुए को सब छोड़ चले जाते है, केवल धर्म ही साथ देता हैं। इसलिए सदा धर्म का संग्रह और संचय शनैः-शनैः करता रहे।

गृहस्थ से सुख प्राप्ति

उत्तम-उत्तम पुरुषों के साथ सदा सम्बन्ध करे, इससे कुल का मान बढ़ता है, अधर्मी पुरुषों से सम्बन्ध न करे। उत्तम पुरुषों से सम्बन्ध करने और हीन पुरुषों का त्याग करने से श्रेष्ठता प्राप्त होती है। दृढ़ता से कार्य करने वाला, दयालु, शान्त, क्रूर और दुष्ट पुरुषों का परित्याग, हिंसा रहित, दया और दान करने वाला स्वर्ग सुख को प्राप्त करता है। एकान्त में बैठ अकेला अपने आत्मा के हित का ध्यान करे। इससे परम कल्याण को प्राप्त करता है।

इस प्रकार गृहस्थ की सदा रहने वाली श्रेष्ठ वृत्ति का वर्णन किया गया है। स्नातक, व्रत का पालन करता हुआ सत्य की वृद्धि करने वाला, ऐसा गृहस्थ सदा कल्याण प्राप्त करता है।

गृहस्थ की पवित्रता के साधन

मनु के पुत्र भृगु से ऋषि वर्ग ने पूछा - "इस प्रकार वेद शास्त्र के ज्ञाता सद् गृहस्थ की किन दोषों से मृत्यु होती है?" भृगु ने कहा—"चार कारणों से विप्र गृहस्थ की मृत्यु होती है—वेद का अभ्यास न करने से, आलस्य से, आचार हीनता से और अन्न दोष से।" ऋषियों ने फिर पूछा—"सद् गृहस्थ के लिए सबसे बड़ी पवित्रता क्या है?" भृगु ने उत्तर दिया, "विप्र गृहस्थ के लिए सबसे बड़ी पवित्रता अर्थ शौच, अर्थात्—शुद्ध साधनों से धन की प्राप्ति। जिस मनुष्य का धन पवित्र है, वही पवित्र है। जो मनुष्य मिट्टी व जल से अपने को शुद्ध करता है पर धन प्राप्ति में पवित्र नहीं है, उसे पवित्र नहीं कहा जा सकता। विद्वान् की शुद्धि क्षमा द्वारा, अनुचित कार्य करने वाले को दान से, पाप में संलग्न व्यक्ति की गायत्री के जाप से और वेद का अध्ययन करने वाले की तप से शुद्धि होती है। शरीर की शुद्धि जल से, मन की शुद्धि सत्य से, आत्मा की शुद्धि ब्रह्म विद्या और तप से और बुद्धि की शुद्धि ज्ञान द्वारा होती है।

आयु के तीसरे भाग के व्यवहार

ब्रह्मचर्य और गृहस्थ का सम्बन्ध युवाकाल से है। आयु के इन दोनों भागों में मनुष्य को किस प्रकार धर्म और नीति का अवलम्बन करना चाहिए, यह बताने के बाद

अब महर्षि मनु मानव-जीवन के उस काल के कर्त्तव्यों का वर्णन करते हैं जिसका प्रारम्भ ५० वर्ष की आयु के बाद, माता-पिता के रूप में होता है। जीवन के इस भाग को महर्षि मनु दो आश्रमों के रूप में बाँटते हैं, एक का नाम वानप्रस्थ और दूसरे का संन्यास, जिनकी अवधि क्रमश: ५० से ७५ और ७५ से १०० वर्ष तक की रखी गई है। पूर्व जन्मों के कर्मों के फलस्वरूप अथवा अन्य कई अप्रत्याशित, अनपेक्षित और अज्ञात घटनाओं व आधि-व्याधियों के फलस्वरूप इन दोनों आश्रमों और पूर्वोक्त ब्रह्मचर्य-गृहस्थ—दोनों की परिधियों और आयु के वर्षों और परिस्थितियों की दृष्टि से परिवर्तन की गुँजाइश तो है ही।

महर्षि मनु कहते हैं—"गृहस्थ को पूर्ण करके अथवा अपने को वृद्ध अथवा सन्तान की सन्तान को देख पुरुष सांसारिक चिन्ताओं को छोड़ जितेन्द्रिय हो वन में सपत्नीक निवास कर जीवन व्यतीत करे। घर से सदा प्रज्वलित यज्ञ की अग्नि के अंश को साथ ले वन में एकान्त वास करे। पंच महायज्ञ करता रहे। जप के साथ वेद का स्वाध्याय, सबके प्रति मित्र भाव रखता हुआ शान्त, एकाग्रचित्त, किसी से कुछ न लेता हुआ, दूसरों के प्रति दान की वृत्ति के साथ सब जीवों पर दया भाव रखे। शाक,फल-फूल-मूल इत्यादि का ही अल्प, शुद्ध भोजन करता हुआ अपरिग्रह वृत्ति से जीवन व्यतीत करे। यथासम्भव अग्नि का पका भोजन न करे। इन्द्रियों को सदा वश में रखे। सुखार्थी न हो, ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे, किसी के प्रति मोह-ममता न रखे। भिक्षा वृत्ति पर निर्भर करे, शोक और भय को त्याग—अपनी आयु का तृतीय भाग इस प्रकार व्यतीत करे।"

४. आयु के चौथे भाग के व्यवहार

आयु के चौथे भाग में प्रवेश कर संन्यास धारण करे। तीनों ऋण—देव, पितृ और ऋषि—चुका कर अब इस चौथे आश्रम में आकर मोक्ष की ओर आत्मा को लगाए। जो व्यक्ति वेदाध्ययन, धर्मानुसार सन्तान उत्पदान, यज्ञ अनुष्ठान इत्यादि का पालन न कर मोक्ष की इच्छा करता है, वह नरक में जाता है। प्राजापत्य यज्ञ कर सबको समुचित दक्षिणा दे, अग्नि के गुणों को अपने आत्मा में धारण कर विद्वान् संन्यास ग्रहण करे। सब भूतों को अभय दान दे और संसार में निडर हो धर्मोपदेश करता रहे। दूसरों से अन्न आदि की इच्छा न करे। किसी से सहायता की इच्छा न कर अकेला ही विचरे। ब्रह्म में चित्त वृत्ति लगा, मोह त्याग कर, बुद्धि को स्थिर कर भिक्षा द्वारा निर्वाह करे। मृत्यु और जीवन दोनों में से किसी की इच्छा न करता हुआ जैसे सेवक स्वामी की आज्ञा का ही ध्यान रखता है, वैसे परमात्मा के प्रति सदा अर्पित रहे। अपमान को सहे, किसी का अपमान न करे, किसी के प्रति प्रीति व वैर का भाव न रखे। क्रुद्ध के प्रति क्रोध न करे। निन्दा करने वाले के प्रति भी उत्तम शब्दों का प्रयोग करे, अल्प भाषी हो और मिथ्या न बोले। अध्यात्म चिन्तन में लगा, किसी से कुछ इच्छा न करता हुआ, परमात्मा को ही सहायक जान सुखपूर्वक विचरे। एक काल ही भिक्षा करे, अधिक भिक्षा ग्रहण करने से विषयों में लिप्त हो जाता है। भिक्षा प्राप्त न हो

तो विषाद न करे, मिल जाने पर हर्ष न करे, जिससे प्राण रक्षा होती हो, उतना ही ग्रहण करे, जैसा मिले उसी से सन्तुष्ट रहे, मान-आदर की इच्छा न करे, किसी की हत्या न करे, कर्म दोष के कारण संसार में निरन्तर हो रहे उतराव-चढ़ाव को देख आत्मचिन्तन करता रहे, वियोग-संयोग, अपमान-अनादर, दु:ख-शोक, व्याधि भोग— मानव की इन सब स्थितियों पर ध्यान रखे। सदा अधर्म-त्याग और धर्म पालन, योग तथा सूक्ष्म दृष्टि से आत्म ज्ञान द्वारा ईश्वर-दर्शन—सदा इस मार्ग पर चलने के लिए प्रयत्नशील रहे। सब जीवों के साथ तुल्य व्यवहार करे। सांसारिक दिखावटी चिह्न धर्म के स्वरूप नहीं होते, केवल भेष ही धारण कर लेना धर्म नहीं है, श्रेष्ठ मार्ग पर चलना ही धर्म है। ओंकार का जाप और प्राणायाम परम तप है। जिस प्रकार अग्नि में तपाने से धातुओं का मैल दूर होता है, इसी प्रकार प्राणायाम से इन्द्रियों के दोष दूर होते हैं। प्राणायाम द्वारा इन्द्रिय दोषों को, ईश्वर परायणता से पाप को, इन्द्रिय निग्रह से क्रोध, लोभ, मोहादि को और ध्यान से नास्तिकता को दूर करना चाहिए। संसार में ऊँच-नीच कर्मानुसार होता है, योग विधि से यह आन्तरिक ज्ञान प्राप्त करे। प्रत्येक वस्तु के तत्त्व को जान, सत्य की खोज करता हुआ कर्म बन्धन से छूट जाता है और अहिंसा, वेदानुसार कर्म, विषयों से विरक्ति—इनके द्वारा मनुष्य ब्रह्म पद प्राप्त करता है।

जिस धर्म का पालन प्रत्येक आश्रम और वर्ण के व्यक्ति के लिए आवश्यक है, उसके दस लक्षण हैं [१] धृति (धीरज), [२] क्षमा (शक्ति होते हुए भी प्रतिशोध न लेना), [३] दम (मन को विषयों से रोकना), [४] अस्तेय (किसी प्रकार की चोरी न करना), [५] शौच (शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा की पवित्रता), [६] इन्द्रिय निग्रह (इन्द्रियों को वश में रखना), [७] धी: (उत्तम बुद्धि), [८] विद्या (ईश्वर, जीव, प्रकृति के स्वरूप को जानना), [९] सत्य (मन, वाणी, कर्म से मिथ्या व्यवहार न करना), [१०] अक्रोध: (अकारण क्रोध न करना)। धर्म के इन दस लक्षणों के अनुसार जीवन व्यतीत करने वाले को मोक्ष पद प्राप्त होता है।

५. राज धर्म

महर्षि मनु कहते हैं—अब हम राजाओं के उस धर्म और नीति का वर्णन करते हैं जिससे वे अपने जीवन को सफल कर सकते हैं। अगर देश में कोई राजा व शासक न हो तो सब ओर भय छा जाएगा। देश की रक्षा के लिए ब्रह्मा ऋषि ने राजा का पद निश्चित किया। राजा में सात गुण होने चाहिए—(१) प्रजा पालन (२) न्याय (३) शिक्षा द्वारा प्रकाश का विस्तार (४) अग्नि के सदृश तेजस्वी (५) चन्द्रमा के सदृश प्रजा को प्रसन्न रखना (६) शान्ति स्थापन (७) कुबेर के सदृश धन का संग्रह और उसकी रक्षा। राजा अपने कार्य, देश-काल और शक्ति अनुसार सत्य पर आचरण करता हुआ भिन्न-भिन्न रूपों में करता है। वेद की शिक्षा के अनुसार राजा प्रत्येक का कार्य निश्चित करे और फिर उससे कभी किसी को विचलित न होने दे।

दण्ड का महत्त्व

राजा द्वारा सत्य और न्याय का व्यवहार तथा जीवों की रक्षा करने के लिए ईश्वर ने पहले दण्ड का विधान किया। इस दण्ड के भय से सब अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं और धर्म से विचलित नहीं होते। संसार में दण्ड ही राजा है, दण्ड ही शासक है, दण्ड ही चारों आश्रमों के कर्त्तव्य का प्रेरक है। दण्ड ही प्रजा को आज्ञा देने वाला, सोते हुओं का रक्षक और स्वयं जागने वाला तथा धर्म को जीवित रखने वाला है। जब राजा ध्यान से विचार कर दण्ड का प्रयोग करता है, तब प्रजा को प्रसन्नता होती है और जब बिना विचार के प्रयुक्त होता है तब प्रजा का सब ओर से नाश होता है। यदि राजा प्रमाद से दण्ड का प्रयोग न करे तो बलवान् निर्बलों का जीवन दुष्कर कर दें। दण्ड के भय से ही सब लोग कार्य करने की सामर्थ्य रखते हैं। यदि राजा अपराधियों को दण्ड न दे और निरपराधियों को दण्ड दे, तब सब वर्ण बिगड़ जायेंगे और मर्यादा का नाश हो जाएगा। जो राजा सत्यवादी, दूरदर्शी, धर्म, काम, अर्थ का ज्ञाता, विचारशील और कर्त्तव्य-परायण है, वही दण्ड के प्रयोग का अधिकारी है। जो राजा शास्त्र ज्ञाता नहीं है वह दण्ड धारण नहीं कर सकता। वही दण्ड अधर्मी राजा को उसके बन्धु-बान्धवों सहित नष्ट कर देता है। अधर्मी द्वारा प्रयुक्त दण्ड, नगर, राष्ट्र, चर-अचर लोक, अन्तरिक्ष के पक्षियों और मुनि तथा विद्वानों को भी पीड़ा पहुँचाता है। जो राजा मूर्ख, लोभी, विषय-ग्रस्त है, वह न्याय अनुसार दण्ड का प्रयोग करने योग्य नहीं है। जो राजा पवित्र, सत्यवादी शास्त्रानुसारी, सशक्त और बुद्धिमान् है, वही दण्ड के प्रयोग का अधिकारी है। जो राजा अपने राष्ट्र में न्यायकारी, शत्रुओं के प्रति कठोर दण्डदाता, मित्रों और शुभचिन्तकों के प्रति दयाशील और विद्वानों के प्रति क्षमाशील होता है, वह त्याग वृत्ति से रहता हुआ लोक में यशस्वी होता है। वर्णाश्रम धर्मपालन में आरूढ़ व्यक्तियों की रक्षा करना राजा का कर्त्तव्य है।

राजा का जीवन संयमित हो

प्रजा की रक्षा में संलग्न राजा को अपने कर्मचारियों सहित जो व्यवहार और कर्म करने चाहिए, मनु ऋषि उनका वर्णन करते हैं :—

राजा प्रातःकाल उठ वेदज्ञ विद्वानों का दर्शन और पूजन करे। इसी प्रकार वृद्धों का विनय सहित सम्मान करे। विनीत न होने के कारण कई राजा नष्ट हो गए। वनवासी राजाओं ने भी विनय द्वारा राज्य प्राप्त किया। वेन, नहुष, यवन पुत्र सुदास, निमि— इत्यादि राजा विनयशील न होने से नष्ट हो गए। विनय के कारण पृथु, मनु, कुबेर, विश्वामित्र ने राज्य प्राप्त किया और बढ़ाया। वेदज्ञों से त्रयी विद्या, दण्ड नीति, ब्रह्म विद्या और लोक व्यवहार तथा अर्थ विद्या जानने वालों से व्यापार, पशुपालन, कृषि, चिकित्सा आदि को सीखे। दिन-रात राजा अपनी इन्द्रियों को वश में रखे। जो राजा जितेन्द्रिय है, वही प्रजा को वश में रख सकता है। काम और क्रोध से पैदा होने वाले दोषों और इन दोनों के मूल लोभ को राजा वश में रखे। काम से पैदा होने वाले दोष हैं—मद्य-मांस, जुआ, स्त्रियों का संग, शिकार खेलना—इनका त्याग करे। क्रोध

से पैदा होने वाले दोष हैं – हत्या, कटु भाषण, अर्थ दोष—इन तीनों का सदा परित्याग करे। व्यसन और मृत्यु—इन दोनों में व्यसन अधिक निकृष्ट है क्योंकि व्यसनी लगातार गिरता जाता है और मृत्यु तो एक बार ही आती है। इसलिए व्यसन रहित ही सुख प्राप्त कर सकता है।

मन्त्रियों के आवश्यक गुण

जो अपने देशवासी, शास्त्रज्ञ, शूरवीर, उद्देश्य सिद्धि करने वाले, कुलीन और परीक्षित व्यक्ति हों, ऐसे ७ या ८ मन्त्री नियुक्त करे। कोई मनुष्य सरल कार्य भी एकाकी नहीं कर सकता, फिर राज्य तो बड़ा भारी काम है – वह कोई अकेला कैसे चला सकता है? इसलिए मंत्रियों की नियुक्ति आवश्यक है। इनसे सन्धि, विग्रह, अर्थ, नगर राज्य, रथशाला, सेना, अन्न, सोना, राज्य की रक्षा, प्राप्त धन को उत्तम कार्यों में लगाना इत्यादि विषयों पर परामर्श करे। मंत्रियों से पृथक्-पृथक् अथवा सम्मिलित रूप से परामर्श कर जिससे हित हो—ऐसा उचित निर्णय करे। इन सब मंत्रियों में जो विद्वान् वेदज्ञ हों, उनसे विशेष मंत्रणा करे। इन मंत्रियों पर विश्वास करे और इनकी सम्मति से कार्य करे। इनके अतिरिक्त अन्य जो शुद्ध विचार, ज्ञानशील, परीक्षित और अर्थ शुचि वाले हैं—ऐसे अन्य मंत्री नियुक्त करे। ऐसे कर्मचारी नियुक्त करे जो चतुर, कार्य कुशल, बुद्धिमान्, दक्ष हों और जिनकी नियुक्ति आवश्यक हो। शूर, कुलीन, शुद्ध जीवन के व्यक्तियों को कार्य सौंपे और जो भीरू हों, उन्हें किले के भीतर रखे।

राजदूत के गुण

राजा ऐसे दूत नियुक्त करे जो शास्त्र ज्ञाता, इंगित और रूप को समझने वाला, शुद्ध, पवित्र, चतुर तथा कुलीन हो। दूत ऐसा हो जो राजा का मित्र, स्वामी के प्रति निष्ठावान्, शुचि, दक्ष, स्मृति शक्ति वाला, देशकाल ज्ञाता, उत्तम शरीर युक्त, निर्भय और भाषण कला में निपुण हो। दूत ही बिगड़े हुए शत्रु को मिलाता है और मिले हुए को अलग करता है। दूत ही ऐसे कार्य करता है जिससे सन्धि और विग्रह होता है। सब कर्मचारियों में दूत ही ऐसा होता है जो राजा की बात, चेष्टाएँ, आकार और राजा के करने योग्य सब कार्य को जानता है। अमात्य के आधीन दण्ड, दण्ड में विनय क्रिया—जिससे अन्याय न होने पाए, राजा के आधीन कोश और राज कार्य और दूत के आधीन सन्धि व विग्रह स्थापित करे। वह राजा व दूत ठीक प्रकार से विरोधी राजा का अभिप्राय जान वैसा प्रयत्न करे जिससे अपने को कष्ट न पहुँचे।

दुर्ग-निर्माण

राजा जंगल, धन धान्य युक्त देश में धनुर्धारी पुरुषों सहित, मिट्टी से बनाया हुआ, चारों ओर वृक्षों से घिरा व सेना से घिरा और पहाड़ों से घिरे स्थान के मध्य नगर बनाए। नगर के चारों ओर प्रकोट बनाए क्योंकि उसमें स्थित एक धनुर्धारी वीर

सौ के साथ और सौ वीर दस हज़ार के साथ युद्ध कर सकते हैं। इसलिए दुर्ग अवश्य बनाए। इस दुर्ग के भीतर शस्त्रास्त्र, धन धान्य, वाहन, शिक्षक और उपदेशक, विद्वान्, कारीगर, नाना प्रकार के यन्त्र बनाने वाले हों और पशुओं के लिए चारा, घास, जल आदि की पूरी व्यवस्था हो। इसके मध्य राजा का सब प्रकार से रक्षित, सुख कारक श्वेत वर्ण का राजगृह हो जिसके भीतर राजकार्य का पूरा निर्वाह हो सके। ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्या पढ़ और राज विद्या की शिक्षा प्राप्त कर सुन्दर, गुणवती, हृदय को प्रिय, उत्तम कुलोत्पन्ना, सुन्दर लक्षण युक्त, स्व वर्ण की, गुण-कर्म स्वभाव के अनुकूल एक ही स्त्री के साथ विवाह करे। राज भवन में अग्निहोम आदि शुभ कर्म करने के लिए पुरोहित और ऋत्विज् नियुक्त करे। विविध यज्ञों को उत्तम विद्वानों द्वारा भली प्रकार दक्षिणा लेकर सम्पन्न कराए।

युद्ध-नीति

राजा विश्वण पुरुषों द्वारा वार्षिक कर लेवे। सारी प्रजा का सन्तानवत् पालन करे और प्रजा उसको पिता समान समझे। प्रत्येक स्थान पर विविध कार्यों का एक-एक अध्यक्ष नियुक्त करे और वह कर्मचारियों के काम का निरीक्षण करे। राजा क्षात्र धर्म का ध्यान रखे। युद्ध के लिए कोई छोटा या बड़ा राजा पुकारे तो मुँह न मोड़े। युद्ध में धैर्य, प्रजा पालन और विद्वानों का सम्मान—इन तीन कामों को न भूले। रण में युद्ध से विमुख न होकर लड़ते हुए जो क्षत्रिय वीरगति को प्राप्त होता है, वह स्वर्ग को जाता है। जो शस्त्र विष बुझे हैं, जिनके ऊपर लकड़ी तथा भीतर लोहा है, जिस तीर की गोसी कणि रूप है तथा जो अग्नि में तपाये हुए हैं, ऐसे अस्त्रों का युद्ध में प्रयोग न करे। भूमि पर बैठे, नपुंसक, हाथ जोड़ने वाला, जिसके सिर के बाल खुले हों "मैं तुम्हारा मित्र हूँ" ऐसा कहने वाला—इनका हनन न करे। सोए हुए को, बिना कवच धारण किए हुए को, नि:शस्त्र, युद्ध की इच्छा न करने वाले को, किसी के साथ तमाशा देखने आया हो—इनको न मारे। छिन्न अस्त्र वाला, किसी की मृत्यु से दु:खी, कठिन घाव वाला, भयातुर, युद्ध भूमि से भागने वाला—इन सबको न मारे। जो मनुष्य भय वश रण से भागता हुआ दूसरे के शस्त्र से मारा जाता है, वह अपने स्वामी के पाप को पाता है। जो क्षत्रिय युद्ध से पराङ्मुख होता मारा जाए, उसके पाप कर्मों का फल उसके स्वामी को प्राप्त होता है। रथ, घोड़ा, हाथी, छत्र, धन, धान्य, पशु, स्त्री तथा सारा द्रव्य सोना, चाँदी, सीसा, पीतल इत्यादि सबका प्राप्त करने वाला, जीतने वाला होता है। सोना, चाँदी, रत्न आदि जो उत्तम वस्तुएँ विजय में प्राप्त हों, वह सब राजा की होती हैं और राजा इनको सब योद्धाओं में बाँट दे। क्षत्रिय का धर्म यही है कि रण में शत्रु को मारते हुए क्षत्रिय धर्म को न छोड़े। अगर वह इसका त्याग करता है, तो क्षत्रिय नहीं है। अप्राप्त को प्राप्त करने का प्रयत्न, प्राप्त वस्तु की रक्षा, रक्षित की उन्नति और उन्नत को योग्य शुभ कार्यों में व्यय करे। राजा के पुरुषार्थ के यह चार ही प्रयोजन हैं जिनका पालन सदा आलस्य त्याग कर करे। अलब्ध वस्तु की इच्छा दण्ड से करे, जो इस प्रकार प्राप्त हो उसकी रक्षा सावधानता से करे, रक्षित की वृद्धि करे और बढ़े हुए

धन का पात्र व्यक्तियों में प्रयोग करे। सदा दण्ड नीति को हाथों में रखे, सदा पुरुषार्थ शील रहे, नित्य अपने रहस्य छिपाकर रखे और नित्य शत्रु के रहस्य जानता रहे। जिस राजा के राज्य में अपराधी दण्ड से नहीं बच सकता, उसी से सब भयभीत रहते हैं। इसलिए दण्ड द्वारा सबको अपने आधीन रखे। स्वयं छल न करना, पर शत्रु के छल को सदा जानते रहना, अपने आश्रित की रक्षा - राजा का धर्म है। कछुए के समान राजा अपने दोषों को छिपाकर रखे। बगुले की तरह अपने अर्थ का, सिंह के सदृश पराक्रम, भेड़िए की तरह झपटा मार वस्तु प्राप्त करना और शशक की तरह भागना सीखे। विजयी राजा साम, दाम, दण्ड, भेद—इन चार उपायों से शत्रु को अपने आधीन करे। यदि शत्रु साम, दाम, भेद से वश में न आए तो दण्ड का ही प्रयोग करे। इन चारों उपायों में से बुद्धिमान् साम और दण्ड की प्रशंसा राज्य की उन्नति के लिए करते हैं। जिस प्रकार किसान अन्न की रक्षा करता है, इसी प्रकार राजा राज्य की रक्षा करे और शत्रुओं को नष्ट करे। जो राजा बिना विचारे प्रजा को मोह वश कष्ट देता है, वह अपने भाई-बन्धु सहित शीघ्र नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार शरीर को दु:ख देने से प्राण निर्बल हो जाते हैं, इसी प्रकार प्रजा को दुखी रखने से राजा के प्राण दु:ख प्राप्त करते हैं। प्रजा की उन्नति के लिए सदा इस नियम का पालन करे। प्रजा की उन्नति से ही राजा सुख को प्राप्त करता है।

प्रशासन का आधार—गाँव

दो-तीन या पाँच गाँवों के मध्य रक्षागृह बनाए और सौ गाँव के प्रबन्ध के लिए कर्मचारी नियुक्त करे। योग्यता के अनुसार एक गाँव, दस गाँव, बीस गाँव, सौ गाँव और एक हज़ार गाँवों के अधिकारी नियुक्त करे। गाँव में यदि कुछ उपद्रव हो तो गाँव का रक्षक (स्वामी) दस गाँव के स्वामी से और वह बीस गाँव के स्वामी से कहे। बीस गाँव का स्वामी सौ गाँव के स्वामी से और वह हज़ार गाँव के स्वामी से कहे। ग्राम का स्वामी नित्य प्रति राजा का भाग, अन्न, पान (पेय पदार्थ), काष्ठ आदि जो ग्रामवासियों से लेने योग्य हैं, ग्रहण करे। दस गाँव का स्वामी एक कुल भूमि, अर्थात् बारह बैलों से खेती किए जाने वाली भूमि अपने निर्वाह के लिए लेवे, बीस गाँव का स्वामी पाँच कुल की भूमि लेवे, सौ गाँव का स्वामी मध्य के एक गाँव को लेवे तथा सहस्र गाँव का स्वामी एक पुर को अपने निर्वाह के लिए लेवे। राजा का सचिव, राजा के समीप रहने वाला, आलस्य त्यागकर, गाँव, नगर तथा पुर के स्वामी का निरीक्षण करता रहे। प्रत्येक नगर में चन्द्रमा के सदृश एक सुन्दर सभा-भवन बनाए जिसमें राजा और प्रजा की उन्नति के विषयों पर मिलकर विचार हो सके। वह सभापति ग्राम-नगरादि के स्वामियों के कामों का स्वयं निरीक्षण और गुप्तचरों द्वारा जानकारी प्राप्त करता रहे। राजा के कर्मचारी प्राय: दूसरों की सम्पत्ति तथा धन अपहरण कर लेते हैं और निष्ठुर तथा चालाक होते हैं। इसलिए राजा इनके हाथों से प्रजा की रक्षा करे। जो पापी कर्मचारी प्रजा से धन लेते हैं, राजा उनकी सारी सम्पत्ति छीन उन्हें राज्य से बाहर निकाल दे।

कर-पद्धति

राजा की सेवा करने वाले जो स्त्री व भृत्य हैं, उनके काम के अनुसार राजा उन्हें दैनिक वेतन दे। जो घर की सफाई करने वाला या पानी लाने वाला है, उसे एक पण नित्य दे, एक मास में एक द्रोण अन्न और छठे मास दो वस्त्र दे। मध्यम करने वाले को तीन गुणा और उत्तम करने वाले को मध्यम की अपेक्षा तीन गुणा अधिक देवे। व्यापारियों से कर लेवे, इस बात का ध्यान रखते हुए कि किस भाव मोल लिया, भोजन इत्यादि पर क्या व्यय पड़ा, कितनी दूर से लाया, माल की रक्षा पर क्या व्यय हुआ और इन सबके बाद कितना लाभ होगा। जिस विधि से राजा और कार्यकर्त्ता का लाभ हो, उसे ध्यान में रखते हुए राजा सब पर एक समान कर नियत करे। जैसे जोंक, बछड़ा तथा भौंरा—सब अपना खाद्य थोड़ा-थोड़ा खाते व ग्रहण करते हैं, ऐसे ही राजा अपनी प्रजा से अल्प वार्षिक कर ले। पशु व सोने के लाभ का ५०वाँ भाग, धान्य का छठा-आठवाँ व बारहवाँ भाग ले। भूमि की उर्वरा शक्ति, उसके जोतने पर परिश्रम आदि का ध्यान रखे। वृक्ष, मधु, घी, सुगन्धित वस्तुएँ, औषधियाँ, रस, फल, फूल, मूल का छठा भाग ग्रहण करे। पत्ता, शाक, तृण, चर्म, बाँस का पात्र, मिट्टी के पात्र, बर्तन, पत्थर के लाभ का छठा अंश लेवे। छोटे मनुष्यों से शाक-पात के रूप में वर्ष के अन्त में थोड़ा कर ले। पाचक, शिल्पी, सेवक, श्रमिक इत्यादि इन सबसे प्रत्येक मास में एक दिन का कार्य कराए—यही इनका कर है। प्रजा से सर्वथा कर न लेने व अति लोभ से अधिक लेने से राजा अपनी जड़ पर कुठाराघात करता है। इसलिए मध्य मार्ग का अवलम्बन करे। कार्य के स्वरूप को देखकर राजा कठोर व मृदु होवे। इस मार्ग से ही वह सर्वप्रिय हो सकता है।

प्रजापालन परम धर्म

राजा न्याय के आसन पर धर्मज्ञ, बुद्धिमान्, शान्त और कुलीन प्रधान अमात्य को बैठाए। इस प्रकार अपने योग्य कार्यों का प्रमाद रहित पालन करता हुआ प्रजा की रक्षा करे। जिस राज्य में चोरों द्वारा लुटी हुई प्रजा हाहाकार करती है और राज-कर्मचारी देखते रहते हैं, तब वह राजा मृतक के समान ही है। क्षत्रिय का परम धर्म प्रजापालन ही है। जो राजा इसका पालन करता है वही धर्म का फल प्राप्त करता है।

राजा की दिनचर्या और मन्त्रियों से परामर्श

प्रहर रात्रि शेष रहे उठ नित्य कर्मों से निवृत्त हो सन्ध्या, अग्निहोम और विद्वानों का पूजन कर राजा राज्य सभा में प्रविष्ट हो। वहाँ बैठे प्रजाजन का स्वागत कर उन्हें विदा करे और मंत्रियों से परामर्श करे। पहाड़, प्रासाद, जंगल एकान्त में बैठे मन्त्रणा करे। जिसकी मंत्रणा को अन्य लोग—मन्त्रियों के अतिरिक्त—नहीं जान पाते, वह राजा कोशहीन होने पर भी पृथ्वी पर राज्य करता है। दोपहर व अर्धरात्रि के समय निश्चिंत और शान्ति के साथ सब मंत्रियों के साथ मिलकर व एक-एक के साथ धर्म और अर्थ का

चिन्तन करे। दूत भेजना, गत दिवस का बचा कार्य, नगर के भीतर की स्थिति, गुप्तचरों की चेष्टायें—इन सब विषयों पर भी विचार करे। आठ प्रकार के कार्य : (१) कर संग्रह, (२) कर्मचारियों को समय पर वेतन, (३) धर्म पालन, (४) मन्त्रियों को आज्ञा देना, (५) प्रत्येक के कार्य का निरीक्षण, (६) अपराधी को दण्ड, (७) वर्णाश्रम धर्म का प्रजा द्वारा पालन, (८) पतितों का उद्धार—इन आठ कर्मों को और पंच वर्ग—(१) गुप्तचरों पर कड़ी दृष्टि, (२) कर्त्तव्य भ्रष्ट संन्यासियों की प्रताडना, (३) बेरोजगार को कृषि भूमि देना, (४) वैश्य कर्म के व्यापार का ध्यान, (५) कपटी पुरुषों का दमन—इन दोनों का पालन करते हुए दूसरे राजाओं और अपने मन्त्रियों की गतिविधि जानता रहे। शत्रुओं पर विजय पाने का इच्छुक राजा देखे, कौन उसके पक्ष-विपक्ष व उदासीन है। राजा (१) मन्त्रि-मण्डल, (२) प्रजा, (३) दुर्ग, (४) अर्थ, (५) दण्ड, (६) धर्म, अर्थ, काम, (७) वर्णाश्रम धर्म, (८) पड़ोसी राष्ट्र की गतिविधि -- इन आठों प्रकृत्तियों का ठीक प्रकार पालन करे। अपना पड़ौसी राजा शत्रु है और उसका साथी भी शत्रु है, उस देश से परे का राजा अपना मित्र है और उससे आगे का उदासीन है, इन सब राजाओं के साथ यथा अवसर साम आदि उपायों से एकसाथ व पृथक्-पृथक् सेना व पौरुष द्वारा व्यवहार करना चाहिए।

सन्धि-विग्रह की नीति

सन्धि, विग्रह, शत्रु पर आक्रमण, विश्राम, भेद तथा बलवान् राजा का आश्रय—नीति के इन अंगों पर विचार करना चाहिए। समय अनुसार कार्य करे। नीति के यह तीन अंग दो-दो प्रकार के हैं [क] **सन्धि** (१) तत्काल भविष्य फल प्राप्ति की दृष्टि से एक राजा के साथ मिल दूसरे राजा पर चढ़ाई करना, समान यान सन्धि, (२) यदि परस्पर यह प्रतिज्ञा करके कि तुम वहाँ जाओगे तो हम भी वहाँ जाएँगे—सन्धि करे, यह आकाश यान सन्धि कहाती है। [ख] **विग्रह** (१) समय-असमय अपनी इच्छा से बिगाड़ करना प्रथम विग्रह, (२) मित्र का अपमान देख अपमान कर्त्ता से विग्रह—यह दूसरा विग्रह। [ग] **चढ़ाई** (१) स्वेच्छा से शत्रु पर चढ़ाई—यह प्रथम चढ़ाई, (२) मित्र के सहायतार्थ चढ़ाई—यह दूसरी चढ़ाई। [घ] **विश्राम** (१) अपने धन, पशु, हाथी, घोड़ा आदि नष्ट हो जाने के समय दूसरे राजा पर चढ़ाई न करना—पहला विश्राम। (२) इन सब साधनों के होते हुए भी मित्र की रक्षा न हो सकती हो, इसलिए चढ़ाई न करना—दूसरा विश्राम। [ङ] **भेद** (१) अपनी कार्य सिद्धि के लिए शत्रु के उपद्रव को मिटाने के निमित्त एक स्थान पर उसे स्थित रखना—पहला भेद (१) दुर्ग में कर्मचारियों और सारी सेना सहित स्थित रहना—दूसरा भेद। [च] **शरण** (१) शत्रु से दुखी न होने के लिए बलवान् राजा की शरण, (२) भविष्य में शत्रु से दुःख प्राप्ति न हो—इसलिए बलवान् राजा की शरण—यह दो प्रकार की शरण।

शत्रु के साथ युद्ध के साधन

अपनी सेना को पुष्ट और शत्रु की सेना को निर्बल जान तब आक्रमण करे।

जब शत्रु को सब प्रकार से बलवान् जाने तब अपनी सेना को दो भागों में कुछ दुर्ग में और कुछ रण क्षेत्र में—इस प्रकार अपना कार्य सिद्ध करे। जब अपने को शत्रु से निर्बल जाने तब तत्काल बलवान्, धर्मात्मा राजा का आश्रय ले। जब शरण में हानि समझे तब निःशंक हो युद्ध करे। राजा अपनी नीति का निर्माण इस प्रकार करे कि मित्र, शत्रु और उदासीन उससे अधिक बलवान् न हो सकें। सब कार्यों के गुण, दोष, वर्तमान, भविष्य- भली-भाँति विचारे। भविष्य के गुण-दोषों को जानने वाला, उपस्थित कार्य पर शीघ्र निश्चय, भूतकाल से शिक्षा लेने वाला राजा शत्रुओं से कभी पीड़ित नहीं होता। ऐसा उपाय करे जिससे शत्रु, मित्र व उदासीन—कोई हानि न पहुँचा सके। जब शत्रु-राज्य पर आक्रमण के लिए जाने की इच्छा हो तो धीरे-धीरे शत्रु-नगर में जाए। जब विजय प्राप्ति का पूर्ण विश्वास हो अथवा शत्रु कष्ट में हो तभी आक्रमण करे। अपने देश की रक्षा का प्रबन्ध कर आक्रमण के लिए अन्न, सवारी, वस्त्र, अस्त्र-शस्त्र आदि लेकर शत्रु-देश में जाए और उसके सेवकों को अपने वश में कर अपने गुप्तचरों को भेजे। जंगल, जल से पूर्ण, वृक्ष आदि तीनों प्रकार के मार्गों का संशोधन कर छः प्रकार के बल अर्थात् हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल, सेना, शिल्पी—सबके लिए भोजन औषधि की व्यवस्था कर आक्रमण करे। ऐसा मित्र जो गुप्त रूप से शत्रु के साथ हो अथवा ऐसा कर्मचारी जो एक बार निकल कर फिर दोबारा यहाँ आया हो—इन दोनों से सावधान रहे क्योंकि यह कष्टदायक शत्रु हैं। सेना का दण्ड, शकट, वराह, मकर, सूची और गरुड़—इस प्रकार छः व्यूह बना युद्ध करे। जिस ओर भय हो, उसी ओर सेना बढ़ावे। नगर से निकल पद्म व्यूह बना राजा स्वयं सदैव गुप्त रहे। सेनापति और बलाध्यक्ष चारों ओर ध्यान रख जिस ओर से भय की आशंका हो—उससे पूर्व दिशा की ओर सावधान रहें। सेनापति सहित शूरवीरों से युक्त सेना के भाग को विश्राम करने, छावनी, भागने व युद्ध की तैयारी करने के लिए और भेरी, शंख आदि का संकेत समझने के लिए उचित स्थान रखे व युद्ध में सचेष्ट रहे ताकि वह सब दिशाओं में शत्रु-सेना को दूर रख सके। सेना थोड़ी हो तो सबको इकट्ठा रख युद्ध करे और अधिक हो तो इच्छानुसार विभाजित कर सूची, वज्र व्यूह रचकर युद्ध करे। सामान्य समभूमि में रथ व घोड़ों द्वारा, जलमय भूमि में हाथी व नाव द्वारा, वृक्ष-गुल्म वाली भूमि में धनुष बाण तथा अत्यन्त समभूमि में ढाल-तलवार द्वारा युद्ध करे।

शत्रु के साथ व्यवहार

व्यूह रचकर सेना को प्रसन्न करे, उसकी भली-भाँति परीक्षा लेवे, शत्रु के सम्मुख युद्ध करती सेना पर दृष्टि रखे कि कहीं वह शत्रु से मिल तो नहीं गई। शत्रु दुर्ग में हो या बाहर, युद्ध न भी करता हो पर उसे घेरे रहे, उसे परेशान करे और घास, लकड़ी, जल, ईंधन इत्यादि को रोक रखे। शत्रु के ताल, दुर्ग आकार, खाई, इन सबको नष्ट कर शत्रु को भयभीत करे और रात्रि को भयप्रद ध्वनि करे। शत्रु दल में जो राज्य-प्राप्ति के इच्छुक हैं, उन्हें तोड़-फोड़ से मिला अपने वश में कर ले। जय का इच्छुक राजा उपयुक्त समय देख युद्ध करे। युद्ध में जय-पराजय—दोनों की सम्भावना

होती है, अतः यथासम्भव युद्ध को टालना चाहिए। साम, दाम, भेद से जब काम न चले तभी युद्ध करे ताकि विजय अवश्य हो। विजय प्राप्त कर विद्वानों और धर्मात्माओं का सत्कार करे, प्राप्त धन को देशवासियों को क्षमा रूप में बाँट दे तथा सबको निर्भय कर दे। सबकी सम्मति से राजा के वश में रहने वाले व्यक्ति को उसके स्थान पर राजा बनावे और उसके मंत्रियों को कर्त्तव्य पालन का उपदेश दे। उस देश का जो धर्मानुकूल आचार है, उसे प्रमाणित करे और प्रधान पुरुषों सहित राजा का रत्नों से सत्कार करे। यद्यपि प्रिय वस्तुओं का लेना और देना अप्रियकर होता है पर विशेष समय पर यह देना और लेना अच्छा होता है। इस प्रकार युद्ध करते समय यदि शत्रु सन्धि करना चाहे तो सोना, भूमि, मित्र आदि की प्राप्ति देखकर मिलाप करे। वर्तमान समय में अल्प सामर्थ्य वाले मित्र तथा भविष्य में उन्नत व स्थिर मित्र से जो लाभ हो सकता है वह सोना, भूमि के लाभ से कहीं अधिक है। धर्मज्ञ, कृतज्ञ, दूरदर्शी, स्थिर और अनुरक्त प्रकृति का मित्र चाहे छोटा भी हो, प्रशंसनीय होता है। जो शत्रु बुद्धिमान्, कुलीन, शूर, चतुर, दाता, कृतज्ञ व धीर है वह कठिनता से ही वश में आता है। जो राजा उदासीन, श्रेष्ठ, ज्ञानी, शूर, कृपालु और सदा दानशील है, उसकी शरण में रह शत्रु से युद्ध करे। जो भूमि दोष रहित, उपजाऊ, पशुओं के लिए लाभकारी है, यदि उसका बिना त्याग किए आत्म रक्षा न होती हो तो बेशक परित्याग कर दे। विपत्ति के लिए धन की रक्षा करे, धन की अपेक्षा स्त्री की रक्षा पहले करे, स्त्री व धन दोनों से पहले आत्मा की रक्षा करे। सब ओर से आपत्ति आने पर राजा मोह को छोड़ साम आदि जो उपाय हैं उनमें से किसी एक व दो का पालन करे। उपाय, उपाय का बताने वाला, उपाय के द्वारा प्राप्त वस्तु—इन तीनों का अवलम्बन कर कार्य सिद्ध करे।

भोजन परीक्षित हो

इस प्रकार मंत्रियों के साथ सब विषयों को विचार कर दोपहर-भोजन करने के लिए अन्तःपुर में प्रवेश करे। उत्तम सेवकों द्वारा—जो विश्वास और काल के ज्ञाता हों—उनके द्वारा सुपरीक्षित, विष नाशक भोजन करे। भोजन के सब द्रव्यों की परीक्षा करे और रोगहरण करने वाली औषधियाँ उसमें मिलाई जाएँ। जो स्त्री सुन्दर, उत्तम वेश और आभूषणादि से अलंकृत, शुद्ध हृदय, परीक्षित हो, वही पंखा, पानी, धूप तथा स्पर्श—इन कार्यों को करे। इस विधि से सवारी, शयन, आसन, स्थान, क्षौर आदि कार्य बुद्धिमत्ता से करे। भोजन करने के बाद अन्तःपुर में स्त्रियों के साथ वार्त्तालाप कर फिर राज्य-सम्बन्धी कार्य करे। इसके बाद अस्त्र-शस्त्र तथा राजकीय वेश से सज्जित हो वाहन, मंत्रणागृह, रत्नगृह, वस्त्रगृह इत्यादि का स्वयं निरीक्षण करे। शाम को सन्ध्योपासन कर शस्त्रों से अलंकृत हो रहस्य और गुप्त वार्त्ता करने वालों से मिले और विचार करे। दूसरे स्थान पर जाकर वहाँ कर्मचारियों के योग्य कार्यों का निर्देश कर पुनः राज प्रासाद में प्रवेश करे। पश्चात् अल्प भोजन के बाद विश्रामगृह में शयन करे। राजा नीरोग रहता हुआ इस प्रकार सारे कार्यों का संचालन करे। यदि अस्वस्थ हो तो मंत्रियों और भृत्यों को आज्ञा देकर राजकार्य करे।

न्याय-व्यवस्था

अठारह प्रकार के अभियोग

राजा बुद्धिमान् मंत्री और विद्वानों के साथ उत्तम वस्त्र-आभूषण धारण करके न्यायालय में प्रवेश करे और कर्मचारियों के काम का निरीक्षण करे। देशाचार और शास्त्राज्ञा के अनुसार साक्षियों की परीक्षा कर १८ प्रकार के अभियोगों का निर्णय करे।

अठारह प्रकार के अभियोग निम्न हैं :—

(१) लेन-देन, (२) अमानत, (३) उस वस्तु को वेचना जिसका कोई स्वामी न हो, (४) साँझा व्यवहार, (५) ऋण लेकर इन्कार करना, (६) मेहनत या परिश्रम का फल न देना, (७) प्रण का भंग, (८) क्रय-विक्रय के विवाद, (९) स्वामी-सेवक विवाद, (१०) भूमिसीमा विवाद, (११) निन्दा करना व दूषण लगाना, (१२) मार-पीट, (१३) चोरी, (१४) साहस कर धनादि अपहरण, (१५) बलात् नारी अपहरण, (१६) स्त्री-पुरुष धर्म, (१७) जूआ, (१८) पशु-पक्षी सम्वन्धी झगड़ा व उनका लड़ना।

राजा सदा चित्त में धर्म का ध्यान कर कर्मचारियों के कार्य का ध्यान रखे ताकि वह आलस्य, रिश्वत व अन्याय द्वारा राजा के न्याय को दूषित न करें। यदि वह स्वयं उनका निरीक्षण न कर सके तो विद्वानों को इस काम के लिए नियुक्त करे। वह विद्वान् न्यायालय में बैठ कर व खड़े होकर तीन सलाहकारों के साथ राज्य-कार्य का निरीक्षण करें। जिस देश में एक विद्वान् वेद-ज्ञाता तीन विद्वानों के साथ राजाज्ञा के अनुसार विवाद-निर्णय करने बैठता है, उसे सभा का रूप समझना चाहिए। अधर्म से बिंधा धर्म जिस सभा में रहता है और सभासद् अधर्म को रोक नहीं सकते, तब वे सभासद् अधर्म से बिंध जाते हैं। सभा में या तो जाना नहीं चाहिए, यदि जाएँ तो सत्य और उचित बात कहनी चाहिए। यदि जानता हुआ भी सत्य न बोले व विपरीत बोले तो वह व्यक्ति पापी हो जाता है। जहाँ पर सत्य पर असत्य और धर्म पर अधर्म विजयी हो जाए और देखने वाले उसका विरोध न करें तो उस सभा में सभासद् स्वामी सहित मरे हुए ही समझे जाते हैं। धर्म की रक्षा करने से मनुष्य की रक्षा होती है, धर्म का नाश करने से व्यक्ति और समाज का नाश होता है। अतः धर्म का कभी नाश न करना चाहिए ताकि मारा हुआ धर्म हमें नष्ट न कर दे।

अधर्म के चार भाग होते हैं—प्रथम भाग को अधर्मी, द्वितीय भाग को साक्षी, तृतीय भाग को सभासद तथा चतुर्थ भाग को स्वयं राजा प्राप्त करता है। जहाँ निन्द-नीय मनुष्य निन्दा पाते हैं, वहाँ राजा और सभासद् पाप मुक्त हो जाते हैं, केवल अधर्मी को ही पाप लगता है। स्वर, वर्ण, रूप, इंगित, आकार, नेत्र, चेष्टा आदि बाह्य चिन्हों को देख मनुष्यों के हृदय की बात को जाने।

सम्पत्ति सम्बन्धी अभियोग

अनाथ बालक के धन की रक्षा राजा उस समय तक करे जब तक उसका शैशव

समाप्त न हो अथवा उसका समावर्तन न हो जाए। बाँझ, निर्वंशी व कुल से बहिष्कृत, पतिव्रता, विधवा और रोगिणी —इन सबकी सम्पत्ति आदि की रक्षा राजा करे जिससे कोई अपहरण न कर सके। इन सबके जीवन काल में यदि उनके सम्बन्धी सम्पत्ति पर अधिकार कर लें तो धार्मिक राजा ऐसे लोगों को चोर के सदृश दण्ड दे। जिस सम्पत्ति का कोई स्वामी नहीं, राजा तीन वर्ष तक उसकी रक्षा करे। यदि इस अवधि में स्वामी आ जाए तो उसे दे दे, अन्यथा तीन वर्ष बाद उस सम्पत्ति का स्वामी राजा हो जाता है। जो मनुष्य राजा के सम्मुख 'यह वस्तु मेरी है' ऐसा कहे तब राजा उस वस्तु का रूप, संख्या आदि सप्रमाण पूछ वापस कर दे। यदि वह सप्रमाण सत्य न बतलाए तो उस वस्तु के मूल्य के समान दण्ड पाये क्योंकि उसने असत्य बोला है। उस वस्तु का छटा, दसवाँ व बारहवाँ भाग राजा सज्जन पुरुषों के धर्म का ध्यान करता हुआ ले ले। कहीं पड़ी हुई वस्तु को पावे तो उसकी रक्षा उत्तम पुरुषों द्वारा करा के, उसे संभाल ले और चोरों को हाथी से मरवा दे। जो वस्तु पृथ्वी में दबी है, उसे सत्य के साथ राजा के पास ले जाए। उस वस्तु का छटा व बारहवाँ भाग राजा लेवे। उस वस्तु में स्वामी का भाग वस्तु के स्वरूप के अनुसार करे। यदि असत्य बोले तो अपनी वस्तु का आठवाँ भाग दण्ड स्वरूप दे अथवा उस वस्तु के अल्प भाग के तुल्य निज धन में से दण्ड स्वरूप दे। यदि राजा स्वयं उस दबी हुई वस्तु को पावे तो आधा भाग वेदज्ञ विद्वान् को दे, शेष आधा भाग स्वयं रखे। राजा चोर की चुराई हुई वस्तु को सब वर्णों को दे। यदि राजा स्वयं ही उस वस्तु को ले ले तो उसे चोर सदृश पाप लगेगा।

राजा व राजकर्मचारी स्वयं कार्य को उत्पन्न न करें तथा वादी-प्रतिवादी द्वारा निवेदित कार्य का धन के लोभ से त्याग न करें। वाद-विवाद का निर्णय सत्य तथा न्याय से करें। जिस प्रकार शिकारी घाव खाए मृग के शरीर से गिरे रक्त बिन्दुओं द्वारा उसके स्थान का अनुसंधान पा लेता है, उसी प्रकार राजा अनुमान से धर्म पद की ओर चलने वाला हो। यदि ऋणदाता ने राजा के सम्मुख अपने ऋण के विषय में निवेदन किया हो तथा प्रमाणों द्वारा उस ऋण को सिद्ध कर दिया हो तो राजा उसके धन को ऋणी से दिला दे। जिस-जिस उपाय से ऋणदाता अपने धन को प्राप्त कर सके, उस-उस उपाय से ऋणी को पकड़ राजा धन को दिला दे। धर्म, व्यवहार(साक्षी लेखादि) छल, आचरण (व्रत, उपवासादि) तथा बल—इन पाँच उपायों में से किसी के भी द्वारा अपने दिए धन को प्राप्त करे। जो ऋणदाता ऋणी से अपने उपाय द्वारा स्वयं धन को प्राप्त कर लेता है—राजा उसका विरोध न करे। यदि वादी, साक्षी व लेख आदि साधनों से अपने अभियोग को सत्य प्रमाणित कर दे तो राजा ऋणदाता को ऋणी से धन दिला दे और असत्य भाषी ऋणी को दण्ड दे। यदि न्यायालय ऋणी से ऋण परि-शोध के लिए कहे और ऋणी उसे स्वीकार न करे तो ऋणदाता न्यायालयों में अपने प्रमाण उपस्थित करे। जिस नगर में प्रतिवादी ने कभी भी वास नहीं किया परन्तु वादी उस नगर को कहकर बाद में कहे कि मैंने उस नगर का नाम नहीं लिया, तो वह वादी सर्वथा असत्य भाषण करता है। जो ऐसा कहे कि इसने मेरे हाथ से लिया है, फिर कहे कि मेरे पुत्र के हाथ से लिया है, न्यायाधीश के प्रश्न का उत्तर नहीं देता, और प्रमाणित

नहीं करता, जो एकान्त में साक्षियों को वरगलाता है और न्यायाधीश के प्रश्न का उत्तर नहीं देता तथा एक बात पर स्थिर नहीं रहता, न्यायाधीश की आज्ञा पर बोलता नहीं और अपने अभियोग को प्रमाणित नहीं करता, जो आदि व अन्त की बात को नहीं जानता, वह अपने तात्पर्य व अभियोग की हानि करता है। हमारे साक्षी हैं, ऐसा कहने पर साक्षी उपस्थित नहीं करता, न्यायाधीश उसे पराजित घोषित करे। जो वादी न्यायाधीश के सम्मुख तो बोलता है पर प्रतिवादी के सम्मुख मूक रहता है, वह व्यवहार से झूठा प्रमाणित होकर कारावास दण्ड के योग्य है। जो वादी व प्रतिवादी जितने धन को मिथ्या बतलाए, उतने धन का दुगुना दोनों से राजा दण्ड स्वरूप लेवे क्योंकि दोनों ही अधर्मी हैं। जब प्रतिवादी न्यायालय में आकर कहे कि मैंने इस ऋणदाता से धन नहीं लिया है तब वादी तीन अतिरिक्त साक्षियों द्वारा ऋण देने को प्रमाणित करे।

साक्षी सम्बन्धी नियम

साक्षी कैसे हों ? गृहस्थ, सन्तान वाले, कुलीन, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पड़ोसी। अचानक उत्पात तथा विपत्ति से आया साक्षी ठीक नहीं। सब वर्णों को सत्य भाषी, धर्मज्ञाता, निर्लोभ—साक्षी होने चाहिएँ। निम्न प्रकार के साक्षी नहीं होने चाहिएँ—(१) वाद-विवाद से सम्बन्ध रखने वाला, (२) मित्र, (३) सहायक शत्रु, (४) दोष युक्त, (५) व्याधि ग्रस्त, (३) दुष्ट प्रकृति वाला, (७) राजा, (८) रसोइया, (९) वेद पाठी, (१०) ब्रह्मचारी, (११) सेवक, (१२) नीचकर्मी, (१३) चोर, (१४) विरुद्ध कर्म करने वाला, (१५) वृद्ध, (१६) शिशु, (१७) एकाकी, (१८) अंगहीन, (१९) दुखी, (२०) मदमस्त, (२१) उन्मत्त, (२२) भूख-प्यास से पीड़ित, (२३) क्रोधी, (२४) तस्कर।

स्त्रियों की साक्षी स्त्रियाँ, द्विजों के द्विज, शूद्रों के शूद्र और चाण्डालों के साक्षी चाण्डाल हों। अभियोग की वास्तविकता के जानने वाले साक्षी हों पर घर की चोरी, वन की लूट और हत्या के अभियोग की साक्षियों में इन प्रतिबन्धों की आवश्यकता नहीं। इन अभियोगों में स्त्री, पुत्र, सम्बन्धी, वृद्ध, शिष्य, सेवक भृत्य—यह भी साक्षी हो सकते हैं। साक्षी में बालक, वृद्ध, आतुर, उन्मत्त के कथन को मिथ्या मानना चाहिए। साहस के कार्य (डाका आदि) चोरी, अपहरण, गाली-गलौच, लाठी आदि से मारना—इन अभियोगों में साक्षी की परीक्षा न करे। जहाँ साक्षी दो प्रकार के हों, वहाँ एक प्रकार के साक्षियों की गवाही ग्रहण करे। संख्या में समान दो प्रकार की गवाहियाँ होने पर उत्कृष्ट गुण वाले की साक्षी मान्य हों तथा समान गुण वाले साक्षियों में द्विज प्रामाणिक हो। अपने नेत्रों द्वारा देखे तथा कानों द्वारा सुने की साक्षी लेना उचित है। इसमें सत्य बोलने से धर्म और अर्थ की हानि नहीं होती। जो मनुष्य सभा में देखे व सुने के विपरीत साक्षी देता है वह नरकगामी होता है। अभियोग की वास्तविक दशा को देखने व सुनने वाले को यदि न्यायालय में बुलाया जाए तो देखे व सुने के-जैसा ही वह कहे। एक निर्लोभी जो साक्षी दे सकता है वह बहुत सारी लोभी स्त्रियाँ व पुरुष नहीं दे सकते हैं। स्त्रियों की बुद्धि अस्थिर होती है। दोष युक्त पुरुष

भी साक्षी होने योग्य नहीं है। जो बात स्वभाव से कहे उसे मान्य समझना चाहिए। जो बात सिखावट से कही जाए, वह मान्य नहीं हो सकती।

न्यायाधीश और साक्षी

सभा में वादी-प्रतिवादी की उपस्थिति में विधिपूर्वक प्राड्विवाक (वकील) की नियुक्ति राजाज्ञा से करे। साक्षी को आज्ञा दे—"अपनी आँखों देखी अवस्था व वृतान्त को जो कुछ तुम जानते हो, वह सत्य पूर्वक कहो। तुम्हारी यहाँ गवाही है।" सत्य भाषण से साक्षी उच्च लोक को प्राप्त करता है और यश को प्राप्त करता हुआ पूजित होता है। असत्य बोलने वाला सौ जन्म तक बन्धन में फँसता है। इसलिए गवाही में सत्य ही बोले। सत्य बोलने से साक्षी पवित्र होता है और धर्म के मार्ग में आगे बढ़ता है। इसलिए सब वर्णों के साक्षियों को सत्य ही बोलना चाहिए। अपने आत्मा का साक्षी अपना आत्मा ही है, अपने आत्मा के विरुद्ध कभी व्यवहार न करे। आत्मा ही सर्वोत्तम साक्षी है। पापी समझता है कि उसे कोई नहीं देखता। यह उसका भ्रम है। देव उसके पाप को देखते हैं और अन्तर्यामी परमात्मा देखता है। आकाश, पृथ्वी, जल, अपना हृदय, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, रात्रि, सन्ध्या तथा कर्मफलदाता परमात्मा सारे कर्मों को देखता है। न्यायाधीश प्रातः स्नान, सन्ध्या, उपासना आदि से शुद्ध हो आए हुए द्विज साक्षियों को पूर्व व उत्तर दिशा की ओर खड़ा कर उनसे प्रश्न करे। उन सबसे कहे 'सत्य बोलो।' विद्वान्, स्त्री, बालक, मित्र द्रोही और कृतघ्न—इन सबको जो फल मिलता है, वही असत्य बोलने वाले को मिलेगा। यदि तुम असत्य बोलोगे तो तुम्हारे जन्म भर के किए पुण्य कर्म कुत्तों को प्राप्त होंगे। यदि तुम अपने को एकाकी मानते हो तो ऐसा न समझो क्योंकि तुम्हारे हृदय में पाप-पुण्य का द्रष्टा परमात्मा है। परमात्मा की आज्ञा भंग करके गंगा व कुरुक्षेत्र जाने से तुम पाप-फल से बच नहीं सकते। जो साक्षी असत्य बोले वह नग्न, मुण्ड, कपाल हाथ में लिए भिक्षा लेने वाला, अन्धा हो शत्रु कुल में जन्म लेने वाला होता है। जो साक्षी अनृत भाषण करता है, वह अधोशिर हो नरक में जाता है। जो मनुष्य न्यायालय में प्रलोभन से असत्य भाषण करता है, वह मनुष्य अन्धे द्वारा काँटों वाली मछली खाने से प्राप्त असह्य कष्ट की तरह पीड़ा प्राप्त करता है।

साक्षी सत्य ही बोले

जो मनुष्य साक्षी में अपने आत्मा का हनन नहीं करता वह सन्देह और भय रहित हो लोक में कल्याण को प्राप्त करता है। असत्य बोलने से किस अभियोग में क्या फल मिलता है—मनु उसका वर्णन इस प्रकार करते हैं। पशु के अभियोग में असत्य बोलने से पाँच पीढ़ी तक, गौ के अभियोग में दस पीढ़ी, घोड़े के अभियोग में सौ पीढ़ी, मनुष्य के अभियोग में सहस्र पीढ़ी को कलंकित कर देता है। सोने के अभियोग में उत्पन्न अथवा उत्पन्न होने वाले बान्धवों का और भूमि के अभियोग में सर्वस्व का नाश करता है। इसलिए भूमि के विषय में असत्य साक्षी न दे। जल, स्त्री, भोग,

मैथुन, मोती, रत्न आदि के अभियोग में भी भूमि के समान ही फल मिलता है। असत्य भाषण से प्राप्त इन सब दोषों का ध्यान करते हुए जैसा देखा या सुना हो, वही सत्य बोलना चाहिए। ऋणादि के अभियोग में यदि नीरोग साक्षी तीन पक्ष (डेढ़ मास के भीतर) कुछ न कहे तो उस अभियोग में धन का दसवाँ भाग दण्ड स्वरूप दे। न्यायालय में गवाही देकर आने वाला साक्षी सात दिवस के भीतर अग्निदाह सम्बन्धी और ज्ञाति की मृत्यु—इनमें से कोई संकट उस साक्षी को हो तो वह साक्षी उस ऋण को तथा उसके दशमांश को दण्ड स्वरूप दे। जिस अभियोग में कोई साक्षी नहीं और न्यायाधीश उसकी वास्तविकता को नहीं समझ सकता तो सौगन्ध द्वारा सत्य वृत्तान्त को पूछे। पर साधारण अवस्था में स्वल्प अर्थ हेतु वृथा सौगन्ध नहीं खानी चाहिए। वृथा सौगन्ध खाने वाले का कोई विश्वास नहीं करता। जो विवाद साक्षियों के असत्य भाषण के कारण निर्णीत हो गए हैं और बाद में उनका असत्य होना प्रमाणित हुआ है तो उस निर्णय को रद्द समझना चाहिए। लोभ, मोह, भय, मैत्री, काम, क्रोध, अज्ञानता, बालकपन—इन कारणों से असत्य साक्षी दी जाती है। इन पर विश्वास न करे।

दण्ड के विविध रूप

यदि लोभ वश अनृत बोले तो सौ पण, मोहवश बोले तो सहस्र दण्ड, भय से बोलने पर इससे दुगुना और मित्रता से झूठ बोलने पर चौगुना दण्ड दें। कामवश असत्य बोले तो दस गुण पूर्व साहस, क्रोधवश झूठी साक्षी दे तो तीन उत्तम साहस, अज्ञानता वश बोले तो दो सौ पण, बालकपन से मिथ्या भाषण करे तो सौ पण दण्ड दे। असत्य भाषी साक्षी को राजा देशनिकाला दण्ड दे। विद्वान् को शारीरिक दण्ड दिए बिना देशनिकाला दे। उपस्थ, उदर, जिह्वा, दोनों हाथ, दोनों पाँव, कान, आँखें, नाक, धन, शरीर—यह दस दण्ड स्थान हैं। देश, काल, अपराध, अपराधी का शरीर, धन, सम्पत्ति, सामर्थ्य, छोटा-बड़ा अपराध—इन सबको देखकर दण्ड देना चाहिए। धर्म विरुद्ध दण्ड यश-कीर्ति का नाशक है, स्वर्ग नाशक है, अतः धर्म विरुद्ध दण्ड न दे। अदण्डनीय को दण्ड देने, दण्डनीय को दण्ड न देने से राजा इस जन्म में अपयश तथा दुःख भागी होता है। प्रथम बार वाग् दण्ड दे, दूसरी बार धिक्कार, तृतीय बार अर्थ दण्ड, इस पर भी न माने तो कारागार तथा शरीरांग छिन्न—यह दण्ड दे। यदि शरीरांग छिन्न करने पर भी न माने तो चारों प्रकार के दण्ड एक साथ देने चाहिए।

तोल-माप

नेत्रों द्वारा झरोखे से आने वाली सूर्य किरणों को देख जो रजकरण दिखाई देते हैं उनका नाम त्रसरेणु है। आठ त्रसरेणु का एक लिक्षा, तीन लिक्षा की एक राई, तीन राई का एक सरसों, छः सरसों का एक जौ, तीन जौ की एक रत्ती, पाँच रत्ती का एक माशा, १६ माशों का एक सुवर्ण, चार सुवर्ण का एक पल, दश पल का एक धरण। रुपये के तोल की संज्ञा इस प्रकार है—दो रत्ती का एक माशा, १६ माशा का एक धरण, १६ माशा ताँबा को ताम्रिक तथा कार्षिक पण कहते हैं। दस धरण का एक शतमान

और चार सुवर्ण का एक निष्क होता है। ढाई सौ पण का एक साहस, पाँच सौ पण का मध्यम साहस, सहस्र पण का उत्तम साहस होता है।

ऋण परिशोध

ऋण परिशोध के लिए प्रति सैंकड़ा पाँच पण ब्याज, और यदि ऋण सत्य सिद्ध हो जाए तो ऋणी दस पण सैंकड़ा ब्याज दे। वशिष्ट के अनुसार सौ रुपया पर सवा रुपया मासिक ब्याज ले। प्रति सैंकड़ा दो पण मासिक ब्याज लेने से - धर्म की दृष्टि से पापी नहीं होता। ब्राह्मण से दो प्रति सैंकड़ा, क्षत्रिय से तीन प्रति सैंकड़ा, वैश्य से चार प्रति सैंकड़ा और शूद्र से छ: प्रति सैंकड़ा पण ब्याज ले।

रेहन या बंधक व्यवस्था

अब रेहन की रीति कहते हैं। लाभ देने वाली वस्तु जैसे भूमि, गौ आदि— इनके रेहन पर ब्याज न ले। अधिक काल तक रेहन रखने पर यदि स्वामी अपनी राशि का कुछ अधिक न पाए तो उस वस्तु को दे दे अथवा वेच दे। ऐसा न करे कि जब तक मूल धन न पाए तब तक उससे लाभ प्राप्त करता रहे। बंधक जबरर्दस्ती नहीं भोगना चाहिए। यदि भोगे तो ब्याज छोड़ दे, अथवा वस्तु के स्त्रामी को उसका मूल्य देकर प्रसन्न करे। यदि ऐसा न करे तो बन्धक वस्तु का वह चोर होता है। बन्धक और अमानत—दोनों दीर्घ काल तक पड़े हुए भी समय को नहीं लाँध जाते, जब स्वामी चाहे तभी देने होते हैं।

गौ, बैल, ऊँट, सवारी का घोड़ा और जो सिधाने योग्य काम में लगाया गया है, इन वस्तुओं को जब प्रीति के साथ काम में ला रहा हो तो यह कभी नष्ट नहीं होतीं। स्त्रामी के सामने इसमें से भोगी जाती हुई जिस किसी वस्तु को स्वामी बराबर दस वर्ष चुपचाप देखता रहता है तो वह उस वस्तु को दस वर्ष के पीछे नहीं प्राप्त कर सकता है। स्वामी यदि न पागल है न बालक है और उसकी आँखों के सामने वह वस्तु भोगी जा रही है, तो व्यवहार से वह वस्तु उसकी नहीं रहेगी, भोगने वाला उस वस्तु को पाने योग्य हो जाता है। बन्धक, भूमि, बालक का धन, और अमानत, दासी, राजा का धन और श्रोत्रिय का धन—यह भोग से खोए नहीं जाते—दस वर्ष पीछे भी स्वामी ले सकता है। जो मूर्ख स्वामी की आज्ञा बिना चोरी से बन्धक का भोग करता है, उसे इस भोग के बदले आधा ब्याज छोड़ना चाहिए।

ब्याज की सीमा

ब्याज की राशि मूल राशि से दुगुनी नहीं बढ़नी चाहिए। अनाज, फल, बोझ ढोने वाले पशुओं के विषय में पाँच गुने से अधिक न बढ़े। उचित और निश्चित मात्रा से अधिक ब्याज न ले। अधिक से अधिक पाँच सैंकड़ा योग्य है। मासिक हिसाब करने के पश्चात् वर्ष तक ब्याज लेने के बाद, वर्ष के पश्चात् ब्याज न ले, शास्त्र विरुद्ध (पाँच प्रतिशत से अधिक) ब्याज न ले, चक्र वृद्धि ब्याज, काल वृद्धि (दुगुना आ जाने के बाद

का ब्याज) कारित (इतने समय पीछे दुगुना ब्याज होगा) कामिक (ब्याज में शरीर से कर्म करना)—ऐसे व्याज न ले। जो ऋणी ऋण देने में असमर्थ हो फिर लेख (तमस्सुक) कर देना चाहे वह पिछला ब्याज धनी को देकर लेख को नया कर दे। यदि ब्याज का धन भी न दे सके तो बिना दिए उसी नए लेख में सारे धन को चढ़ा दे। तब उस पर जितनी वृद्धि हो, उतनी ही देने योग्य है। चक्रवृद्धि में देश काल का नियम करके, देश काल का उल्लंघन करने वाला, उसके दूसरे फल को नहीं पाता। किन्तु जल-थल की यात्रा में चतुर देश, काल और वस्तु के जानने वाले जो वृद्धि निश्चित कर दें, वही वहाँ दी जाए। जो मनुष्य जिसका ज़ामिन हो, वह यदि धन देने के समय उसे न दिखाई दे, तो वह अपने धन से धनी का ऋण दे। ज़मानत का धन, वृथा दान, जुए का धन, शराब का धन, दण्ड और कर का बकाया—पिता के मरने पर पुत्र द्वारा देने योग्य नहीं है। पर माल के ज़ामिन की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र उस ऋण को दे जिस ऋण के प्रतिशोधार्थ उसका पिता ज़ामिन था। जो देने का ज़ामिन नहीं हुआ किन्तु विश्वास का ज़ामिन है—ऐसा जिसके विषय में ज्ञात है, उस ज़ामिन के मरने पर धनी किसी हेतु से भी धन नहीं पा सकता। पर यदि ज़ामिन को ऋणी से धन मिल चुका है और पूरा मिल चुका है, तब वह प्राप्त धन वाला ज़ामिन अपने धन से ही दे (अथवा जितना लिया हो, उतना दे)—यह मर्यादा है।

मद्य आदि से उन्मत्त, पागल, शोकादि से पीड़ित, पराधीन, बाल, वृद्ध तथा असम्बद्ध पुरुष से किया ऋण आदि का व्यवहार सिद्ध नहीं होता। वह भाषा (इकरार) जो धर्म वा नियत व्यवहार (रिवाज) के विरुद्ध है, वह चाहे लेख आदि से पक्की भी कर दी गई हो, वह सच्ची, प्रामाणिक नहीं होती। छल से किए बन्धक (गिरवी), विक्रय, दान और प्रतिग्रह अथवा अन्यत्र भी जहाँ कहीं अमानत आदि में छल देखे उस सबको स्वीकार न करे। ऋण लेने वाला यदि मर जाए अथवा लापता हो जाए पर उस ऋण का व्यय यदि उसने सारे कुटुम्ब के लिए किया हो तो ऋण लेने वाले के बान्धवों को चाहिए कि उस ऋण को अपने धन से दें चाहे वे अलग भी हो गए हों। बल (ज़बर्दस्ती) से दिया, बल से भोगा, बल से लिखवाया, बल से किया—ये सारे व्यवहार मनु ने निषिद्ध किए हैं। तीन पुरुष दूसरे के लिए क्लेश उठाते हैं—साक्षी, ज़ामिन और न्यायाधीश और चार पुरुष दूसरों द्वारा बढ़ते हैं—ब्राह्मण, धनी, वणिक् और राजा। धन से क्षीण भी राजा अग्राह्य धन किसी से न ले और धन से समृद्ध भी ग्राह्य थोड़े भी धन को न छोड़े। क्योंकि अग्राह्य के ग्रहण से और ग्राह्य के त्याग से राजा की दुर्बलता पाई जाती है। अपना हक लेने से, वर्णों की परस्पर प्रीति बढ़ाने से और दुर्बलों की रक्षा से, राजा का बल बढ़ता है, वह लोक और परलोक में यशस्वी होता है। इसलिए राजा यम की तरह अपने प्रिय-अप्रिय को छोड़, क्रोध को जीत और इन्द्रियों को वश में कर यम के सदृश सबसे समता से बर्त्ते। जो राजा मोहवश अधर्म से कार्य करता है, उस दुरात्मा को शीघ्र शत्रु वश में कर लेते हैं। जो काम क्रोध रोक धर्म से सारे व्यवहारों को देखता है, प्रजा उसकी ओर वैसे ही झुकती है जैसे समुद्र की ओर नदियाँ। अपनी स्वतन्त्रता से धन लेने का यत्न करते हुए धनी पर जो ऋणी राजा के पास

नालिश करे, उस ऋणी को राजा ऋण का चौथा हिस्सा दण्ड भी दे और धनी का वह धन भी दिलावे। बराबर की जाति वा निचली जाति का ऋणी ऋण न दे सके तो कर्म से भी धनी का ऋण चुका दे पर जो ऊँची जाति का है, वह धीरे-धीरे दे ही दे। इस प्रकार राजा आपस में झगड़ते हुए मनुष्य के कार्य को साक्षी और कागज़ आदि से सिद्ध कर व्यवस्थित करे।

अमानत के नियम

कुलीन, सदाचारी, धर्मज्ञ, सत्यवादी, बहुत बन्धु-बान्धवों वाले धनी आर्य के पास बुद्धिमान् को अमानत रखनी चाहिए। जो मनुष्य जिस प्रकार से (मोहर लगा कर व बिना मोहर, किसी के सामने व अकेले) जिसके हाथ में अमानत रखे, वह वैसे ही वापस ले, जैसे देना होता है, वैसे लेना होता है। जो माँगने पर अमानत रखने वाले को अमानत देता नहीं है—उससे न्यायाधीश माँगे पर रखने वाले के सामने न माँगे। साक्षी के अभाव में न्यायाधीश अवस्था और रूप से भले प्रतीत होने वाले अपने गुप्तचरों द्वारा उसके घर में अपना सोना ठीक रीति से अमानत रखवाए। जब माँगने पर जैसी रीति से जैसे रूप में अमानत रखी थी, उसे स्वीकार करता है, तो समझना चाहिए कि उसके पास ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसकी दूसरों ने नालिश की है। पर यदि ठीक उसी प्रकार उसका वह अमानत रखा सोना न दे, तब उसे पकड़वा कर दोनों अमानतें—पहली और अब की भी—उससे दिलवानी चाहिए—यह धर्म मर्यादा है। खुली वा मोहर वाली अमानत—अमानत वाले के जीते-जी—उसके वारिसों—पुत्र, भाई, स्त्री—को नहीं देनी चाहिए। क्योंकि किसी विघ्न के कारण उस तक न पहुँचाने से वह अमानत खो जाती है यदि कोई विघ्न न हो तो नहीं खोई जाती। जो स्वयमेव मरे हुए के वारिसों को मरने वाले की अमानत दे दे उस पर न राजा से न अमानत रखने वाले बन्धुओं द्वारा कोई आक्षेप होना चाहिए कि उसने वायदा पूर्ण नहीं किया। यदि कुछ शंका हो तो बिना छल ही उस अर्थ का प्रीति पूर्वक पता लगाए या उसके शील को विचार कर सभ्य मार्ग साधे। इन सारी अमानतों में अमानत के पाने की यही विधि है, मोहर वाले में कोई शंका भी उस पर न हो, यदि वह अमानत उस हरेक लगाई गई मोहर से बिगड़ी न हो। चोरों से हरी, जल से बहाई गई या अग्नि से जलाई गई अमानत को वह न दे। यदि उसमें से कुछ लिया हुआ हो, तो उतना दे दे। अमानत के चुरा लेने वाले व बिना रखे माँगने वाले को इन सब उपायों से और वैदिक शपथों से निश्चय करना चाहिए। जो अमानत वापस नहीं देता है, बिना अमानत रखे माँगता है, उन दोनों को चोर की तरह दण्ड देना चाहिए, वा उस धन के बराबर दण्ड देना चाहिए। अमानत के हरने वाले, तथा मोहर वाली अमानत के हरने वाले को भी राजा बिना भेद के हरेक वर्ण के पुरुष को उस अमानत के बराबर दण्ड दे।

जो धोखे से दूसरे के धन को हरे, उसे साक्षियों समेत अनेक प्रकार के दंडों से दंडित करना चाहिए। जिसने साक्षियों के सामने जितनी अमानत धरी हो, उतनी ही वह जाननी चाहिए, अन्यथा कहने वाला दण्ड के योग्य होता है। जिसने अमानत

एकान्त में दी हो और एकान्त में ली हो, वह एकान्त में ही वापस देनी चाहिए, जैसे देना वैसे ही लेना होता है। अमानत रखे व प्रीति से (कुछ काल भोगने के लिए) दिये धन का इस प्रकार अमानतधारी को पीड़ा न देता हुआ राजा निर्णय करे। जो स्वामी न होकर चोरी से स्वामी का धन वेचता है, तो स्वामी का सम्बन्धी होने पर उसे छः सौ पण दण्ड देना चाहिए। यदि सम्बन्धी नहीं तो उसे चोर का पाप प्राप्त होता है। किसी वस्तु को केवल काम में ले आने से कोई उसका स्वामी नहीं बन जाता। स्वामी वही है जिसने उचित रीति से उसे पाया है। एक वस्तु को दूसरे के साथ मिलावट करके, न सार रहित, अर्थात् खराब-बिगड़ी हुई, न ही तोल-माप में कम और न ही ढाँप कर वेचनी चाहिए।

ऋत्विज् और उनकी दक्षिणा

यज्ञ में चुना ऋत्विज् यदि व्याधि आदि से बीच में ही अपने कार्य को त्याग दे, तो उसे दूसरे कर्म करने वालों के साथ अपने किये कर्म के अनुसार हिस्सा देना चाहिए पर यदि दक्षिणा दी जाने पर अपने कर्म को छोड़े तो पूरा ही हिस्सा ले और शेष रहा कर्म दूसरे से करवा दे। जिस कर्म में प्रत्येक की जितनी दक्षिणा निश्चित हो, वह उतनी ले ले अथवा समूची लेकर आपस में बाँट लें। यज्ञ की दक्षिणा रूप अध्वर्यु रथ लेवे, ब्रह्माव होता घोड़ा तथा उद्‌गाता गाड़ी लेवे। मुख्य ऋत्विज् --होता अध्वर्यु ब्रह्मा उद्‌गाता - यह चार आधी दक्षिणा दूसरे चार— मैत्रावरुण, प्रतिप्रस्थाता, ब्राह्मणाच्छंसी, प्रस्तोता—आधे की आधी और तीसरे, चमू—अच्छावाक्, नेष्ठा, अग्नीध्र, प्रतिहर्त्ता—तीसरे अंश के भागी होते हैं और चौथे अंश के चार—ग्रावस्तुत्, नेता, पोता, सुब्रह्मण्य --भागी होते हैं। मिलकर काम करने वाले अन्य मनुष्यों के लिए भी इसी प्रकार के भागों की कल्पना करनी चाहिए।

जिसने धर्म (यज्ञादि) के लिए याचना करते हुए किसी को कुछ धन दिया हो, बाद में वह धन काम में न लगे, तो वह वापस नहीं हो सकता। यदि दर्प व लोभ से वह उस धन को वापस ले ले तो राजा उसे चोरी के अपराध में एक सुवर्ण दण्ड दे। इस प्रकार की व्यवस्था धर्मानुसार है।

जो नौकर बिना रोग के, केवल अहंकार के कारण—अपने कर्त्तव्य का पालन न करे, उसे आठ रत्ती दण्ड —अपराध के अनुसार सोना, चाँदी, ताँबा इत्यादि की आठ रत्ती दण्ड दे। रोगी होने के बाद स्वस्थ होकर निश्चित काम करे, तो वह लम्बे काल के बाद भी उस वेतन को प्राप्त करे। पर जो रोगी होकर अपनी जगह दूसरे की व्यवस्था कर कार्य न कराये, अथवा स्वस्थ होकर भी कार्य न करे, तो उसे वेतन नहीं देना चाहिए। जो मनुष्य ग्राम, देश व समुदायों के साथ सचाई से वचन देकर फिर लोभ से उसे न करे, राजा उसे राष्ट्र से निकाल दे। इस वचन भंग करने वाले को पकड़ कर चार सुवर्ण वा छः मोहरें अथवा चाँदी का शतमान—अपराध के अनुसार दण्ड दे। ग्राम और जाति समूहों के प्रति वचन तोड़ने वाले को भी धार्मिक राजा यही दण्ड दे। किसी वस्तु को खरीदने व वेचने के बाद यदि पछतावा हो तो दस दिन के भीतर वह

वस्तु दे दे व ले ले। दस दिन के पीछे जो न दे वा न ले, राजा उसे छः सौ पण दण्ड दे। यह नियम भूमि, धातु आदि के लिए भी है।

पशु-सम्बन्धी व्यवस्था

जो उन्माद आदि दोष युक्त कन्या के रोग को न बतलाकर वर को देता है, उसे राजा ९६ पण दण्ड दे। जो मनुष्य द्वेष से कन्या को क्षतयोनि करे और इस दोष को सिद्ध न कर सके तो उसे सौ पण दण्ड दे। पशुओं के योग क्षेम के लिए दिन में उसके चराने वाला ज़िम्मेदार होता है और रात्रि के समय अहीर को सौंपे गये पशु की रक्षा का अहीर ज़िम्मेदार होता है। जिस अहीर का वेतन निश्चित न हुआ हो, वह स्वामी की अनुमति से दस गौ में से एक गौ का दूध वेतन रूप में ले। जो पशु खो जाए, कीड़ों से नष्ट हो जाए, कुत्ते मार डालें, गड्ढे में गिर कर मर जाए, सेवा के अभाव से मर जाए, तो उसका दायित्व अहीर पर ही होता है। यदि चोर बलात् पशु का अपहरण कर लें तो अहीर पर उसका दायित्व नहीं है बशर्ते वह उसी समय स्वामी को सम्पूर्ण वृत्तान्त बतला दे। स्वयं मरे पशु के कान, चमड़ा, पूँछ के बाल, मसाना और गोरोचन स्वामी को दे और मृत पशु के सब चिह्न स्वामी को दिखा दे। भेड़-बकरियों को भेड़िया घेर ले, अहीर छुड़ाने को न आये और भेड़िया मार दे, तो दोष अहीर का ही माना जाएगा। पर यदि यह सब पशु वन में एकसाथ चर रहे हों और कहीं से कूदकर भेड़िया किसी पशु को मार डाले तो अहीर का दोष नहीं माना जाएगा। ग्राम के चारों ओर सौ धनुष भूमि चारागाह के लिए रखें और इससे तिगुनी नगर के चारों ओर। वहाँ बाड़ से रहित खेती को यदि पशु नष्ट करें तो उस दशा में राजा पशु रक्षकों को दण्ड न दे। खेती बचाव के लिए बाड़ लगाएँ जिसे ऊँट न देख सके और प्रत्येक छिद्र को—जिसमें से सूअर व कुत्ते का मुख पहुँच सकता है—बन्द कर दे। पर मार्ग के समीप व ग्राम के समीप जिस क्षेत्र के चारों ओर बाड़ लगी है, उसमें से किसी प्रकार खेत में घुसे पशु के लिए पशुपालक को दण्ड दे और जिन पशुओं का मालिक नहीं है, उन पशुओं को क्षेत्र रक्षक हटा दे। यदि अन्य दूर स्थलों के पशु खेत को नष्ट करें तो चरवाहा को सवा पण दण्ड दे, यह मर्यादा है। प्रसूता गौ—जिसे दस दिन नहीं हुए, साँड़ और देव पशु—चाहे पालक सहित हों व पालक रहित हों—इन्हें मनु ने दण्डनीय नहीं कहा है। यदि खेत के मालिक का अपराध हो (अर्थात् उसी के पशु खेती चर जाएँ वा वह खेती ही न बोये) तो उसे राजा को देने योग्य भाग से दस गुणा दण्ड हो, उससे आधा दण्ड खेत के स्वामी को हो, यदि उसके नौकरों की मूर्खता से ऐसा हुआ हो। धार्मिक राजा इस प्रकार की मर्यादा बर्त्ते जब स्वामी का, पालक का व पशुओं का अपराध हो।

दो ग्रामों के बीच सीमा-विवाद का निर्णय

दो ग्रामों की सीमा का झगड़ा उत्पन्न होने पर जेठ के महीने में जब घास के सूख जाने पर सीमा के चिह्न प्रकट हों, तब सीमा का निश्चय करे। बड़, पीपल, ढाक,

सेमल, साल, ताड़ और दूधी वृक्षों को सीमा के वृक्ष बनाये। झाड़ियाँ, भिन्न-भिन्न प्रकार के बाँस, जँडी, चिरकाल तक रहने वाली बेलें, मिट्टी के ढेर, सर और कुब्ज झाड़ियाँ—इन्हें सीमा का चिह्न बनाए, इससे सीमा नष्ट नहीं होती। तालाब, कूँआ, बावड़ी, झरने और देव मन्दिर—सीमा के मेल पर बनाने चाहिएँ। सीमा निर्धारण में सदा लोगों की भूल होती है। इसलिए अन्य भी सीमा के गुप्त चिह्न बनाए। पत्थर, हड्डियाँ, गौ के बाल, भूसी, भस्म, खपड़े, सूखा गोबर, कोयला, कँकड़, ठीकरियाँ, रेत, इसी प्रकार के अन्य पदार्थ भी जिन्हें समय बीतने पर भूमि न खा जाए—वह सीमा पर गुप्त रूप से लगा दे। इन चिह्नों से राजा विवाद कर रहे दो ग्रामों की सीमा का निर्णय करे। दीर्घ काल से कौन गाँव किस भूमि को भोगता चला आता है और बीच में नदी नाले आदि के पड़ने से ग्रामों की सीमा का निश्चय करे। यदि इन चिह्नों के देखने के बाद भी संशय रहे, तब साक्षियों के आधार पर सीमा के झगड़ों का निर्णय करे। गाँवों के लोगों से और दोनों गाँवों की ओर से सीमा के चिह्न साक्षियों से पूछने चाहिएँ। इन सब साक्षियों से पूछ कर, और इन सब साक्षियों के नाम लिख कर सीमा नियत करे। यह सब साक्षी अपने-अपने सुकृतों की सौगन्ध खाकर सत्य बात कहें। असत्य बोलने वाले साक्षियों को सौ पण दण्ड दिया जाना चाहिए। साक्षियों के अभाव में चारों ओर के रहने वाले भिन्न-भिन्न ग्रामवासी चार ज़मींदार शुद्ध हो राजा के सम्मुख सीमा का निर्णय करें। सीमा के निर्णय में मूल से आते हुए—पिता, पितामह आदि के काल से वहीं बसते हुए—लोगों से और उनके अभाव में वन में रहने वाले पुरुषों से पूछे। शिकारी, चिड़ीमार, ग्वाले, धीवर, मूल-कंद खोंदकर जीविका करने वाले, साँप पकड़ने वाले, अन्न कण चुनने वाले तथा दूसरे वनचारियों से पूछे। यह पुरुष सीमा-सन्धि चिह्नों को जैसा बतलाएँ, राजा उसके अनुसार धर्म पूर्वक सीमा चिह्न स्थापित करे।

खेत, कूँआ, तालाब, बागीचा और घर की सीमा का निर्णय आसपास वालों के विश्वास पर जानना चाहिए। इस विवाद में आसपास वाले यदि झूठ बोलें तो राजा सबको अलग-अलग मध्यम साहस दण्ड दे। जो भय दिखाकर किसी का घर, तालाब, बाग, खेत को छीने तो उसे पाँच सौ दण्ड दे, भूल से छीने तो दो सौ दण्ड दे। जब इन प्रमाणों से सीमा निश्चित करनी आवश्यक हो तो धर्मज्ञ राजा आप ही सबके लाभ का ध्यान रख सीमा निश्चित करे और भविष्य के लिए चिह्न स्थापित कर दे।

वाणी सम्बन्धी अपराध

अब वाणी की कठोरता के निर्णय के सम्बन्ध में कहा जाता है। अपने समान वर्ण वाले को कठोर वचन कहने पर द्विजातियों को बारह पण दण्ड हो। न कहने योग्य वचनों में यही दण्ड दुगुना हो। जो अभिमान से दूसरे का वेदज्ञान, देश, जाति और शरीर सम्बन्धी कर्म झूठ बतलाए, उसे दो सौ पण दण्ड दे। काना, लूला, और भी इसी प्रकार के पुरुष को, काना, लूला इत्यादि सच कहने वालों को भी कम से कम एक कार्षापण दण्ड दे। माता, पिता, पत्नी; भाई, पुत्र, गुरु पर झूठा दोष लगाने वाले को और गुरु को मार्ग न देने वाले को सौ पण दण्ड दे। ब्राह्मण—क्षत्रियों को आपस

में गाली देने में ब्राह्मण को प्रथम साहस दण्ड दे, क्षत्रिय को मध्यम साहस। वैश्य और शूद्र को भी एक-दूसरे को गाली देने पर वैश्य को प्रथम और शूद्र को मध्यम साहस दण्ड दे। वाणी की कठोरता की यह दण्ड विधि कह दी है।

वनस्पति और वाहन सम्बन्धी अपराध

वनस्पतियों का जैसा-जैसा उपयोग है, अर्थात्—फलवाले, छाया वाले, सीमा के वृक्ष, यात्रियों के विश्राम के वृक्ष—इत्यादि वृक्षों के उपकार को देखकर, वैसा-वैसा उनकी हिंसा का दण्ड दे। मनुष्य और पशुओं को पीड़ा के लिए प्रहार करने पर जैसे-जैसे पीड़ा हो वैसा-वैसा यथा योग्य कोई दण्ड दे। अंगों की और व्रण और लहू की पीड़ा में (प्रहार करने वाला)असली अवस्था तक आने का व्यय दे अथवा सारा दण्ड दे। जो किसी की वस्तुओं को जानकर व बिन जाने हानि पहुँचाए, वह उसका सन्तोष उत्पन्न करे और उसके बराबर राजा द्वारा दिये गये दण्ड को भी स्वीकार करे। चमड़ा लकड़ी मिट्टी व काठ के पात्र, फल-फूल के मूल—इन सबको नष्ट करने वाला मूल्य से पाँच गुणा दण्ड राजा की आज्ञा से दे और स्वामी को सन्तुष्ट करे। गाड़ी से हानि पहुँचने में गाड़ी के चलाने वाले और मालिक के लिए दस छोड़ने योग्य स्थान हैं, शेष में दण्ड दिया जाता है। वह दस स्थान हैं—नकेल के टूट जाने, जूए के टूट जाने, टेढ़ा पड़ने से वा उलटा पीछा आ पड़ने से, यान का धुरा टूटने वा पहिया टूटने पर, यंत्र (चर्म बन्ध आदि) टूटने से, जोते के टूटने से, लगाम टूटने से और "हट जाओ हट जाओ"—ऐसा पुकारते हुए—इन्हें मनु ने दण्ड के योग्य नहीं कहा है। जहाँ सारथी के चतुर न होने से रथ उलट-पुलट चलता है, वहाँ हानि होने पर स्वामी को दो सौ पण दण्ड हो। यदि सारथी कुशल हो तो वही दण्ड के योग्य है, अकुशल हो तो रथ पर बैठे पुरुष सौ-सौ पण दण्ड के योग्य होते हैं। यदि वह सारथी मार्ग में पशुओं से व दूसरे रथ से रुका हुआ प्राणियों को मार दे, तो यहाँ बिना झिझक के उसे दण्ड दिया जाए। मनुष्य को मारने में सारथी को चोर दण्ड—सहस्र पण—हाथी, ऊँट, घोड़ा आदि बड़े प्राणियों को मारने में उससे आधा दण्ड दे। क्षुद्र पशुओं की हिंसा में दो सौ पण दण्ड हो, अच्छे मृग तथा पक्षियों की हिंसा में पचास पण दण्ड हो। गधा, बकरी, भेड़ के मर जाने में पाँच माशे दण्ड हो, कुत्ता, सूअर के मारने में एक माशे दण्ड हो। पुत्र, नौकर, सेवक, छोटा भाई अपराध करें तो रस्सी या बाँस की छड़ी से ताड़ना करे। वह भी शरीर की पीठ पर, सिर पर कभी न मारे, इससे अन्यथा प्रहार करे तो चोर का दण्ड पाये।

चोरी रोकने और चोरों को दण्ड देने के नियम

चोरों को रोकने में राजा पूरा यत्न करे, इससे उसका यश और राष्ट्र बढ़ता है। इससे राजा—जो अभय का दाता है—सदा पूजा योग्य होता है, उसका अभय की दक्षिणा वाला लम्बा यज्ञ सदा बढ़ता रहता है। प्रजा की रक्षा करते हुए राजा को सब के धर्म का छठा हिस्सा मिलता है और रक्षा न करते हुए अधर्म का छठा हिस्सा मिलता है। जो कोई स्वाध्याय, यज्ञ, दान, पूजा करता है, उसके छठे हिस्से का भागी राजा

रक्षा करने से होता है। न्याय से सब प्राणियों की रक्षा करता हुआ और मारने योग्यों को मारता हुआ राजा प्रतिदिन लक्ष गौ दक्षिणा वाले यज्ञों से यजन करता है। रक्षा न करता हुआ जो राजा कर, चुंगी, डाली व कर लेता है, वह शीघ्र ही नरक को प्राप्त होता है। रक्षा न करने वाला, पर अनाज का छठा हिस्सा लेने वाला राजा सारे संसार के मल का ढोने वाला पशु तुल्य होता है। मर्यादा का पालन न करने वाले, नास्तिक जनता से छीनने वाले, रक्षा न करने वाले राजा को नरकगामी जानो। चोर आदि को राजा तीन उपायों से रोके—नज़रबन्द करके, बन्धन में डाल के और अनेक प्रकार के शारीरिक दण्ड से। पापियों के निग्रह और श्रेष्ठों के संग्रह से राजा सदा पवित्र होता है, जैसे यज्ञों से ब्राह्मण। कार्यार्थी तथा बाल, वृद्ध आतुर जन कुछ अप्रिय भी कर दें तो राजा उन्हें क्षमा कर दे। इसमें उसका अपना ही भला है। जो राजा दुखियों से कठोर कही गई बात को सहता है, वह स्वर्ग में पूजा जाता है और जो ऐश्वर्य के अभिमान में आकर नहीं सहता है वह नरक को जाता है।

चोर को चाहिए कि कन्धे पर मूसल, खैर का दण्ड, वा दोनों ओर में तीक्ष्ण बर्छी व लोहे का दण्ड रखकर, बाल खोले दौड़ता हुआ, अपनी चोरी कहता हुआ राजा के पास जाए और कहे, "मैं इस कर्म वाला हूँ, मुझे दण्ड दो।" दण्ड दिए जाने से व राजा द्वारा छोड़े जाने से चोर अपराध से छूट जाता है, पर दण्ड न दिए जाने से राजा चोर के पाप को प्राप्त होता है। ब्रह्म हत्या करने वाला अपना अन्न खाने में, व्यभिचारिणी स्त्री अपने पति में, शिष्य गुरु में, यजमान पुरोहित में और चोर राजा में अपने पाप को डालता है, अर्थात्, रक्षा करना और पाप से बचाना, ब्राह्मण, पति, गुरु, पुरोहित और राजा का कर्त्तव्य है। पाप करके मनुष्य राजा से दण्डित हो जाए, तो वह निर्मल होकर पुण्यात्माओं के पुण्य स्वर्ग को प्राप्त होता है।

जो पुरुष कुएँ से रस्सी को चुरावे, जो प्याऊ को तोड़ दे, उसे एक माशा दण्ड हो और उस रस्सी व डोल को वहाँ समर्पण कर दे। दस कुम्भों से अधिक अनाज चुराने वाले को शारीरिक दण्ड दे, बाकी को ग्यारह गुणा दण्ड और मालिक को धन दिलावे। तराज़ू से तोले जाने वाले सोना, चाँदी और उत्तम वस्त्रों की चोरी में सौ से अधिक में शारीरिक दण्ड, पचास से अधिक में अंगच्छेद, शेष में मूल्य से ग्यारह गुणा अधिक दण्ड दे और मालिक को धन दिलाए। कुलीन पुरुषों—विशेषत: स्त्रियों और रत्नों के चुराने वाला कठोर दण्ड का अधिकारी होता है। हाथी, गौ, घोड़ा आदि पशुओं, शस्त्रों और औषध के चुराने में काल और कार्य को देख राजा दण्ड की व्यवस्था करे।

गौ चुराने, बोरियों के फाड़ने, अन्य पशुओं के चुराने में शारीरिक दण्ड दे। सूत, कपास, महुआ, गोबर, गुड़, दही, मट्ठा, जल, घास, बाँस, बर्तन, लवण, मिट्टी के बर्तन, मिट्टी और भस्म, मछली, पक्षी, तेल, घी, मांस, शहद और भी जो पशुओं से प्राप्त पदार्थ, खाने योग्य वस्तुएँ, भात, पके अन्न—इनके चुराने में मूल्य से दुगुना दण्ड दे। फूल, हरे अनाज, झाड़ी, बेल, वृक्ष, फल और भी जो शोधे नहीं जाते, उनमें पाँच रत्ती दण्ड हो। पर शोधे हुए अनाजों और शाक-मूल फलों में स्वामी से सम्बन्ध न रखने वालों को सौ दण्ड और सम्बन्ध रखने वालों को पचास दण्ड दे। जो छीनना आदि

बल से कार्य किया गया है, वह साहस है, चोरी नहीं, जो पीछे किया गया है, वह चोरी है और जो छीन कर मुकरता है—वह भी चोरी है। जो पुरुष काम के लिए तैयार की गई इन वस्तुओं को चुराए और यज्ञ की अग्नि को चुराए, उसे राजा प्रथम साहस दण्ड दे, अर्थात्, वस्तु व उसका मूल्य और अग्नि की पुनः स्थापना का व्यय—दिलाए। पिता, आचार्य, सुहृद्, पत्नी, पुरोहित कोई भी हो, राजा के लिए अदण्डनीय नहीं, जो अपने धर्म पर स्थित नहीं रहता, वह दण्डनीय है।

जिस अपराध में साधारण पुरुष को एक कार्षापण दण्ड हो, उसमें राजा को सहस्र कार्षापण दण्ड होना चाहिए। चोरी में शूद्र का आठ गुणा, वैश्य का सोलह गुणा क्षत्रिय का ३२ गुणा, ब्राह्मण का ६४ गुणा व पूरा सौ वा १२८ गुणा दण्ड होता है जब कि वह (शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण) उस चोरी के दोष गुण जानने वाला है। वनस्पतियों के मूल, फल, अग्निहोत्र के लिए लकड़ी और गौ के खाने के लिए घास चोरी नहीं है—यह मनु ने कहा है।

जो ब्राह्मण चोर के हाथ से यज्ञ कराने व पढ़ाने से भी धन लेने की इच्छा करे वह ब्राह्मण चोरवत् दण्डनीय है। द्विजाति पथिक खर्च के कम हो जाने पर दूसरे के खेत से दो गन्ने और मूली लेता हुआ दण्ड योग्य नहीं होता है। दूसरे के न बँधे पशुओं को बाँधने वाला और बाँधे हुओं को खोलने वाला, दास, घोड़ा और रथ का लेने वाला चोरी के अपराध को प्राप्त हो। इस विधि से राजा चोरों का निग्रह करता हुआ इस लोक में यश को और परलोक में उत्तम सुख को प्राप्त होता हैं।

दुस्साहस सम्बन्धी अपराध

अब साहस कर्म कहते हैं। वाणी की कठोरता, चोर और दण्ड की कठोरता से भी अधिक साहस करने वाला अधिक पापी होता है। साहस में प्रवृत्त पुरुष को जो राजा सराहता है, वह जल्दी नाश को और प्रजा से द्वेष को प्राप्त होता है। राजा मित्र होने के हेतु व धन प्राप्ति के हेतु जनता को भयभीत करने वाले साहसी को कभी न छोड़े। द्विजातियों को शस्त्र पकड़ना चाहिए जब वह धर्म पालन से रोके जाएँ अथवा बुरे काल के कारण द्विजाति वर्णों के प्रति कोई उपद्रव हो। अपने बचाव में, यज्ञ सामग्री के बचाव में जो युद्ध हो, स्त्री और ब्राह्मण की रक्षा में उपद्रवियों को मारना धर्म है, इसमें दोष नहीं होता। गुरु, बाल, वृद्ध वा बहुश्रुत ब्राह्मण—कोई भी जब आततायी बनकर आए, उसे बिना विचारे मार दे। चाहे लोगों के सामने वा एकान्त में, आततायी को मारने में कोई दोष नहीं होता, वहाँ क्रोध क्रोध का मुकाबला करता है।

व्यभिचार सम्बन्धी अपराध और दण्ड

पर-नारी से व्यभिचार में प्रवृत्त मनुष्य को भयानक दण्ड—अंगभंग द्वारा व देश से निकाल दे क्योंकि इस कुकर्म से वर्ण संकर होता है जिससे मूल नष्ट करने वाला अधर्म सर्वनाश में समर्थ होता है। जिस पर पहले दोष लग चुके हैं, ऐसा पुरुष यदि एकान्त में पर-नारी से बातचीत करे तो वह प्रथम साहस का दण्ड पावे। जो पहले

दूषित नहीं, वह यदि किसी कारण से पर-नारी से बातचीत करे तो उसे कोई दोष नहीं क्योंकि उसका अपराध नहीं। जो पर-नारी से पानी के घाट, जंगल-वन, नदी-संगम पर बातचीत करे, वह अपराधी माना जाए। उपचार कर्म (पर-नारी के शरीर की सेवा व स्पर्श) हँसी-मज़ाक, भूषण और वस्त्रों का छूना, एक साथ खाट पर बैठना—यह सब संग्रहण माना गया है। स्त्री के अस्पृश्य स्थान पर जो हाथ लगाए व उससे स्पर्श किया हुआ सह ले—यह संग्रहण है चाहे इसमें परस्पर की अनुमति भी हो। अब्राह्मण संग्रहण में प्राणान्त दण्ड के योग्य होता है। चारों वर्णों की स्त्रियाँ सदा रक्षा के योग्य हैं।

भिक्षुक, स्तुति पाठक, दीक्षा लिए हुए और कारीगर (अपनी मज़दूरी आदि के लिए) बिना रोक गृहस्थ स्त्रियों से बातचीत कर सकते हैं। प्रतिषिद्ध कोई भी पुरुष किसी स्त्री के साथ बातचीत न करे, रोकने पर बात करने वाला एक सुवर्ण दण्ड के योग्य होता है। एकान्त में बातचीत न करने की यह विधि नटों की स्त्रियों के लिए व स्त्रियों से जीविका करने वालों के लिए नहीं है क्योंकि वह स्वयं स्त्रियों को दूसरों से मिलाते हैं और छिपे रहकर उनसे व्यवहार करते हैं। किन्तु एकान्त में उनसे संभाषण करते हुए, तथा दासी, ब्रह्मचारिणी और संन्यासिनी से एकान्त में संभाषण करते हुए को थोड़ा दण्ड दे। जो न चाहती हुई कन्या को दूषित करे वह जल्दी अंगच्छेदादि दण्ड के योग्य है। इच्छा वाली को दूषित करता हुआ इस दण्ड को प्राप्त नहीं होता। अपनी जाति से ऊँचे पुरुष का सेवन करती हुई कन्या को कुछ भी दण्ड न दे, नीच का सेवन करती हुई को बाँधकर घर में बसाए। इस ऊँची कन्या का सेवन करता हुआ नीच पुरुष वध (अंगच्छेदादि) के योग्य होता है, सम जाति वाली कन्या का सेवन करने वाला शुल्क देकर उससे विवाह कर ले, यदि पिता चाहे। जो मनुष्य दर्प से सम जाति की कन्या को दूषित करे, उसकी दो अंगुलियाँ काट देनी चाहिए और वह छः सौ पण दण्ड के योग्य है। कामना वाली को तुल्य जाति वाला दूषित करे तो उसका अंगुलिच्छेद न हो किन्तु भविष्य में न करने के लिए दो सौ दण्ड दे। कन्या ही जो अंगुलि डालने से अन्य कन्या को दूषित करे, उसे दो सौ दण्ड हो और दुगुना शुल्क कन्या के पिता को दे और दस रस्सी के प्रहार लगाए। जो स्त्री कन्या को अंगुलि से बिगाड़े, उसका उसी समय सिर मुँडा कर या दो अंगुलियाँ काट कर, गधे पर चढ़ाकर उसे घुमाया जाए।

जो स्त्री अपने पीहर व अपने सौंदर्य आदि के दर्प से पतिव्रत धर्म भंग करे, उसे बहुत भीड़ वाले स्थान में राजा कुत्तों से नोचवाए। और उस पापी पुरुष को राजा तपे हुए लोहे के पलंग पर बाँधकर जलवाए, लकड़ियाँ डाल उस पापी को दग्ध कर दे। जो पहले किसी स्त्री से दूषित हो चुका है, वह यदि वर्ष के अन्दर फिर दूषित हो तो उसे पहले से दुगुना दण्ड हो, व्रात्या और चाण्डाली के साथ दोबारा सहवास से पहले से दुगुना दण्ड हो। भर्ता से रक्षा की हुई द्विजाति स्त्री से यदि शूद्र भोग करे तो उसे देह और धन—दोनों प्रकार से दण्डित करे। ब्राह्मणी के साथ सहगमन में वैश्य को एक वर्ष और सर्वस्व दण्ड, क्षत्रिय को सहस्र पण दण्ड और गधे के मूत्र से सिर मूँडा जाए। ब्राह्मणी से वैश्य और क्षत्रिय सहवास करें तो वैश्य को पाँच सौ और क्षत्रिय को सहस्र पण दण्ड हो। वही दोनों यदि रक्षा की हुई ब्राह्मणी से उपद्रव करे तो उन्हें शूद्रवत्

दण्ड दे व चटाई में लपेट कर जला दे। ब्राह्मणी के साथ ब्राह्मण गमन करे तो ब्राह्मण को सहस्र पण दण्ड हो, चाहती हुई के साथ गमन हो तो ५०० पण दण्ड हो। सिर मुँडाना ही ब्राह्मण का प्राणान्तक दण्ड है। ब्राह्मण को धन समेत देश से बाहर कर दे, अंगच्छेद न करे। अन्त्यज स्त्री के साथ गमन में सहस्र पण दण्ड हो।

जिसके राज्य में चोर नहीं, पर-स्त्री गामी नहीं, न दुष्ट वाणी वाला व साहसी, न मारपीट वाला, वह राजा इन्द्रलोक का भागी होता है। अपने देश में इन पाँचों को दबा रखने से राजा यश को प्राप्त होता है। कर्म में समर्थ अदुष्ट ऋत्विज् को यदि यजमान छोड़ दे वा वैसे ही ऋत्विज् यजमान को छोड़ दे—दोनों को सौ-सौ पण दण्ड हो। माता, पिता, स्त्री, पुत्र त्याग के योग्य नहीं हैं, यदि वे जाति से पतित न हों जो इन्हें त्यागे उसे छः सौ पण दण्ड प्राप्त हो।

आश्रमों के कर्त्तव्यों के विषय में विवाद करते द्विजों को राजा कल्याण चाहता हुआ, उनके धर्मों के बारे में अपने आप कुछ न कहे। अन्धा, जड़, पीठ से चलने वाला—लूला, ७० से ऊपर वृद्ध और वेद पाठियों का उपकार करने वाला - इनको राजा कोई भी कर न लगाए। वेद पाठी, रोगी, पीड़ित, बाल, वृद्ध, निर्धन, महाकुलीन आर्य (श्रेष्ठ, उदार)—इन सबको राजा सदा दान मान से पूजे।

धोबी और नाविक के विषय में

धोबी एक-दूसरे वस्त्रों को मिलाकर न रखे, किसी को न पहनावे और न स्वयं पहने। चुँगी के स्थानों पर कुशल, सार-असार जानने वाले, वस्तु के अनुसार जो भाव निश्चित करें, उसका २०वाँ भाग राजा ले। लोभ से बाहर ले जाने वाले का सामान राजा छीन ले और चुँगी में धोखा देने वाले को आठ गुणा दण्ड दे। राजा पाँचवें वा पन्द्रहवें दिन वस्तुओं के भाव स्थिर करे। तोल-माप के चिह्नों की छः-छः मास बाद परीक्षा करे। नाव द्वारा नदी पार करने का कर विभिन्न वस्तुओं के तोल-माप के अनुसार निश्चित करे। गर्भवती स्त्री, संन्यासी, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी और ब्राह्मण से नाव का शुल्क न ले।

विभिन्न वर्णों के कार्य

व्यापार, ब्याज, खेती, पशु रक्षा, यह काम राजा वैश्यों से और द्विजाति की सेवा शूद्रों से कराए। क्षत्रिय और वैश्यों से—यदि वे जीविका से दुर्बल हों—तो ब्राह्मण दया करता हुआ उनसे उनके कर्म कराता हुआ पालन करे। ब्राह्मण यदि उनकी इच्छा के विरुद्ध द्विजों से सेवा कर्म कराए तो राजा उसे छः सौ पण दण्ड दे। दासत्व के यह कारण होते हैं—(१) युद्ध में जीता हुआ (२) अन्न के लिए दास हुआ (३) दासी पुत्र दूसरों से खरीदा गया (४) पिता से—दास पिता का पुत्र (५) दण्ड दास, अर्थात्—देना चुकाने के लिए बनाया गया दास (६) भार्या, पुत्र और दास—यह तीनों ही न धन वाले कहे गए हैं, वे जो पाते है, वह धन उसका होता है जिसके वे रहते हैं।

राजा अपने कारखाने (कर्म स्थान) वाहन, आय, व्यय और कोश को प्रतिदिन

देखे। इस प्रकार राजा इन सारे व्यवहारों को करता हुआ पाप से दूर रहता और परम गति को प्राप्त होता है।

६. सामाजिक नीतियाँ

नारी की श्रेष्ठता

सन्तान उत्पत्ति के लिए, उपकार करने वाली, पूजा के योग्य, घर की शोभा, स्त्री और श्री घर में एक तुल्य हैं, इनमें कोई भेद नहीं है। सन्तान का उत्पादन, पालन और प्रति दिन के लोक-व्यवहार का स्त्री प्रत्यक्ष कारण है। सन्तान, धर्म के कार्य, सेवा, उत्तम प्रीति, तथा पितरों का और अपना स्वर्ग स्त्री में आधीन है। जो स्त्री मन, वाणी, शरीर को रोक कर पतिव्रत धर्म का उल्लंघन नहीं करती है, वह उत्तम लोकों को प्राप्त होती है और श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा साध्वी कही जाती है। व्यभिचार से स्त्री लोक-निन्दा को प्राप्त होती है और गीदड़ योनि को प्राप्त होती है तथा पाप रोग (कुष्ठ आदि) से पीड़ित होती है। सब जानते हैं कि स्त्री का पुत्र उसके पति का होता है। इस विषय में कई भर्त्ता को पुत्र वाला कहते हैं और कई क्षेत्र वाले का कहते हैं।

पति-पत्नी धर्म और सन्तान

स्त्री क्षेत्र रूप कही गई है और पुरुष को बीज रूप कहा गया है। क्षेत्र और बीज के मेल से सब प्राणियों की उत्पत्ति होती है। कहीं बीज बढ़ कर रहता है, कहीं स्त्री की योनि। जहाँ दोनों तुल्य हों, वह उत्पत्ति प्रशंसनीय है। बीज और योनि में से बीज प्रधान कहा जाता है, क्योंकि सब भूतों की उत्पत्ति बीज के चिह्नों से चिह्नित होती है। जैसा बीज ठीक समय पर तैयार किए गए क्षेत्र में बोया जाता है, वैसा वह बीज अपने गुणों से चिह्नित उस क्षेत्र में उगता है। यह भूमि वृक्ष, बेल आदि की सनातन योनि कही जाती है पर कोई भी बीज अपने परिणाम में योनि के गुणों को परिवर्तित नहीं करता है। भूमि की एक क्यारी में भी किसानों से समय पर बोये बीज अपने-अपने स्वभाव से नाना रूपों वाले उत्पन्न होते हैं। बीज कुछ हो और उत्पन्न कुछ और हो, यह नहीं होता है। जो बीज बोया जाता है, वैसा ही फल उगता है। इसलिए मनुष्यों में भी बीज की ही प्रधानता है। इसलिए बुद्धिमान्, सुशिक्षित, ज्ञान-विज्ञान जानने वाले और दीर्घ आयु के इच्छुक को कमी पर स्त्री में बीज नहीं बोना चाहिए।

जो बीज वाले क्षेत्र के स्वामी न होकर पर-क्षेत्र में बोते हैं, वह उत्पन्न हुई खेती का कहीं—किसी दशा में भी—फल नहीं पाते हैं। जो बीज प्रवाह और आँधी द्वारा कहीं से लाया हुआ जिसके क्षेत्र में उगता है, वह बीज क्षेत्र वाले का ही हो जाता है, बोने वाला फल नहीं पाता है। यही मर्यादा गौ, घोड़ा, हाथी, ऊँट, भेड़, बकरी, भैंस और पक्षियों की सन्तान के लिए जाननी चाहिए।

जो बड़े भाई की भार्या है वह छोटे की गुरु-पत्नी है और जो छोटे की भार्या

है वह बड़े की पुत्र वधू तुल्य है। आपत्काल के विना (सन्तान होते हुए) बड़ा छोटे की भार्या और छोटा बड़े की भार्या के पास जाए तो पतित होते हैं, चाहे वह नियुक्त भी हों। अपने पति से सन्तान के अभाव में भली-भाँति नियुक्त हुई स्त्री को चाहिए कि वह देवर से वा सपिंड से अभीष्ट सन्तान उत्पन्न करे। चाहे कन्या ऋतु वाली होकर भी मरण पर्यन्त बैठी रहे पर उसे गुण हीन को कभी न दे। कन्या ऋतुमती होकर तीन वर्ष तक प्रतीक्षा करे। इसके बाद अपने तुल्य पति को प्राप्त करे। सन्तान उत्पन्न करने के लिए स्त्री की रचना हुई है और सन्तान प्राप्त करने के लिए पुरुष की। इसलिए गृहस्थ के धर्म—अग्निहोत्रादि—श्रुति में पत्नी के साथ ही कहे गए है। किसी भी शूद्रभी वर्ण का व्यक्ति कन्या देता हुआ शुल्क न ले क्योंकि शुल्क ग्रहण करता हुआ वह कन्या की गुप्त बिक्री करता है। मरण पर्यन्त पति अथवा पत्नी को कभी व्यभिचार लिप्त नहीं होना चाहिए। विवाह करके स्त्री-पुरुष सदा ऐसा यत्न करें कि कभी एक-दूसरे से अलग न हों।

सम्पत्ति का बँटवारा

पिता-माता की मृत्यु के बाद भाई उनके धन को एक जैसा बाँटे क्योंकि उनके जीवन काल में वे भाई धन के मालिक नहीं थे। अथवा बड़ा पुत्र ही सारे धन को ले, दूसरे उसके आश्रित रहें, जैसे पिता के आश्रित थे। बड़े पुत्र के उत्पन्न होने मात्र से ही पुरुष पुत्र वाला बन जाता है और पितरों से उऋण हो जाता है, इससे वह बड़ा सब धन के योग्य है। पिता की तरह बड़ा पुत्र छोटे भाइयों का पुत्र की तरह पालन करे और वे भी बड़े भाई के प्रति पुत्र की तरह धर्म से वर्तें। जो बड़ा पुत्र बड़ों के से वर्तात्र वाला हो तो वह माता-पिता के तुल्य है और यदि वह बड़ों जैसा बर्ताव वाला नहीं है, तब बन्धु-वत्-पूजनीय है। इस प्रकार इकट्ठे रहें अथवा धर्म की इच्छा से अलग-अलग भी रहें क्योंकि धर्म अलग-अलग बढ़ता है, इसलिए पृथक् होना धर्म युक्त है।

भाई अपने भागों में से चौथा भाग अलग-अलग बहिनों को दे, न देते हुए पतित होंगे। छोटा भाई यदि बड़े भाई की स्त्री में से—नियोग विधि से—पुत्र उत्पन्न करे तो वहाँ चचा के साथ इस पुत्र का विभाग सम हो, यह धर्म व्यवस्था है। क्षेत्रज पुत्र(अप्रधान) प्रधान के धर्म (बड़े को दिए जाने वाले अंश) से युक्त नहीं होता, इसलिए पूर्व कही मर्यादा से उसे भाग दे क्योंकि उत्पन्न करने में पिता प्रधान होता है। समान जाति की कई स्त्रियों से उत्पन्न हुए पुत्रों का बिना किसी विशेष के माता से बड़प्पन नहीं, जन्म से बड़प्पन कहा जाता है। जिसके पुत्र न हो, वह अपनी कन्या के विवाह के समय इस विधि से पुत्रिका बनाए कि जो सन्तान इसमें से हो, वह मेरा स्वधा (पितृश्राद्ध) करने वाली हो। माता का जो धन है, वह कुमारिकायों का ही भाग होता है और पुत्र न होने पर दौहित्र ही सारे धन को लें। वह दो पिण्ड दे—एक पिता को और दूसरा नाना को। पोते और दोहते का लोक में धर्म से कोई भेद नहीं है क्योंकि इन दोनों के माता-पिता उसके शरीर से उत्पन्न हुए हैं।

पुत्रिका करने पर यदि पीछे पिता के घर पुत्र हो जाए, वहाँ दोनों का विभाग

बराबर हो क्योंकि कन्या की ज्येष्ठता नहीं होती है । पुत्रिका यदि बिना पुत्र के मर जाए, तब उसके धन को भर्त्ता ही बिना विचारे ग्रहण कर ले। की हुई व न की हुई भी पुत्रिका जिस पुत्र को अपने पति से पाए, उससे नाना पुत्र वाला होता है, वही पिण्ड दे और धन ले । पुत्र के होने से लोकों को जीतता है और पौत्र होने से अनन्तता को प्राप्त होता है और पुत्र के पोते से सूर्यलोक को प्राप्त होता है। पुत्र इसलिए विशिष्ट है कि वह पुत नाम नरक—दु:ख से पिता को बचाता है। पोते और दोहते का लोक में कोई विशेष भेद नहीं है। क्योंकि दोहता भी पोते की तरह नाना को नरक—दु:ख से बचाता है। पुत्रिका का पुत्र पहला पिण्ड माता को, दूसरा माता के पिता को और उसके पिता के पिता को दे।

जिसका दत्तक-पुत्र सारे गुणों से युक्त है, वह दूसरे गोत्र से आया भी पिता के धन को अवश्य ले । दत्तक-पुत्र अपने उत्पन्न करने वाले (पिता) का गोत्र (नाम) और धन कभी न ले और देने वाले (पिता) का (उस पुत्र द्वारा) पिण्ड और श्राद्ध निवृत्त हो जाता है क्योंकि वह गोत्र और धन का अनुगामी है—अर्थात् जिसका गोत्र और धन ले, उसी को पिण्ड और श्राद्ध देना होता है। बड़ों से नियुक्त न की हुई का पुत्र और पुत्र वाली का देवर से पाया पुत्र —यह दोनों दाय भाग के अधिकारी नहीं होते क्योंकि पहला जार से उत्पन्न हुआ है और दूसरा काम से उत्पन्न हुआ है। नियुक्ता नारी में से भी जो पुरुष विना विधि के उत्पन्न हुआ है, वह पिता के धन के योग्य नहीं होता क्यों कि वह पतिता से उत्पन्न किया गया है। नियुक्ता से उत्पन्न पुत्र औरत की तरह धन ले क्योंकि वह क्षेत्र वाले का बीज है और उसी की धर्म से सन्तान है। जो मरे भाई के धन की रक्षा और उसकी स्त्री का पोषण करे, वह नियोग धर्म से भाई की सन्तान उत्पन्न करके उसी को उसका धन दे दे ।

नाना जाति की वहुत-सी स्त्रियों में से एक से उत्पन्न हुए पुत्रों के विभाग की विधि यह है—ब्राह्मण की क्रम से यदि चार स्त्रियाँ हों तो उनसे उत्पन्न हुए पुत्रों के विषय में यह विधि है कि खेती करने वाला (दास), गौओं के लिए रखा साँड, यान, भूषण, घर और अन्य हिस्सों में एक प्रधान हिस्सा ब्राह्मण को दे । शेष धन में से ब्राह्मणी के पुत्र को तीन हिस्से, क्षत्रिया का दो हिस्से, वैश्या का डेढ़ हिस्सा और शूद्रा का पुत्र एक हिस्सा ले । अथवा सारे धन के दस हिस्से करके इस प्रकार धर्म युक्त विभाग करे—चार हिस्से ब्राह्मणी के पुत्र को, तीन हिस्से क्षत्रिया के, दो हिस्से वैश्या का और एक हिस्सा शूद्रा का पुत्र ले । शूद्रा के पुत्र को दसवें हिस्से से अधिक न दे । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के धन का भागी शूद्रा का पुत्र नहीं होता, जो इसे पिता दे, वही उसका धन है। द्विजाति के समान जाति की स्त्रियों में से जो पुत्र हों, वह सारे बड़े को उद्धार रूप सत्व देकर शेष बराबर बाँट लें। शूद्र की अपने वर्ण की ही भार्या होती है, दूसरे वर्ण की नहीं, उसमें उत्पन्न हुए सब बराबर हिस्सों वाले होते हैं, चाहे सौ पुत्र भी हों ।

बारह प्रकार के पुत्र

मनु ने पुरुषों के जो बारह पुत्र कहे हैं, उनमें से छः बान्धव और दायभागी हैं,

छः दायभागी न होकर बान्धव हैं। [१] औरस (असली पुत्र), [२] क्षेत्रज (नियोग से), [३] दत्तक (गोद लिया), [४] कृत्रिम (आप बनाया हुआ), [५] गूढ़ोत्पन्न(गुप्त उत्पन्न हुआ), [६] अपविद्ध (त्यागा हुआ पाला गया)—यह छः बान्धव हैं और दायभागी हैं। जो छः दायभागी न होकर केवल बान्धव हैं, वे इस प्रकार हैं [१] कानीन (कुँआरी का पुत्र), [२] सहोढ़ (गर्भ में विवाह के साथ आया), [३] क्रीत (खरीदा गया), [४] पौनर्भव (विवाहित विधवा का पुत्र), [५] स्वयं दत्त (अपने आप आकर बना पुत्र), [६] शौद्र (विवाहित शूद्रा का पुत्र)।

निकम्मी नौकाएँ लेकर पानी से पार होता हुआ जैसे फल को पाता है, वैसा ही फल कुपुत्रों द्वारा अन्धकार से पार होता हुआ पाता है। यदि औरस और क्षेत्रज पुत्र एक के धन के भागी हों तो जो धन जिसके पिता का है, उसे वह ग्रहण करे, दूसरा नहीं। एक औरस पुत्र ही पिता के धन का स्वामी होता है, दूसरों को वह दयाभाव से जीविका दे। औरस पुत्र दाय को बाँटता हुआ क्षेत्रज को पिता के धन में से छटा व पाँचवाँ हिस्सा दे। औरस और क्षेत्रज पुत्र पिता के धन के भागी होते हैं, दूसरे दस गोत्र भागी और क्रमशः—पहले पहले के अभाव में—भागी होते हैं।

बारह पुत्रों के लक्षण इस प्रकार हैं (१) विवाह विधि से संस्कार की हुई अपनी भार्या से जिसे स्वयं उत्पन्न करे, उसे औरस जाने, वही मुख्य पुत्र है, (२) नियोग के धर्म से नियुक्त हुई—मरे हुए, नपुँसक के व रोगी की भार्या—में से उत्पन्न पुत्र क्षेत्रज कहाता है, (३) माता व पिता (लेने वाले के) सदृश जिस पुत्र को आपत्काल में प्रीति पूर्वक जल से दे वह दत्तक, (४) जो जिस सदृश, गुण दोष के जानने वाले, पुत्र के गुणों से युक्त को आप पुत्र बनाए वह कृत्रिम, (५) जिसके घर में उत्पन्न हो पर निश्चित न हो सके कि किसका है, वह घर में गुप्त उत्पन्न हुआ पुत्र उसका हो जिसकी भार्या से हुआ हो, (६) माता-पिता से त्यागे हुए व उन दोनों में से एक से त्यागे हुए जिस पुत्र को स्वीकार करे वह अपविद्ध कहलाता है, (७) पिता के घर में कन्या जिस पुत्र को गुप्त उत्पन्न करे, उस कन्या से उत्पन्न हुए को विवाहने वाले का पुत्र, नाम से कानीन कहा जाता है, (८) जो गर्भवती जानी हुई व न जानी हुई भी विवाही जाती है, उसका पुत्र विवाहने वाले का होता है और सहोढ कहलाता है, (९) पुत्र के अर्थ जिसे माता पिता के पास से खरीदा जाए वह उसका क्रीतक पुत्र होता है, चाहे उसके सदृश हो व असदृश हो, (१०) जो पति से त्यागी हुई व मरे पति वाली अपनी इच्छा से फिर किसी की भार्या होकर जिसे उत्पन्न करे, वह पौनर्भव कहलाता है, (११) जो माता-पिता से हीन हुआ व बिना कारण त्यागा हुआ स्वयं जिसके पास अपना आप सौंप दे, वह उसका स्वयं दत्त कहाता है, (१२) जिसे ब्राह्मण शूद्रा में से काम से उत्पन्न करे, वह जीता हुआ ही मृत सदृश है, इसलिए वह पारशव कहलाता है, (१३) पर शूद्रा का पुत्र जो उसका दासी से हो व दास की दासी से हो, वह पिता से अनुज्ञा दिया हुआ भाग ले, वह अनुज्ञात कहाता है।

इन क्षेत्रज आदि बारह पुत्रों को बुद्धिमान् पुत्र के प्रतिनिधि कहते हैं जिससे कर्त्तव्य का लोप न हो। औरस के प्रसंग से यह जो दूसरे के बीज से उत्पन्न हुए पुत्र कहे हैं, वह

जिसके बीज से उत्पन्न है, उसके होते हैं, दूसरे के नहीं। भाई जो एक पिता की सन्तान है, उनमें से यदि एक भी पुत्र वाला हो तो उन सबको उस पुत्र से मनु ने पुत्र वाले कहा है। और एक जाति वाली सब स्त्रियों में से यदि एक भी पुत्र वाली हो तो उस सबको उस पुत्र से मनु ने पुत्रवती कहा है। उत्तम उत्तम के अभाव में निचला पुत्र धन के योग्य होता है, बहुत से यदि एक तुल्य—एक दर्जे के हों—तो सभी धन के भागी हैं। न भाई, न चाचा-ताऊ, किन्तु पुत्र पिता के धन के भागी हैं। जिसका पुत्र नहीं, उसके धन को पिता-माता और उनके अभाव में भाई लेवें। तीनों—पिता, पितामह और प्रपितामह को जलांजलि दें और तीनों पिण्ड प्रवत्त होते हैं, चौथा इनको देने वाला है, पाँचवाँ नहीं बन सकता है। सपिण्डों में से जो समीप हो उसे उसका धन हो, इसके पीछे उस वंश का कोई हो, पीछे आचार्य और शिष्य का। सबके अभाव में वेद वेत्ता, पवित्र जितेन्द्रिय ब्राह्मण धन के भागी होते हैं, इस प्रकार धर्म की हानि नहीं होती।

स्त्री-धन

ब्राह्मण का धन राजा को नहीं लेना चाहिए। दूसरे वर्णों का सबके अभाव में राजा ले ले। नि:सन्तान मरे की पत्नी सगोत्र से पुत्र ले ले, और वहाँ मरे का जो धन हो, वह इसे देवे। अलग-अलग दो से उत्पन्न हुए जो दो पुत्र स्त्री के धन में विवाद करें, उनमें से जो जिसके पिता का हो उसे वह ग्रहण करे, दूसरा नहीं। माता के मरने पर सारे सहोदर भाई और सहोदर बहिनें मिल कर माता के धन को बाँटें। जो उन बहिनों की कन्याएँ हों, उन्हें भी यथायोग्य नानी के धन में से प्रीति पूर्वक कुछ देना चाहिए। वैवाहिक होम पर अग्नि के सामने जिस किसी से पाया धन, पति के घर जाते समय मिला धन, पति ने जो प्रीति के काम में दिया, माता-पिता और भाई ने जब-कभी दिया धन—यह छ: प्रकार का स्त्री-धन कहा है। विवाह के पीछे जो पति या बन्धु से पाया धन और प्रसन्न हुए पति ने जो (प्रीति कर्म से पृथक्) दिया, वह दोनों धन, पति के जीते मरी स्त्री का धन उसकी सन्तान का होता है। ब्राह्म, दैव, आर्ष, गान्धर्व और प्राजापत्य विवाहों में जो स्त्री का धन है, वह नि:सन्तान मरने पर पति का ही होता है, सन्तान हो तो सन्तान का होता है। पर जो इसे असुरादि विवाहों में धन दिया गया है, वह नि:-सन्तान मरने पर उसके माता-पिता का होता है। ब्राह्मण की स्त्री को जो धन उसके पिता ने दिया है, वह ब्राह्मणी कन्या लेवे अथवा उसकी सन्तान का हो। बहुतों के साँझे कुटुम्ब के धन में से स्त्रियाँ अपने आप कुछ न निकालें, अपने पति के धन में से भी अपने पति की आज्ञा बिना न निकालें। पति के जीते हुए स्त्रियों ने जो आभूषण धारण किया हो, उसे वारिस न बाँटें, यदि बाँटेंगे तो पतित होंगे। नपुंसक, पतित (पातकी) जन्मान्ध, बहरा, पागल, जड़, गूंगा, लूला, लंगड़ा आदि जो विकल इन्द्रियों वाले हैं, वह पिता आदि के धन के भागी नहीं होते। किन्तु धन देने वाले बुद्धिमान् को चाहिए कि इन सबको सदा शक्ति अनुसार अन्न वस्त्र दे, न दे तो पतित होता है। पिता के मरने पर बड़ा भाई जो कमाता है, उसमें छोटों का भाग होता है यदि वह विद्या पढ़ रहे हों। यदि सभी विद्याहीन भाइयों के प्रयत्न—खेती, वाणिज्य आदि से धन हुआ हो

तो उस धन में जो पिता से नहीं आया --आप कमाया है —उसमें विभाग बराबर-बराबर का हो। जो अपने कर्म—कमाने—से समर्थ हुआ भाइयों के साँझे धन के लिए चेष्टा न करे, उसे अपने भाग में से कुछ अंश देकर अलग कर देना चाहिए।

भाइयों का पारस्परिक व्यवहार

पिता के धन को खर्च न करके जो केवल अपने परिश्रम से कमाया है, उस अपने उद्यम से कमाये धन को न चाहे तो भाइयों को न दे। खोये हुए धन को यदि पिता अपने पौरुष से पाये तो उस अपने कमाये को, चाहे तो, पुत्रों के साथ न बाँटे। भाई पहले अलग होकर फिर धन इकट्ठा करके, फिर इकट्ठे होकर रहें, वह यदि फिर विभाग करें तो यह सम विभाग हो, बड़े का अलग भाग वहाँ नहीं होता है। जिन भाइयों में से विभाग के समय छोटा व बड़ा भाई अपने हिस्से से हीन हो जाए व कोई मर जाए, तो उसका हिस्सा लुप्त नहीं होता। किन्तु सारे सहोदर और साँझे भाई और सहोदर बहिनें सब इकट्ठे मिलकर बराबर-बराबर बाँट लें। जो बड़ा भाई लोभ से छोटे भाइयों को ठगे तो वह पूजनीय नहीं रहता, अधिक भाग का भागी नहीं रहता और राजा से दण्डनीय होता है। विरुद्ध कर्मों में प्रवृत्त जितने हों, वह सभी भाई धन के योग्य नहीं होते और छोटों को न देकर बड़ा अलग धन न ले। भाई जो पिता के साथ रहते हैं उन सबका यदि धन कमाने में मिलकर उद्योग हो तो विभाग काल में पिता किसी को न्यून अधिक न दे। विभाग के पीछे जो उत्पन्न हुआ है, वह पिता के ही धन को लेवे अथवा जो पिता के साथ सांझी हों, उन भाइयों के साथ विभाग करें। निःसन्तान मरे पुत्र के धन को माता लेवे और माता के भी मर जाने के बाद पिता की माता लेवे। जब सारा ऋण व धन यथाविधि बाँट लिया हो, पीछे जो कुछ ऋण व धन का पता लगे, वह सारा बराबर-बराबर बाँटें। वस्त्र, सवारी, आभूषण, पका अन्न, जल, स्त्रियाँ, योगक्षेम और मार्ग—इन्हें बाँटने योग्य नहीं कहते।

जुए पर कड़ी रोक

द्यूत और समाह्वय को राजा अपने राष्ट्र से हटाए क्योंकि यह दोनों दोष राज्य का नाश करने वाले हैं। इन दोनों को रोकने में राजा यत्नवान् हो। अप्राणियों (सिक्का, कौड़ी आदि) से जो खेला जाता है वह द्यूत कहा जाता है और जो प्राणियों (कुक्कड़, भैंस, मेंढक, घोड़ा आदि) से खेला जाता है, वह समाह्वय कहलाता है। द्यूत और समाह्वय जो करे, कराये उन सबको राजा दण्ड दे। जुआरिए, नाचने-गाने वाले, क्रूर, पाखण्डी, विकर्मी, शराब बेचने वाले—इन्हें जल्दी नगर से बाहर निकाल दे। यह गुप्त चोर राजा के राष्ट्र में रहते हुए अपने उल्टे कामों से भली प्रजाओं को कष्ट देते हैं।

चार महापातक

जो अधिकारों पर नियुक्त पुरुष धन के मद में बिगड़कर काम वालों का काम

बिगाड़ दें व रिश्वत लें, राजा उनका सर्वस्व छीन ले। झूठी राजाज्ञा बनाने वाले, मंत्रियों में फूट डालने वाले, स्त्री, बालक और ब्राह्मणी की हत्या करने वाले और राष्ट्र के शत्रुओं से मिले हुओं को राजा मरवा दे। जहाँ कहीं जो कार्य निर्णीत हो चुका हो और न्यायानुसार उस पर दण्ड हो चुका हो, उसे राजा किया हुआ जाने, उसमें परि- वर्तन न करे। यदि राजा के मंत्री व न्यायाधीश ठीक निर्णय न करें तो राजा स्वयं उसे फिर से करे और उन्हें सहस्र दण्ड दे। ब्रह्महत्या करने वाला, शराबी, चोर और गुरु स्त्री गामी---यह सब महापातकी हैं। इन चारों को यदि यह प्रायश्चित्त न करें तो शरीर दण्ड और धन दण्ड धर्मानुसार दे। इनके साथ बैठकर भोजन न करें, न इनको यज्ञ करने दें, न पढ़ाएँ, न इनसे विवाह सम्बन्ध करें—यह सारे धर्मों से अलग किए हुए दीन हो पृथ्वी पर रहें। इन्हें जाति और सम्बन्धी त्याग दें, यह दया के पात्र नहीं और न ही नमस्कार के योग्य हैं। किन्तु शास्त्रोक्त प्रायश्चित्त करते हुए सारे वर्गों के सम्मुख राजा इनके ललाट पर पाप का चिह्न दे और साहस दण्ड दे।

ऐसे अपराधों में ब्राह्मण को मध्यम साहस (५०० पण) दण्ड देना चाहिए। अथवा धन और दूसरे सामान समेत उसे देश से निकाल देना चाहिए। दूसरे वर्ग वाले यदि इन पापों को बिना इच्छा के करें तो उनका सर्वस्व छीनने के योग्य है, जान बूझ कर करें तो देशनिकाला के योग्य हैं। धार्मिक राजा महापातकी के दण्ड स्वरूप धन को आप न ले, यदि लालच से ले ले तो महापातक के दोष का हो जाता है। जहाँ राजा पापियों से धन की प्राप्ति त्यागता है, वहाँ मनुष्य ठीक समय पर उत्पन्न होते और दीर्घ जीवी होते हैं। वहाँ खेती समय पर पकती है, बालक नहीं मरते हैं, कोई अपाँग (लूला-लंगड़ा) नहीं होता। दूसरों का धन ठगने वाले गुप्त और प्रकट —इन दोनों प्रकार के चोरों को राजा गुप्तचरों द्वारा जानता रहे। इस प्रकार धर्मयुक्त व्यवहारों को करता हुआ राजा अपनी प्रजा में राजभक्ति बढ़ाकर नये देशों को पाने की इच्छा और प्राप्त देशों का पालन करे। जो राजा चोरों को दण्ड न देता हुआ उनसे आय का हिस्सा लेता है, उसके देश में हलचल पड़ जाती है और वह स्वर्ग से हीन हो जाता है। दूसरों का धन ठगने वाले गुप्त और प्रकट—इन दोनों प्रकार के चोरों को राजा गुप्तचरों द्वारा जानता रहे।

ठग और रिश्वतखोरों को दण्ड

इनमें प्रकट ठग वे हैं जो नानाविध व्यवहार्य वस्तुओं में मिलावट कर जीविका चलाने वाले हैं और जो चोर दस्यु आदि हैं, वे गुप्त ठग हैं। रिश्वत खोर, छलिये, ठग, जुआरिये मंगल की सूचना से जीविका करने वाले मक्कार, भाग्य बताने वाले, ठीक काम न करने वाले अधिकारी और वैद्य, अपने हुनर की चालाकी दिखाकर जीविका करने वाले और वेश्याएँ---इस प्रकार के लोगों को लोक में प्रकट काँटा जाने। आर्यों के चिह्न— संन्यासादि धार कर छिपकर विचरते हुए अनार्य—इन्हें अपने विश्वासी मूढ और अनेक वेशधारी गुप्तचरों से पता लगा उखाड़ दे और वश में ले आए। राजा इनके दोष प्रकट कर—इन्हें अपराध के अनुसार भली प्रकार दण्ड दे। ऐसे दुष्टों को

जो भले वेश में छिपकर चोर कर्म करते हैं, दण्ड के बिना नहीं रोका जा सकता। सभा स्थान, प्याऊ, हलवाई की दुकान, चकला, मद्य और अन्न के स्थान, चौराहे, प्रसिद्ध वृक्ष, सार्वजनिक स्थान, तमाशे, पुराने बागीचे, जंगल, कारीगरों की दूकानें, उजाड़ घर, असली और बनावटी वन इत्यादि स्थानों में ठहरने वाले और चलने फिरने वालों को अपने सिपाहियों और गुप्तचरों द्वारा ऐसे चोरों को पकड़ने का राजा प्रबन्ध करता रहे। गुप्तचर ऐसे हों जो इन चोरों के साथी बन जाएँ, इनके पीछे लग जाएँ, भाँति-भाँति के कर्म जानने वाले हों और होशियार हों। यह गुप्तचर चोरों को भोजन कराने, ब्राह्मणों के दर्शन कराने, शूरवीरता के कर्म दिखाने—इत्यादि बहानों से वहाँ लाकर राजपुरुषों द्वारा पकड़वा दें। यदि चोर पकड़े न जाएँ और के विषय में सावधान हो जाएँ तो राजा उन्हें बल से पकड़ मरवा दे। धार्मिक राजा चुराई वस्तु के हाथ में आये बिना चोर को न मरवाये। गाँव में जो कोई चोरों को अन्न दे अथवा स्थान दे—उन सबको भी मरवा दे। देश में जो रक्षा के काम पर नियुक्त हैं और सीमाओं पर सहायता के लिए नियुक्त हैं, वे यदि चोर-डाकुओं को पकड़ने के लिए न जाएँ अथवा पास खड़े देखते रहें तो उन्हें भी चोर की तरह दण्ड दे। गाँव को लूटने, जल का बाँध तोड़ने और मार्ग में डाका डालने वालों को पकड़ने में जो सहायता के लिए नहीं दौड़ते हैं उन्हें अपने सामान सहित देश से राजाज्ञा से निकाल देना चाहिए। राजा के कोष को चुराने वाले, राजा के प्रतिकूल स्थित और शत्रुओं को भेद बताने वाले को राजा नाना प्रकार के दण्डों से मरवाए। जो चोर रात को सेंध लगाकर चोरी करते हैं, राजा उनकी अँगुलियाँ और अँगूठा कटवा दे। गाँठ काटने वालों की भी इसी प्रकार अँगुलियाँ कटवा दे। जो इन चोरों को अग्नि, अनाज और शस्त्र रखने के लिए स्थान देते हैं और चोरी का माल अपने पास रखते हैं—उन्हें भी राजा चोर की तरह कड़ा दण्ड दे।

दुस्साहस के अपराधों का दण्ड

गोदाम घर, शस्त्र घर, मन्दिरों के तोड़ने वालों और राजकीय हाथी, घोड़ा और रथों को चुराने वाले को मृत्यु दण्ड दे। जो पूर्व समय के बने तालाब व जल का हरण करे व जलों के आने जाने का मार्ग नष्ट करे, उसे उत्तम साहस दण्ड दे। जो बिना आपत् (रोगादि) के राजमार्ग पर मल त्यागे, उसे दो कार्षापण दण्ड दे और मल को जल्दी साफ करा दे। आपत् ग्रस्त, वृद्धा, गर्भिणी, या बाल—ये राजमार्ग पर मल करें तो इन्हें डाँट दे और शीघ्र मार्ग शोध दे। बिना जाने इलाज करने वाले चिकित्सकों को दण्ड दे, मनुष्यों से भिन्न पशु आदि के विषय में प्रथम साहस (अढाई सौ पण) और मनुष्यों के विषय में मध्यम साहस—पाँच सौ पण—दण्ड दे। पुल, ध्वज, लकड़ी और मूर्तियों को तोड़ने वाला प्रत्येक वस्तुओं को नया बनवा दे और पाँच सौ पण दण्ड दे। केसर आदि में मिलावट करने वाले, माणिक आदि को तोड़-फोड़ करने और मणियों में खराब छेद करने वालों को प्रथम साहस—२५० पण—दण्ड दे। जो ग्राहक के साथ बेईमानी करे, मूल्य में विषमता करे, उसे प्रथम साहस वा मध्यम साहस दण्ड दे। राजा कारागारों को

सड़क पर बनाये जहाँ पापकारी सबको दीखते रहें। अभिचार, जादू, टोना, मारण, मोहन उच्चाटनादि कर्म करने वालों को दो सौ पण का दण्ड दे। सबसे अधिक पापी स्वर्णकार को जब वह अन्याय में प्रवृत्त हो—राजा दण्ड दे। खेती करने की वस्तुओं, शस्त्रों और औषध चुराने वालों को राजा समय और प्रयोजन के अनुसार दण्ड दे।

राजा ही युग-निर्माता है

राजा अगर थक जाए तो फिर-फिर कामों को प्रारम्भ करे, कार्य करने वाले पुरुष को ही लक्ष्मी प्राप्त होती है। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—यह सब राजा के वर्ताव हैं, राजा ही युग कहलाता है। सोया हुआ कलियुग जानकर भी जागता हुआ द्वापर कर्मों में उद्यत हो और कर्म करता हुआ सतयुग होता है। इन्द्र, सूर्य, वायु, यम, वरुण, चन्द्र, अग्नि और पृथ्वी के तेज के योग्य राजा वर्ताव करे। इन्द्र के समान प्रजा की कामनाओं को पूरा करने के रूप में वर्षा करे। सूर्य के समान प्रजा से कर रूपी जल लेवे। वायु के समान गुप्तचरों द्वारा सर्वत्र प्रवेश करे। यम के समान निष्पक्ष भाव से दुष्टों को दण्ड दे। वरुण के पाशों के समान पापियों को कड़ा दण्ड दे। चन्द्रमा के सदृश प्रजा को आह्लादित करने वाला हो। अग्नि के सदृश तेजस्वी और पापियों के लिए प्रचण्ड रूप हो। पृथ्वी के सदृश उच्च, नीच, दीन, अनाथ सबको ग्रहण और संभालने वाला हो। अपने कोष की वृद्धि करने में राजा सदा तत्पर रहे।

७. वर्ण व्यवस्था के नियम

अपने कर्मों में स्थित द्विजाति, तीनों वर्ण, वेद पढ़ें, ब्राह्मण इन्हें पढ़ाए, दूसरे दोनों—क्षत्रिय, वैश्य—दोनों न पढ़ाएँ। यह निश्चय है। ब्राह्मण सब वर्णों की जीविका के उपायों को शास्त्रानुसार जाने और दूसरों को उपदेश करे और स्वयं शास्त्रानुसार जीविका करे। अपने गुणों की विशेषता से, विशेष नियम धारण करने से और संस्कार की विशेषता से, ब्राह्मण सारे वस्त्रों का स्वामी है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यह तीनों वर्ण द्विजाति हैं, चौथा एक जाति शूद्र है, पाँचवाँ कोई वर्ण नहीं है।

अनुलोम विवाह

सारे वर्णों में अपने तुल्य वर्ण की अक्षत योनि (कुमारी) पत्नियों में से अनुलोमता से जो उत्पन्न हुए हों, वह जाति से वही जानने चाहिए। बिना व्यवधान (निचले वर्ण में) उत्पन्न हुई स्त्रियों में से जो पुत्र द्विजों ने उत्पन्न किए हैं, उनको माता की निचाई से नीचे होने के हेतु नीच ही कहते हैं। व्यवधान रहित स्त्रियों में से उत्पन्न हुओं की यह विधि है। शेष एक वर्ण के व्यवधान से उत्पन्न हुई सन्तानों की धर्मयुक्त विधि इस प्रकार है—

प्रतिलोम विवाह

ब्राह्मण से वैश्य की कन्या में से अम्बष्ट उत्पन्न होता है, शूद्र की कन्या में से निषाद जो पारशव कहलाता है। क्षत्रिय का शूद्र की कन्या में से जो पुत्र उत्पन्न होता है, उसे उग्र कहा जाता है। ब्राह्मण का तीनों वर्णों की स्त्रियों में से, क्षत्रिय का दोनों में से और वैश्य का एक में से, यह छः अपसद कहे जाते हैं। अनुलोम कहकर अब प्रतिलोम कहते हैं। क्षत्रिय का ब्राह्मण की कन्या से सूत, वैश्य से क्षत्रिया और ब्राह्मणी के पुत्र मागध और वैदेह कहे जाते हैं। शूद्र से वैश्या, क्षत्रिया और ब्राह्मणी पत्नियों में से उत्पन्न पुत्र आयोगव, क्षत्ता और चाण्डाल—जो मनुष्यों में नीच हैं—वर्ण संकर कहे जाते हैं। अनुलोमता में एक के व्यवधान में जैसे अम्बष्ट और उग्र माने जाते हैं, प्रतिलोम उत्पत्ति में वैसे क्षत्ता और वैदेह हैं। द्विजों के पुत्र जो क्रम से एक ही वर्ण नीचे की स्त्रियों में से उत्पन्न हुए हैं उन्हें मातृ दोष से—माता के वर्ण से—कहा जाता है। ब्राह्मण से उग्र कन्या (शूद्रा में से क्षत्रिय की कन्या) में से आवृत्त, अम्बष्ट कन्या (वैश्या में से ब्राह्मण की कन्या) से आभीर और आयोगवी, (वैश्या में से शूद्र की कन्या) में से धिग्वरण उत्पन्न होता है। शूद्र से आयोगव, क्षत्ता और मनुष्यों में से नीच चण्डाल, प्रतिलोमता से यह तीन निकृष्ट उत्पन्न होते हैं। वैश्य से (ब्राह्मणी क्षत्रिया में से) मागध और वैदेह और क्षत्रिय से (ब्राह्मणी कन्या में से) सूत—यह दूसरे तीन भी प्रतिलोमता से निकृष्ट उत्पन्न होते हैं। निषाद से शूद्रा में से उत्पन्न हुआ जाति से पुक्कस होता है, शूद्र से निषादी में से उत्पन्न हुआ कुक्कटक कहा गया है। (शूद्र का वैश्या से उत्पन्न पुत्र क्षत्ता और क्षत्रिय की शूद्रा में से उत्पन्न कन्या उग्रा) क्षत्ता का उग्रा में से उत्पन्न पुत्र श्वपाक, वैदेहक से अम्बष्ठी में से उत्पन्न हुआ वेण कहलाता है।

द्विज अपने वर्ण की स्त्रियों में से जिन पुत्रों को उत्पन्न करते हैं, वे यदि उपनयन व्रत से हीन हों तो सावित्री से भ्रष्ट हुए उन्हें व्रात्य कहा जाता है। व्रात्य ब्राह्मण से दुष्टात्मा, भूर्जकंटक, आवन्त्य, वाटधान, पुष्पध व शैख उत्पन्न होता है। क्षत्रिय व्रात्य से झल्ल, मत्यय, निच्छिवि, नट, करण, खस वा द्रविड़ होता है। वैश्य व्रात्य से सुधन्वाचार्य, कारूप, विजन्मा मैत्र व सान्वत उत्पन्न होता है। वर्णों के परस्पर व्यभिचार से न विवाहने योग्य (सगोत्रा आदि) को विवाहने से और अपने कर्मों के त्याग से वर्ण संकर होते हैं :—

संकर जातियाँ

जो संकर जातियाँ प्रतिलोम और अनुलोम के परस्पर मिलाप से होती हैं उनका वर्णन किया जाता है :—

सूत, वैदेहक, और मनुष्यों में नीच चण्डाल, मागध, क्षत्ता और आयोगव—यह छः अपनी जाति में, माता की जाति में और उत्कृष्ट जाति में अपने सदृश वर्णों को उत्पन्न करते हैं। जैसे तीनों वर्णों में से दो में (क्षत्रिय, वैश्य) ब्राह्मण का पुत्र द्विज होता है और अपनी जाति में भी द्विज होता है, वैसे बाह्य जातियों का भी क्रम है। वह (छः बाह्य) भी एक-दूसरे की स्त्रियों में अधिक दोष वाले निन्दित अनेक प्रकार के

बाह्यों को उत्पन्न करते हैं। जैसे शूद्र, ब्राह्मणी में से बाह्य जन्तु चण्डाल को उत्पन्न करता है, वैसे वह बाह्य चारों वर्णों में बाह्यतर को उत्पन्न करता है। प्रतिकूल वर्तते हुए बाह्य फिर १५ बाह्यतरों को उत्पन्न करते हैं और हीन १५ हीनों को उत्पन्न करते हैं।

दस्यु आयोगवी (शूद्र से वैश्या की कन्या) में से सैरन्धि को उत्पन्न करता है जो बालों को सजाने और अंगों को मलने आदि की सेवा जानता है, दास न होकर दासों की जीविका करता है अथवा पाशों से हिरण आदि पकड़ कर जीविका करता है। वैश्य से ब्राह्मणी में उत्पन्न हुआ वैदेह मीठा बोलने वाले 'मैत्रेयक' को उत्पन्न करता है जो प्रातःकाल घंटा बजाकर राजाओं की स्तुति करता है। ब्राह्मण से शूद्रा में उत्पन्न हुआ निषाद आयोगवी में से नौका चलाकर जीविका करने वाले मार्गव दास को उत्पन्न करता है जिसे आर्यावर्त निवासी कैवर्त कहते हैं। मृतकों के वस्त्र पहनने वाली, निन्दित अन्न खाने वाली आनार्या आयोगवी में से अलग यह तीनों हीन जाति के—सैरन्धि, मैत्रेयक, मार्गव उत्पन्न होते हैं। वैदेही में से उत्पन्न निषाद से कारावर और चमार, वैदेहिक से अन्ध्र और मेद—जो गाँव से बाहर रहते हैं—चण्डाल से पांडु सोपाक जो बाँस का व्यवहार करने वाले हैं, और निषाद से वैदेही में ही आहिण्डिक उत्पन्न होता है।

चण्डाल से पुक्कसी (निषाद से शूद्र की कन्या) से सोपाक उत्पन्न होता है जिसकी वृत्ति राजा की आज्ञा से मारना है। निषाद की स्त्री चण्डाल से श्मशान में रहने वाले अन्त्यावसायी पुत्र को जनती है जो बाह्यों से भी निन्दित है। वर्ण संकर में जो यह जातियाँ पिता-माता द्वारा उत्पन्न दिखाई गई हैं, यह गुप्त व प्रकट अपने-अपने कर्मों से जाननी चाहिए।

आर्य और दस्यु

आर्यों के सजाति में से उत्पन्न हुए (ब्राह्मण के ब्राह्मणी में से, क्षत्रिय के क्षत्रिया में से, वैश्य के वैश्या में से) और अनन्तर जाति में से उत्पन्न (ब्राह्मण का क्षत्रिया-वैश्या में ये, क्षत्रिय का वैश्या में से)—यह पुत्र द्विजों के धर्म वाले हैं, उपनयन के योग्य हैं और प्रतिलोम से उत्पन्न सभी शूद्रों के समान धर्मी कहे गए हैं। यह सब तप के प्रताप से (विश्वामित्र की तरह) और बीज के प्रताप से (ऋष्य शृंग की तरह) समय-समय पर मनुष्यों में से यहाँ ऊँची-नीची जाति को प्राप्त होते हैं। यह क्षत्रिय जातियाँ उपनयन आदि क्रिया के लोप से और ब्राह्मणों के (कर्म कराने अर्थ) न मिलने से, लोक में धीरे-धीरे शूद्रता को प्राप्त हुई हैं जैसे, पौण्ड्रक, ओड्र, द्रविड़, काम्बोज, यवन, शक, पारद पल्हव, चीन, किरात, दरद और खश। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों की जो जातियाँ (धर्म से) बाहर हो गई हैं, वे चाहे म्लेच्छ भाषा और चाहे आर्य भाषा बोलती हैं—सब दस्यु कही जाती हैं।

जो द्विजों के अपसद हैं और जो अपध्वंसज हैं, वे द्विजों के ही निन्दित कर्मों से जीविका करें। सूतों का कर्म घोड़ों को सधाना, चलाना, अम्बष्ठों का चिकित्सा करना, वैदेहिकों का अन्तःपुर की रक्षा, मागधों का वाणिज, निषादों का मछली मारना, आयोगव का बढ़ई का काम, मेद, अन्ध्र, चुञ्चु और मुद्गु का जंगली पशु

मारना, क्षत्ता उग्र और पुक्कसों का बिल में रहने वाले—गोह आदि को—बाँधना, मारना, धिग्वणों का चमड़ा बनाना, बेचना, वेणों का बर्तन बजाना—यह सब गाँव आदि के पास, वृक्षों के नीचे, पर्वतों और उपवनों में जीविका करते हुए बसें। चण्डाल और श्वयच भी इसी प्रकार गाँव से बाहर रहें। शूद्रा में से ब्राह्मण की सन्तान सातवीं पीढ़ी में श्रेष्ठ जाति को प्राप्त हो जाती है।

अहिंसा, सत्य, अस्त्रेय (चोरी व किसी का अधिकार न छीनना) पवित्रता, शुद्धता और इन्द्रियों का संयम—यह चारों वर्णों के धर्म मनु ने कहे हैं।

शूद्र ब्राह्मण और ब्राह्मण शूद्र—कर्मों से

शूद्र श्रेष्ठ कर्मों से ब्राह्मणत्व को प्राप्त होता है और ब्राह्मण हीन कर्म से शूद्रत्व को प्राप्त होता है। इसी प्रकार क्षत्रिय से उत्पन्न हुए को और वैश्य से उत्पन्न हुए को जाने। जैसे उत्तम बीज उत्तम क्षेत्र में उत्पन्न हुआ पूर्ण उत्तम होता है, वैसे आर्य से आर्या में उत्पन्न हुआ सम्पूर्ण संस्कार के योग्य होता है। कई बुद्धिमान् बीज की स्तुति करते हैं, दूसरे क्षेत्र की, तीसरे बीज और क्षेत्र - दोनों की किन्तु इसमें व्यवस्था यह है कि अक्षेत्र में बीज बोया मध्य में ही नष्ट हो जाता है, बिना बीज के क्षेत्र भी निकम्मा होता है। बीज के प्रभाव से तिर्यक् योनि में उत्पन्न हुए ऋषि पूजनीय हुए, इसलिए बीज की प्रशंसा है। अनार्य जो आर्य कर्मों वाला है और आर्य जो अनार्य कर्मों वाला है—इन दोनों का विचार करके ब्राह्मण ने कहा कि न सम है, न असम है। सम इसलिए नहीं कि केवल द्विज कर्म करने से शूद्र द्विज नहीं बना और असम इसलिए नहीं कि निषिद् के आचरण में दोनों तुल्य हैं।

चारों वर्णों के आपत् धर्म

ब्राह्मण के छः कर्म हैं, पढ़ना-पढ़ाना, यज्ञ करना—यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना। छ. कर्मों में से तीन कर्म इसके जीविका के हैं—यज्ञ करना और पढ़ाना और शुद्ध व्यक्ति से दान लेना। तीन धर्म ब्राह्मण के धर्म से क्षत्रिय के लिए हट जाते हैं पढ़ाना, यज्ञ कराना और तीसरा दान लेना। वैसे ही, यह वैश्य के लिए भी हट जाते हैं, यह मर्यादा है। मनु ने क्षत्रिय, वैश्य के लिए यह तीनों धर्म नहीं बतलाए हैं। प्रजा की रक्षा के लिए शस्त्र-अस्त्र धारण करना—यह क्षत्रिय का और वाणिज्य, पशुपालन, खेती—यह वैश्य की जीविका के लिए हैं और धर्मार्थ, दान, पढ़ना और यज्ञ– यह तीन कर्म हैं। जीविका के लिए भी वेदाभ्यास ब्राह्मण का, प्रजा की रक्षा क्षत्रिय का, व्यापार वैश्य का यह तीनों के लिए अपने कर्मों में विशेष हैं।

ब्राह्मण अपने निज के कर्म से निर्वाह न कर सकता हुआ क्षत्रिय के धर्म से जीविका करे क्योंकि वह धर्म इसका समीपी है—दोनों से निर्वाह न कर सके तो खेती और पशुपालन का आश्रय लेकर वैश्य की जीविका करे। जीविका की त्रुटि से धर्म की निपुणता (अपनी सच्ची जीविका) त्यागते हुए (ब्राह्मण और क्षत्रिय) का वैश्य की बेचने योग्य वस्तुएँ धन बढ़ाने के लिए बेचनी चाहिए। पर इन वस्तुओं का त्याग करे—

सारे रस, पके अन्न, तिल, पत्थर, लवण, पशु और मनुष्य, रंगा हुआ सूती कपड़ा, सन, अलसी, ऊन के वस्त्र, फल, मूल और औषधियाँ, जल, शस्त्र, विष, मांस, सोम, सब प्रकार के गन्ध, खार, शहद, दही, घी, तेल, मोम, गुड़ और कुशा, सारे जंगली पशु, दाढ़ों वाले पशु (शेर आदि,) पक्षी, मद्य, नील, लाख और एक खुर वाले सभी पशु।

कृषक खेत में उत्पन्न धर्म के अर्थ तिलों को बेच दे पर वह शुद्ध हों और अधिक लाभ के लिए देर तक रखे न हों। यह तिल खाने, मलने और दान करने के काम में ही लाये जाएँ।

मांस, लाख और लवण के वेचने से ब्राह्मण जल्दी पतित होता है और दूध बेचने से तीन दिन में शूद्र हो जाता है। दूसरे निषिद्ध पदार्थों को वेचने से ब्राह्मण सात दिनों में वैश्य भाव को प्राप्त हो जाता है।

आपदा को प्राप्त हुआ क्षत्रिय इन सबसे जीविका करे पर ब्राह्मण की वृत्ति कभी स्वीकार न करे। जो निचली जाति का लोभ से ऊँचे वर्णों के कर्म से जीविका करे, उसे राजा निर्धन कर राज्य से निकाल दे। अपना धर्म विगुण होता हुआ भी अच्छा है, न कि दूसरे का धर्म, चाहे वह अच्छा भी हो क्योंकि दूसरे के कर्म से जीविका करता हुआ जल्दी जाति से पतित हो जाता है। वैश्य अपनी वृत्ति से जीविका न कर सके तो अकार्यों को न करता हुआ शूद्र की वृत्ति से भी जीविका कर सकता है, पर सामर्थ्य वाला होकर उसे त्याग दे। जब शूद्र को द्विजों से भी सेवा से पूरी जीविका न मिलती हो, तब वह दस्तकारी आदि कार्यों से जीविका करे। इसी प्रकार अनेक प्रकार के शिल्य आदि शूद्र करे।

विपदा में पड़ा ब्राह्मण सबसे—निन्दित से भी—दान ले ले। आपद् में ब्राह्मण को निन्दित को पढ़ाने, यज्ञ कराने और दान लेने से दोष नहीं होता है। प्रतिग्रह, याजन और अध्यापन में से प्रतिग्रह निकृष्ट हैं जो ब्राह्मण के लिए परलोक में बुरा है क्योंकि याजन, अध्यापन तो संस्कार वालों के लिए ही किये जाते हैं पर प्रतिग्रह नीच से भी लिपट जाता है। दुष्टों के याजन और अध्यापन से किया पाप जप होमों से दूर हो जाता है, दुष्ट प्रतिग्रह से हुआ पाप त्याग और तप से दूर हो जाता है।

धन प्राप्ति के यह सात साधन धर्मयुक्त हैं, दान, लाभ, खरीद, जप, प्रयोग, कर्मयोग और सत् प्रतिग्रह। विद्या, (चिकित्सा आदि), शिष्य, मजदूरी, सेवा, पशु रक्षा, व्यापार, खेती, सन्तोष, भिक्षा और ब्याज—यह दस जीवन के हेतु हैं। ब्राह्मण या क्षत्रिय ब्याज न लें, अत्यन्त आपद् में नीच पुरुष से ले लें, केवल पंच महायज्ञादि पूरा करने के लिए और वह भी बहुत थोड़े ब्याज पर दें।

क्षत्रिय का मुख्य कार्य—रक्षा करना

क्षत्रिय राजा आपदा में पैदावार का चौथा भाग लेता हुआ भी, प्रजा की पूरी रक्षा करता हुआ, अधिक लगान के पाप से छूट जाता है। उसका अपना धर्म विजय पाना है, भय में पीठ न दे। शस्त्र के साथ वैश्यों की रक्षा करता हुआ धर्मयुक्त बलि ले, अर्थात् —अनाज में वैश्य से आठवाँ भाग, सोने-चाँदी के लाभ में बीसवाँ भाग—कम से कम एक

कार्षापण हो, शूद्र, कारीगर अपने कर्म से राजा का उपकार करें, उनसे कर न ले।

शूद्र धर्माचरण से सुख का अधिकारी

शूद्र धर्म प्राप्ति की कामना से, अपने धर्म को जानता हुआ, यदि आर्यों के आचार में स्थित रहता है, वह पापी नहीं अपितु प्रशंसा प्राप्त करता है। आर्यों का निन्दक न हो कर जैसे-जैसे श्रेष्ठों का आचरण करता है, वैसे-वैसे अनिन्दित होता हुआ इस लोक और परलोक में सुख प्राप्त करता है।

८. पुण्य-पाप और प्रायश्चित्त

जो समर्थ्यवान् अपने कुटुम्बियों को भूखा मरता देख दूसरों को दान देता है, उसका वह दान धर्माभास है, जो प्रकट में मधु है पर विष के स्वाद वाला (नरक में ले जाने वाला) है। कुटम्बियों और प्राणियों को दुख देकर जो कुछ परलोक के लिए करता है, वह उसके लिए दुख परिणाम वाला है—जीते हुए और मर कर भी। जो सदा लेता है, देता नहीं, उस न देने वाले से बलात् लेवे, इस प्रकार लेने वाले का यश फैलता है और धर्म बढ़ता है।

धन के शुद्ध रूप

जिसने छ: दिन भोजन नहीं खाया वह सातवें दिन का भोजन एक दिन के लिए हीन कर्म वाले दानादि कर्म से रतित—व्यक्ति से ले सकता है। खलिहान से, खेत से, घर से, अथवा जहाँ से मिले ले ले, पूछने पर स्पष्ट कह दे कि भूखा रहने के हेतु मैंने इस प्रकार चोरी से लिया है। जो दुष्टों से धन लेकर श्रेष्ठों को देता है, वह अपने आपको नौका बनाकर दोनों को तार देता है। यज्ञशीलों का जो धन है उसे बुद्धिमान् देवताओं का धन कहते हैं, यज्ञ न करने वालों का जो धन है, वह असुरों का धन कहा जाता है। ऐसे निभित्त के लिए धन हरने वाले को राजा दण्ड दे क्योंकि राजा की मूर्खता से ही विद्वान् भूख से पीड़ित होता है। राजा विद्वान् की धर्मयुक्त जीविका नियत करे। इस प्रकार जीविका निश्चित कर विद्वान् की रक्षा करे क्योंकि रक्षा किए गए विद्वान् से राजा उसके धर्म का छटा हिस्सा पाता है। यज्ञ के लिए माँग कर जो सारा धन उसमें नहीं लगाता है, वह सौ वर्ष तक भास व काक बनता है। क्षत्रिय भुजबल से, वैश्य और शूद्र धन से, ब्राह्मण जप और होम से अपनी आपदा को दूर करे। विद्वान् मर्यादा बनाने वाला, उसका संचालन करने वाला, आचार्य और सब का हितैषी होता है, उसे अनिष्ट वचन व कठोर वचन न कहे।

पातक और महापातक

विहित कर्म न करता हुआ और निन्दित करता हुआ तथा इन्द्रियों में आसक्त मनुष्य प्रायश्चित्त के योग्य होता है। बुद्धिमान् पुरुष बिना इच्छा से पाप का प्रायश्चित्त

आवश्यक कहते हैं, दूसरे आचार्य इच्छा से किए पाप के लिए भी प्रायश्चित्त कहते हैं क्योंकि श्रुति में कहा है। बिना इच्छा किया पाप वेदाभ्यास से शुद्ध होता है और इच्छा वश किया पाप विभिन्न प्रायश्चित्तों से शुद्ध होता है। प्रमाद से व पूर्व जन्म के कर्म से प्रायश्चित्ती होकर द्विज विना प्रायश्चित्त के धर्मात्माओं का संग न करे। कई इस जन्म के बुरे कर्मों से, कई पूर्व जन्म में किए कर्मों के रूप से उलट-पलट फल को प्राप्त होते हैं। इसलिए दोनों को प्रायश्चित्त करना चाहिए। सोने को चुराने वाला खोटे नखों को, मद्यप काले दाँतों को, ब्रह्महत्या करने वाला क्षय रोग को, गुरु-पत्नी गामी चर्म रोग को प्राप्त होता है। चुगली करने वाला नसिका की दुर्गन्ध को, झूठी निन्दा करने वाला मुख की दुर्गन्ध को, अनाज का चोर अँगहीनता को और मिलावट करने वाला अँग की अधिकता को प्राप्त करता है। अन्न चुराने वाला अग्निमन्दता को, वाणी का पापी गूँगेपन को, वस्त्र चुराने वाला लंगड़ेपन को प्राप्त होता है। इस प्रकार कर्मशेष से निन्दित व्यक्ति मूर्ख, गूँगे, अंधे और बहरे आकृति वाले उत्पन्न होते हैं। इसलिए शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त सदा करना चाहिए। ब्रह्महत्या, सुरा-पान, गुरुपत्नी समागम, चोरी—यह चार महापातक हैं और इनका संसर्ग पाँचवाँ महापातक है। अपने को बड़ा बताने के लिए झूठ बोलना, राजा के पास चुगली करना, गुरु पर झूठा अपराध लगाना, ब्रह्महत्या के तुल्य हैं। ईश्वर को व वेद को भुला देना, वेद निन्दा, मिथ्या साक्षी, मित्रहत्या, निषिद्ध आहार, अनुचित वस्तु का खाना—यह छः सुरापान तुल्य पातक हैं। अमानत, मनुष्य, घोड़ा, चाँदी, भूमि, हीरा और मणिकों को हर लेना—यह सोने की चोरी तुल्य पातक हैं। सगी बहिन, कुमारी, चाण्डाली, मित्र और पुत्र की स्त्री—इनमें वीर्य संचन गुरु-पत्नी गमन तुल्य पातक है।

उपपातक

अब उपपातक कहते हैं। गोहत्या, यज्ञ के अयोग्यों का यज्ञ कराना, पर-स्त्री गमन, अपने को बेचना, गुरु, माता, पिता का त्याग, ब्राह्मण का त्याग, अग्नि का त्याग, पुत्र का त्याग, बड़े भाई को उलांघकर छोटे भाई का पहले विवाह, इन दोनों को कन्या देना, इन दोनों का यज्ञ कराना (विवाह होम कराना), कन्या पर दोष लगाना, ब्याज लेना, व्रत का भंग, तालाब, बगीचा, स्त्री और सन्तान को बेचना, व्रात्यता, बान्धवों का त्याग, नौकर होकर पढ़ाना, नौकर से विद्याग्रहण, अनुचित वस्तु का बेचना, सब प्रकार के खनिजों का अधिकार, महायंत्र को जारी करना, औषधियों की हिंसा (समय से पूर्व व व्यर्थ काटना, नष्ट करना), स्त्री से जीविका कराना, अभिचार कर्म और मूल कर्म, ईंधन के लिए हरे वृक्षों को काटना, पितर अतिथि, देव आदि को न देकर केवल अपने लिए ही खाना, यज्ञ न करना, चोरी, ऋण का न चुकाना, असत् शास्त्रों की शिक्षा, नास्य कर्म, अनाज, धातुओं और पशुओं का चुराना, मद्य, पर-स्त्री का सेवन, स्त्री, शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय का वध, नास्तिकता—यह सब उपपातक हैं। विद्वान् को भी चोट लगाना, शराब आदि का सूँघना, कुटिलता, पुरुष से मैथुन—यह जाति भ्रंश कर पातक हैं। गधा, घोड़ा, ऊँट, हरिण, हाथी, बकरी, भेड़, साँप,

भैंसे की हत्या—यह संकरीकरण (वर्णसंकर के तुल्य) पाप हैं। विक्षिप्तों से दान लेना, वणिज, शूद्र की सेवा, और असत्य भाषण—यह अपात्रीकरण (दान लेने के अयोग्य बनाने वाला) पातक है। कृषि, कीट और पक्षियों की हत्या, मद्य के साथ रखी वस्तु का भोजन, फल, लकड़ी और फूलों की चोरी, धैर्य न होना—यह वह (अपवित्र करने वाला) पातक है।

प्रायश्चित्त

जानते हुए ब्रह्महत्या करने वाला वन में कुटिया बना कर और मुर्दे की खोपड़ी की झंडी बना कर भिक्षा का अन्न खाता हुआ बारह वर्ष रहे। अथवा जानते हुए शस्त्रधारियों का अपनी इच्छा से निशाना बने अथवा जलती हुई अग्नि में अपने आप को नीचे सिर करके तीन बार डाले। अथवा अश्वमेध वा स्वर्जित, गोसव, अभिजित्, विश्वजित्, त्रिवृत् अग्निष्टुत् यज्ञ करे। अथवा ब्रह्महत्या का पाप दूर करने के लिए मिताहारी और संयमी होकर किसी एक वेद का स्वाध्याय करता हुआ सौ योजन यात्रा करे। अथवा किसी विद्वान् को सारा धन दे दे जो धन जीवन के लिए पर्याप्त हो, व सारे सामान समेत घर दे दे। अथवा हविष्य भोजन करता हुआ उलटे प्रवाह सरस्वती के मूल तक जाए व अल्पाहारी होता हुआ तीन बार वेद की संहिता का स्वाध्याय करे। अथवा गो ब्राह्मण के हित में रत हुआ सिर मुंडाकर ग्राम के निकट गोशाला वा आश्रम में वृक्ष के नीचे निवास करे। गो ब्राह्मण की रक्षा करने वाला ब्रह्महत्या के पाप से छूट जाता है। तीन बार चोरी को रोकने वाला वा सर्वस्व जीत कर देने वाला अथवा उसके निमित्त ब्राह्मण-विद्वान् को जीवन लाभ हो तो ब्रह्महत्या के पाप से छूट जाता है। इस प्रकार सदा पक्के नियमों वाला, ब्रह्मचारी और सँयमी बारहवें वर्ष के समाप्त होने पर ब्रह्महत्या को दूर करता है। अथवा अश्वमेध में ब्राह्मणों के और राजा के सम्मुख अपना पाप निवेदन कर, अवमृथ स्नान कर, ब्रह्महत्या के पाप से छूट जाता है। गवाही में झूठ बोलकर, गुरु पर मिथ्या दोष लगा कर, अमानत को चुरा कर, अपनी स्त्री और मित्र का वध करने वाला भी यही प्रायश्चित्त करे। यह शुद्धि बिना कामना के ब्राह्मण के वध में कही है। द्विज राग से सुरा पीकर अग्नि के तुल्य गर्म सुरा पीए, उससे शरीर के दग्ध होने पर उस पाप से छूटता है। अथवा अग्नि के तुल्य गर्म गोमूत्र, जल पीए, दूध, घी व गोबर का रस मरने तक पीए अथवा बालों के वस्त्र पहने, जटा धारे, झंडी लगाए, वर्ष भर चावलों के कण व खली एक बार रात को खाए।

मद्यपान के दोष

सुरा अन्नों का मल है और पाप मल कहलाता है। इसलिए ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सुरा न पीयें। गुड़ की (गौड़ी), पीठी की और महुए की—यह तीन प्रकार की सुरा है। जैसी एक, वैसी सभी, ब्राह्मण को नहीं पीनी चाहिए। यक्ष, राक्षस और पिशाचों का अन्न है, मद्य, मांस, सुरा और आसव यह ब्राह्मण को नहीं खाने चाहिए।

मद से मूढ हुआ ब्राह्मण अपवित्र स्थान में गिरेगा, अनुचित रीति से वेद का उच्चारण करेगा व कोई अन्य अकार्य करेगा। जिसके शरीर में स्थित वेद एक बार भी मद्य से डुबो दिया जाता है, वह ब्राह्मणत्व से गिर शुद्र हो जाता है।

सोने की चोरी करने वाला ब्राह्मण आदि राजा के पास जा अपना कर्म प्रकट करे कि मुझे आप दंड दें। राजा उसके कंधे पर मूसल को लेकर एक बार स्वयं उसे मारे। वध से चोर शुद्ध होता है और द्विज तप से ही। तप से सुवर्ण की चोरी से उत्पन्न पाप दूर करना चाहता हुआ द्विज चीर पहन कर वन में तप करे। इन व्रतों से चोरी के पाप को द्विज दूर करे।

चान्द्रायण व्रत के विविध रूप

आचार्य, पिता, गुरु स्त्री गामी अपने पाप को बता कर तपी हुई लोहे की शय्या पर सोए और जलती हुई प्रतिमा को गले लगा कर मृत्यु से शुद्ध होता है। अथवा अपना लिंग और अंडकोश काटकर और अंजलि में रख शरीर के गिरने तक दक्षिण-पश्चिम कोण को चला जाए। अथवा खाट का पाया हाथ में ले, चीर पहने, दाढ़ी-मूँछ धारे, एकाग्र मन से निर्जन वन में एक वर्ष कृच्छ्र प्राजापत्य करे। अथवा तीन मास इन्द्रियों को रोक तीन मास हविष्य व यवागू (जौ का दलिया) के भोजन से चान्द्रायण व्रत करे। इन व्रतों से महापातकी अपने पाप दूर करे।

उपपातकी—गौ हत्या करने वाला तीन महीने प्रायश्चित्त करे, सिर, दाढ़ी-मूँछ मुंडाए, मारी गयी गायों के चमड़े से ढका हुआ, गौ-स्थान में रहे, एक मास केवल जौ—पतले करके पीए। दो मास संयमी बनकर गौमूत्र से स्नान करे, भोजन के चौथे समय खार और लवण के बिना ही भोजन करे। दिन को उन गौओं के पीछे जाए, खड़ा हुआ ऊपर उठी गौधूलि फाँके। गौ सेवा—करके और नमस्कार कर रात को बिना किसी के सहारे रखवाली करे। गौओं के साथ ही—उनके ठहरने पर ठहरे, चलने पर चले, बैठने पर बैठे, शुद्ध रहे और गौओं पर क्रोध न करे। रोगिणी, चोर, बाघ आदि से पीड़ित, गिरी हुई व कीचड़ लगी गौओं को सारे उपायों से कष्ट मुक्त करे। धूप, वर्षा, सर्दी, गर्मी, आँधी आदि में शक्ति अनुसार गौओं की रक्षा किये बिना अपनी रक्षा न करे। अपने व दूसरे के घर में, खेत में, खलिहान में भक्षण करती हुई किसी को न बतलाए और दूध पीते बछड़े को न बताए। इस प्रकार गो-हत्यारा गौओं की सेवा करता तीन मास में गो हत्या के पाप से छूट जाता है। दूसरे उपपातकी भी अपनी शुद्धि के लिए यही व्रत अथवा चान्द्रायण व्रत करें।

अवकीर्णी (महापातकी) रात को चौराहे पर पाक यज्ञों की विधि से निर्ऋति का यज्ञ करे। निर्ऋति के लिए अग्नि में होम करके, ऋचा से वायु, इन्द्र, बृहस्पति और अग्नि के लिए घी से आहुतियाँ दे। द्विज ब्रह्मचारी का अपनी इच्छा से वीर्य स्खलन व्रत का लोप है—यह वेदवादी धर्मात्मा कहते हैं। ब्रह्मचारी अवकीर्णी (व्रतभंगी) हो जाए तो उसका ब्रह्म तेज वायु, इन्द्र, बृहस्पति और अग्नि इन चारों को प्राप्त होता है। इस पाप के प्राप्त होने पर निर्ऋति याग करके अपना कर्म बताता हुआ सात घरों से भिक्षा

माँगे। इस भिक्षा से एक काल भोजन करता हुआ और दिन में तीन बार स्नान करता हुआ एक वर्ष में शुद्ध होता है। जातिभ्रंश करने वाला कोई कर्म अपनी इच्छा से करे तो सान्तपन कृच्छ्र करे, बिना इच्छा के करे तो प्राजापत्य करे। संकर करने और अपात्र बनाने वाले कर्मों में शुद्धि के लिए महीना भर चान्द्रायण करे, और तीन दिन गर्म यवागू पीए।

ब्रह्महत्या का चौथा भाग (तीन वर्ष) क्षत्रिय को मारने में प्रायश्चित्त कहा है, सदाचारी वैश्य के मारने में आठवाँ भाग (डेढ़ वर्ष) और शूद्र के मारने में सोलहवाँ भाग (नौ महीने) जानो। बिना इच्छा के क्षत्रिय को मार कर ब्राह्मण अपनी शुद्धि के लिए एक बैल समेत एक सहस्र गौएँ दान करे। अथवा संयमी जटाधारी होकर ग्राम से बहुत दूर वृक्षों के नीचे रहता हुआ दो वर्ष ब्रह्महत्या करने वाले के व्रत को करे। यही प्रायश्चित्त ब्राह्मण सदाचारी वैश्य को मार कर करे, एक सौ गौएँ दे। यही सारा व्रत छः महीने शूद्र के मारने वाला करे अथवा एक बैल सहित दस श्वेत गौएँ ब्राह्मण को दे।

अभक्ष्य का प्रायश्चित्त

अब अभक्ष्य के भक्षण में प्रायश्चित सुनो। अज्ञान से मदिरा पीकर संस्कार से ही शुद्ध हो जाता है, जानकर पीए तो भी प्राणान्तिक (प्राणनाशक) नहीं बताना चाहिए। सोम यज्ञ कर चुका ब्राह्मण तो सुरा पीए हुए के मुख के गन्ध को भी सूँघ ले तो जल में तीन बार प्राणायाम कर घी पीकर शुद्ध होता है। जिनका नहीं खाना चाहिए, उनका अन्न खाकर व स्त्री और शूद्र का जूठा खाकर अभक्ष्य माँस खाकर सात दिन जौ पीए। इसी प्रकार पशु-पक्षियों के माँस खाकर और पृथ्वी में उत्पन्न कुक्करमुत्ते (छत्रियाँ) खाकर चान्द्रायण व्रत करे। जो ब्रह्मचारी मधु या माँस किसी तरह खा ले वह प्राज्ञापत्य कृच्छ्र करके शेष व्रत को समाप्त कर दे। जो अपनी शुद्धि चाहता है, उसे अभोज्य अन्न नहीं खाना चाहिए, जो भूल से खा लिया तो उगल दे व प्रायश्चित्तों से जल्दी शोधन करे।

व्यभिचार का प्रायश्चित्त

ब्राह्मण अपनी जाति वालों के घर से ही इच्छापूर्वक धान, अन्न, धन की चोरी करके वर्ष भर कृच्छ्र व्रत से शुद्ध होता है। भक्ष्य भोज्य, यान, शय्या, आसन, पुष्प, मूल और फलों को चुराने में पंचगव्य से शुद्धि होती है। इन व्रतों से द्विज चोरी के पाप को दूर करे और गमन न करने योग्य स्त्री से गमन करने के पाप को इन व्रतों से दूर करे। सगी बहिन, मित्र व पुत्र की स्त्री, कुमारी और चाण्डाली में वीर्य संचन करने के पाप में गुरु-स्त्री गमन का प्रायश्चित्त करे। पिता की बहिन, माता की बहिन की कन्या और माता के सगे भाई की कन्या जो बहिन तुल्य है इनका गमन करके चान्द्रायण करे। इन तीनों को बुद्धिमान् पत्नी रूप से न विवाहे क्योंकि सपिण्ड वाली

होने से यह विवाह योग्य नहीं, इन्हें विवाहने से नीचे गिरता है। द्विज किसी पुरुष से व अपनी स्त्री से छकड़े में, पानी में या दिन में मैथुन करे तो वस्त्रों समेत स्नान करे। ब्राह्मण चाण्डाल व अन्त्यजों की स्त्रियों से गमन करके, भोजन खाकर व दान लेकर—यह सब भूल से भी करे तो पतित होता है। व्यभिचारिणी स्त्री को पति एक घर में रोके और जो व्रत पुरुष को पर-स्त्री गमन में है—वह इससे कराए। वह सजातीय पुरुष से प्रार्थना की हुई यदि फिर दूषित हो तो कृच्छ्र चान्द्रायण इसे पवित्र करने वाला कहा गया है।

संसर्ग पाप का प्रायश्चित्त

पतितों के साथ वर्ष भर लगातार संसर्ग करने से पतित हो जाता है पर यज्ञ कराने, पढ़ाने वा रिश्तेदारी से, न कि साथ चलने, बैठने व खाने से। जो मनुष्य इनमें से जिस पतित के साथ संसर्ग को प्राप्त हो, वह उसके संसर्ग दोष की शुद्धि के लिए उसी का प्रायश्चित्त करे। पतित से संभाषण, इकट्ठे बैठना, जायदाद का देना, और लोक व्यवहार - आदि छोड़ दे। प्रायश्चित्त पूरा न किए पापियों से कोई व्यवहार न करे पर प्रायश्चित्त कर चुकों को कभी न निन्दे—पूर्ववत् वर्त्ते। जिन द्विजों का विधि अनुसार सावित्री का उपदेश न हो, उन्हें तीन कृच्छ्र करा यथाविधि उपनयन कराए। जो द्विज शास्त्र-विरुद्ध आजीविका वाले हैं वा वेद नहीं पढ़े हैं, वे यदि प्रायश्चित्त करना चाहें तो उन्हें भी यही तीन कृच्छ्र प्रायश्चित्त का उपदेश करे।

यदि ब्राह्मण निषिद्ध कर्म से धन कमाता है तो वह त्याग, स्वाध्याय और तप से शुद्ध होता है। एकाग्रचित्त हो तीन हज़ार गायत्री जप कर मास भर गोष्ठ में दूध पीकर, दुष्ट प्रतिग्रह से छूटता है। व्यभिचार करने वाला और वेद का अपमान करने वाला द्विज वर्ष भर केवल जौ खाता हुआ इस पाप को दूर करता है। महीना भर छटे समय (तीसरे दिन रात को) भोजन, प्रतिदिन वेद संहिता का स्वाध्याय और जप तथा शाकल होग—यह पंक्ति दूषकों का शोधक है। वेद विहित नित्य कर्मों के लोप में और स्नातक के व्रतों के लोप में एक दिन का भोजन न करना प्रायश्चित्त है। जिन पापों का प्रायश्चित्त नहीं कहा है, उनके दूर करने के लिए शक्ति और पाप को देख कर प्रायश्चित्त की कल्पना करे।

प्राजापत्य व कृच्छ्रव्रत

प्राजापत्य (कृच्छ्र व्रत) करता हुआ द्विज तीन दिन प्रातःकाल ही खाये, तीन सायंकाल ही खाए, तीन दिन बिन माँगा खाए और फिर तीन दिन कुछ न खाए। गौ मूत्र, गोबर, दूध, दही, घी, कुशा का उबला हुआ पानी—यह सब इकट्ठा करके एक दिन खाए —एक दिन उपवास करे—यह कृच्छ्र सांतपन व्रत कहा है। अति कृच्छ्र करता हुआ तीन-तीन दिन तीन बार करके पूर्व कहे की तरह एक-एक ग्रास खाए, अन्त में तीन दिन उपवास करे, तथा कृच्छ्र करता हुआ ब्राह्मण तीन-तीन दिन गर्म

किया जल, दूध, घी और वायु पीए और एक बार स्नान करे और संयमी रहे। मन को वश में करके अप्रमन्त हो बारह दिन कुछ न खाना, पराक कृच्छ्र होता है जो सारे पापों को मिटाने वाला है। तीन समय स्नान करता हुए कृष्ण पक्ष में एक-एक मास घटाता जाए और शुक्ल में बढ़ाता जाए—यह चान्द्रायण कहा गया है। यही सारी विधि—ग्रास बढ़ाना-घटाना और तीन समय स्नान—शुक्ल पक्ष से आरम्भ करके यव मध्यम चान्द्रायण करता हुआ करे। जौ की तरह इसका मध्य मोटा और किनारे पतला होने से यह यवमध्य चान्द्रायण व्रत है। यति चान्द्रायण करने वाला, संयमी, हविष्य भोजन करता हुआ, दोपहर के समय आठ-आठ ग्रास खाए। सावधान हुआ प्रातःकाल चार ग्रास खाए, चार सायंकाल खाए, यह शिशु चान्द्रायण कहा गया है। सावधान हुआ इस रीति से हविष्य अन्न के दो सौ चालीस ग्रास खाता हुआ चन्द्र की सलोकता को प्राप्त होता है। इस व्रत को महर्षियों ने सम्पूर्ण पापों से छूटने के लिए कहा है।

पश्चात्ताप से पाप निवारण

महाव्याहृतियों से प्रतिदिन व्रती होकर होम करे, अहिंसा, सत्य, अक्रोध और सरलता का आचरण करे और तीन बार रात को वस्त्रों समेत जल में प्रवेश करे, पतितों के साथ कभी संभाषण न करे, दिन खड़ा रहने और रात बैठने में गुजारे, ब्रह्मचारी और व्रती हो, गायत्री और पावन मंत्रों का शक्ति अनुसार जाप करे—इस प्रकार श्रद्धा से करे। प्रकट करने से, पश्चात्ताप से, तप से, वेदाध्ययन से तथा आपत्काल में दान से पाप से छूटता है। जैसे-जैसे मनुष्य अधर्म करके स्वयं कहता है वैसे-वैसे साँप की तरह पाप से छूटता है। जैसे-जैसे उसका मन पाप कर्म की निन्द्रा करता है, वैसे-वैसे उसका शरीर उस पाप से छूटता है। पाप करके पश्चात्ताप करने और "फिर ऐसा नहीं करूँगा"—ऐसे दृढ़ संकल्प से वह पवित्र होता है। इस प्रकार परलोक में कर्म के फल का परिणाम मन से सोचकर मन, वाणी और शरीर से सदा शुभ कर्म करे। भूल से व जान कर भी निन्दित कर्म कर उससे छूटना चाहता हुआ दोबारा न करे। जिस कर्म के करने पर मन हल्का न रहे, मन पर बोझ रहे—उसमें उतना तप करे जितना सन्तोष देने वाला हो।

तप का महत्त्व

ऋषि बतलाते हैं कि सारा सुख आदि तप, मध्य तप और अन्त तप में है। ब्राह्मण का तप ज्ञान, क्षत्रिय का तप रक्षा, वैश्य का तप व्यवहार और शूद्र का तप सेवा है। ऋषि केवल तप से ही त्रिलोकी को देखते हैं। औषध, आरोग्य, विद्या अनेक प्रकार के दैवीय गुण तप से ही प्राप्त होते हैं। जिससे पार होना कठिन है, जिसे करना कठिन है, वह सब तप से सिद्ध होता है। तप की शक्ति को कोई लाँघ नहीं सकता। महापातकी और दूसरे अकार्य करने वाले तप द्वारा ही पाप से छूट जाते हैं। जो कुछ पाप, मन, वाणी व शरीर से मनुष्य करता है वह सारे पाप तप से ही जल्दी जल

जाते हैं। तप से ही शुद्ध हुए ब्राह्मण के यज्ञ को देव स्वीकार करते हैं और उसकी कामनाएँ पूरी करने हैं। तप से ही प्रजापति प्रभु ने इस शास्त्र को (वेद को) रचा, तप से ही ऋषि वेदों को प्राप्त हुए। देव इस सारे जगत् की तप से पवित्र उत्पत्ति देख तप का माहात्म्य कहते हैं। प्रतिदिन यथाशक्ति वेदाभ्यास, महायज्ञों का करना, क्षमा करना यह कर्म महापातकों से उत्पन्न पापों को शीघ्र नष्ट कर देते हैं। जैसे अग्नि लकड़ी को अपने तेज से शीघ्र दग्ध कर देती है, वैसे ही वेद वेत्ता ज्ञान की अग्नि से पापों को दग्ध करता है।

'ओ३म्' ही वेद का आधार

जैसे यज्ञों का राजा अश्वमेध सारे पापों को दूर करने वाला है, वैसे अघमर्षण सूक्त सारे पापों को दूर करने वाला है। सब वेदों के आदि में होने वाला तीन अक्षरों वाला ब्रह्म (ओ३म्) है, जिस पर वेद का आधार है, यह एक गुह्य वेद है, जो इसे जानता है वही वेदवित् है।

६. मोक्ष प्राप्ति के साधन

मनु के आश्रम में समवेत महर्षिगण चारों वर्णों और आश्रमों का सम्पूर्ण धर्म सुन कर बोले—"भगवन्! अब आप हमें मृत्यु के पश्चात् कर्म फल सिद्धि का रूप बताएँ।" मनु पुत्र भृगु ने, मनु महाराज की आज्ञानुसार इस विषय की निम्न रूप से व्याख्या की—

मन, वाणी और शरीर से दुष्ट कर्म

शुभ-अशुभ कर्म, मन वाणी और शरीर से उत्पन्न होता है और इसी से मनुष्यों को उत्तम, मध्यम और अधर्म योनियाँ प्राप्त होती हैं।

मानस कर्म तीन प्रकार के हैं—दूसरे के धन के हरण का चिन्तन, अनिष्ट चिंतन, यह मिथ्या विश्वास कि परलोक कुछ नहीं है। वाणी के पाप चार प्रकार के हैं—कठोर बोलना, मिथ्या बोलना, चुगली करना और निष्प्रयोजन बोलना। शरीर के पाप तीन प्रकार के हैं—विना आज्ञा दूसरे का धन हरण, हिंसा और पर-स्त्री गमन। मन से किए शुभ-अशुभ कर्म का फल मन से, वाणी से किए का वाणी से और शरीर से किए का शरीर से फल मिलता है। शरीर से किए कर्म दोषों से मनुष्य स्थावर योनि (वृक्षादि), वाणी से किए कर्मों से पशु-पक्षी योनि और मन से किए पापों से नीच योनि को प्राप्त होता है।

वाणी का दण्ड, मन का दण्ड, शरीर का दण्ड—जिसकी बुद्धि में यह तीन दण्ड स्थित हैं—वह त्रिदण्डी कहलाता है।

आत्मा और परमात्मा

मनुष्य इन तीन दण्डों को सब जीवों के विषय में लगाकर काम, क्रोध को रोक कर सिद्धि प्राप्त करता है। इस शरीर का जो प्रवर्त्तक है उसे क्षेत्रज्ञ कहते हैं, और जो कर्म करता है उसे बुद्धिमान् भूतात्मा (पंचभूत का बना शरीर) कहते हैं। एक और अन्तरात्मा जीव नाम का है जो सब देहधारियों का स्वाभाविक साथी है जिससे जन्मों में सुख-दुख का अनुभव होता है। यह दोनों महान् और क्षेत्रज्ञ पंचभूतों के साथ मिले हुए ऊँच-नीच सब प्रकार के प्राणियों में स्थित में उस परमात्मा के आश्रय रहते हैं। उस परमात्मा के नियमों के अनुसार असंख्य प्राणी हैं जो निरन्तर चेष्टा कर रहे हैं। मरने के पीछे पापियों के लिए नरक की यातना भोगने के लिए पंचमहा-आभूतों की पंचतन्मात्रा से एक अन्य दढ़ शरीर उत्पन्न होता है। वह विषयासक्ति से उत्पन्न हुए दुःख फल वाले पापों को भोग कर उसके बाद पाप से छूटा हुआ फिर उन दोनों बड़े पराक्रम वाले—महान् और परमात्मा को, प्राप्त होता है। पुण्य और पाप दोनों से युक्त यह जीव इस लोक और परलोक में सुख-दुःख प्राप्त करता है। यदि वह धर्म अधिक और पाप थोड़ा करता है, तब वह स्वर्ग में सुख भोगता है। यदि अधर्म अधिक धर्म थोड़ा करता है, तब यम की यातनाओं को प्राप्त होता है। यह यातनाएँ भोग कर पाप से दूर हुआ, फिर उन्हीं पंचतत्त्वों को प्राप्त होता है। इस जीव को धर्म और अधर्म से प्राप्त इन गतियों को अपने चित्त में देख मन को सदा धर्म में लगाए। सत्त्व, रज, तम—यह तीन आत्मा के गुण जाने जिनसे वह सारे भावों में पूर्णतः व्याप्त हो स्थित है।

सत्त्व, रज और तम—तीन गुण

सत्त्व का लक्षण ज्ञान है, तम का आज्ञा और रज का राग द्वेष। जब मनुष्य अपने अन्दर सुख, गहरी शान्ति, शुद्ध प्रकाश का कुछ अनुभव करे, उसे सत्त्व स्थिति जाने। जब दुःख से युक्त और आत्मा में सन्तोष का अनुभव न हो उसे रज की स्थिति जाने। इसे रोकना कठिन और देहधारी सदा विषय की ओर खिंचता है। जो संवेदन (अनुभव) भूल युक्त, अस्फुट, तर्क से निश्चित न हो, बाह्य और अभ्यन्तर इन्द्रियों से निश्चित न हो, उसे तम की स्थिति जाने।

वेद का अभ्यास, तप, ज्ञान, शौच, इन्द्रिय-संयम धर्म का अनुष्ठान, आत्म विचार—यह सत्त्व गुण के चिह्न हैं। कामना से कर्मों में रुचि, धीरज न होना, निषिद्ध कर्मों को स्वीकारना, लगातार विषयों की सेवा—यह रजोगुण के चिह्न हैं। लोभ, निद्रा, कायरता, क्रूरता, नास्तिकता, आचार त्याग और प्रमाद—यह तमोगुण के लक्षण हैं।

तीनों गुणों की पहचान

जिस कर्म को करने के पीछे, करते हुए व करने के समय लज्जा आती है

वह तमोगुण का स्वरूप है। जिस कर्म से इस लोक में बड़ी ख्याति चाहता है, और असिद्धि में शोक नहीं करता है, वह रजोगुण है। जब किसी विषय को पूरे रूप से जानना चाहता है, जिसका आचरण करता हुआ लज्जा का अनुभव नहीं करता, जिससे आत्मा प्रसन्न हो, वह सत्त्व का लक्षण है। तम का लक्षण काम, रज का लक्षण अर्थ और सत्त्व का लक्षण धर्म है। इनमें से अगला-अगला श्रेष्ठ है।

तीनों गुणों से विभिन्न योनियाँ

इनसे प्राप्त विभिन्न योनियाँ इस प्रकार हैं—वृक्ष-पौधे, भूमि-कीट, मछली, कछुआ, रेंगने वाले साँप इत्यादि, पशु और मृग—यह अधम तमोगुणी हैं। हाथी, घोड़ा, शूद्र, निन्दित म्लेच्छ, ,सिंह, बाघ, सूअर—यह मध्यम तमोगुणी हैं। चारण, सुवर्ण (पक्षिराग), दम्भी पुरुष, राक्षस, पिशाच—यह उत्तम तमोगुणी हैं।

झल्ल, मल्ल, नट और खोटी जीविका के पुरुष, जूआ और मद्यपान के व्यसनी —यह अधम रजोगुणी हैं। राजा, क्षत्रिय, राजाओं के पुरोहित और वाद-विवाद के प्यारे—यह मध्य रजोगुणी हैं। गन्धर्व, गुह्यक, यक्ष (धन के रखवाले) और जो देवताओं के अनुचर हैं तथा सारी अप्सराएँ— यह उत्तम रजोगुणी हैं।

तपस्वी, यति, ब्राह्मण, विमानों पर विचरने वाले, नक्षत्र और दैत्य —यह अधम सत्त्वगुणी हैं। यज्ञ करने वाले, ऋषि, देवता, वेद, ज्योति, वत्सर, पितर और साध्य—यह दूसरी सत्त्वगुणी गति है। ब्रह्मा, विश्व के रचने वाले, धर्म, महान्, अव्यक्त—इसे बुद्धिमान् उत्तम सत्त्वगुणी गति कहते हैं। यह तीन प्रकार के कर्म— मानसिक, वाचिक, कायिक की सब जीवों से सम्बन्ध रखने वाली तीन-तीन प्रकार की गति का विवरण है।

किस पाप से कौन योनि प्राप्त होती है ?

इन्द्रियों में लगाव से, धर्म पर न चलने से, मूर्ख अधम पुरुष पाप योनियों को प्राप्त होते हैं। महापातकी पुरुष बहुत वर्ष समूह, घोर नरकों में पड़कर उनके क्षय से इन जन्मों को प्राप्त होते हैं। ब्रह्महत्या करने वाला सूअर, कुत्ता, गधा, ऊँट, गौ, बकरी, मृग, पक्षी, चण्डाल, और पुक्कस की योनि को प्राप्त होता है। सुरा पीने वाला ब्राह्मण कृमि, कीट, पतंग, मैला खाने वाले पक्षी और हिंस्र जीवों की योनि को प्राप्त होता है। सोना चुराने वाला ब्राह्मण, मकड़ी, साँप, गिरगिट, जलचर तिर्यक् योनियाँ (मगरमच्छ आदि), हिंस्र (राक्षस) और पिशाचों के जन्म को हजार बार प्राप्त होता है। गुरु स्त्री गामी पुरुष घास, झाड़ी, वेल, कच्चा माँस खाने वाले गिद्ध आदि, दाढ़ों वाले और क्रूर कर्म करने वालों की योनि को सैंकड़ों बार प्राप्त होता है। हिंसक-जन कच्चा माँस खाने वाले बनते हैं, अभक्ष्य के खाने वाले कृमि, चोर आपस में एक-दूसरे को खाने वाले जन्तु बनते हैं, अन्त्यज स्त्रियों के सेवन वाले प्रेत बनते हैं। जितना समय पतितों के साथ संयोग से पतित होता है उतना समय पतितों के साथ संयोग प्राप्त कर, दूसरे की स्त्री से संभोग करके तथा ब्राह्मण का धन चुराकर ब्रह्म राक्षस होता है।

लोप से मणि-मोती-गुलियाँ (प्रबाल) और अनेक प्रकार के रत्न चुराकर मनुष्य हेमकार (स्वर्णकार व पक्षी विशेष) में जन्म लेता है। अनाज को चुराकर चूहा, काँस को चुरा कर हँस, जल को कुक्कड़, शहद को डाँस, दूध को कौआ, रस को कुत्ता और घी चुरा कर नेवला होता है। माँस को चुराकर गिद्ध, चर्बी को चुराकर मद्‌गु, तेल को चुराकर तेल पायी पक्षी, लवण को चुराकर झींगर, दही को चुराकर बलाका पक्षी होता है। रेशमी कपड़ा चुराकर तीतर, अलसी चुराकर मेंढक, कपास का कपड़ा चुराकर क्रौंच, गौ को चुराकर गोह, गुड़ को चुराकर चमगादड़ बनता है। उत्तम गंधों को चुराकर छुछुन्दर, पत्तों के शाक को चुराकर मोर, सब प्रकार का पका अन्न चुराकर सेह, और कच्चे अन्न को चुराकर शल्यक होता है। अग्नि को चुराकर बगुला, घर का सामान चुराकर गृहकारी, लाल वस्त्र चुराकर चकोर होता है। मृग और हाथी को चुराकर भेड़िया, घोड़े को चुराकर बाघ, फल-मूल को चुराकर बन्दर, स्त्री को चुराकर रीछ, पानी को चुराकर पपीहा, यान को चुराकर ऊँट और पशुओं को चुराकर बकरा होता है। कोई भी वस्तु चुराकर मनुष्य तिर्यक् योनि को प्राप्त होता है और होम से पहले हवि को खाकर भी इसी योनि को प्राप्त होता है। यह निषिद्ध के अनुष्ठान का फल कहा है।

विहित कर्म न करने का फल

विहित कर्म न करने का फल अब कहते हैं। अपने धर्म से च्युत ब्राह्मण वमन खाने वाला प्रेत होता है क्षत्रिय अमेध्य और मुर्दों के खाने वाला कटपूतन होता है। वैश्य अपने कर्म से च्युत हो पीव खाने वाला प्रेत होता है और शूद्र चैलाशक होता है। विषयों का लालची ज्यों-ज्यों विषयों का सेवन करते हैं, वैसे-वैसे उनमें उसकी कुशलता होती है। इन कर्मों के अभ्यास से भिन्न-भिन्न योनियों में दु:खों को प्राप्त होते हैं। तामिस्र आदि घोर नरकों में और बाँधने छेदने वाले असिपत्रवन आदि नरकों को प्राप्त होते हैं। अनेक प्रकार से पीड़ा जाना, कौए-उल्लुओं से खाया जाना, अत्यन्त तपी बालू के सन्ताप को और दारुण कुम्भीपाकों को प्राप्त होते हैं। अधिक दु:ख वाली तिर्यक् योनियों को नित्य पाते हैं, सर्दी-गर्मी की चोटों और अनेक प्रकार के भयों को प्राप्त होते हैं। बार-बार गर्भ स्थान में वास, दुखप्रद जन्म, काठ की बेड़ियों और लोगों के दासत्व को प्राप्त होते हैं। बन्धुओं और प्यारों से वियोग, दुर्जनों के साथ वास, धन कमाने का परिश्रम, धन का नाश, कष्ट से मित्र प्राप्ति, बिना कारण शत्रुओं का प्रकट होना—इन सारे दु:खों को प्राप्त होते हैं। न हटाई जाने वाली वृद्धावस्था, रोगों से पीड़ा, भाँति-भाँति के क्लेश और मृत्यु को प्राप्त होते हैं। सात्विक, राजस, तामस—जिस-जिस भाव से जिस-जिस कर्म का सेवन करता है, वैसे-वैसे शरीर से कर्म फल भोगता है।

मोक्षदायक कर्म—आत्मज्ञान सर्वोत्तम

मोक्षदायक कर्म अब कहते हैं। वेद का अभ्यास, तप, ज्ञान, इन्द्रिय संयम,

अहिंसक और गुरु सेवा— यह उत्तम मोक्ष साधन हैं। इन सब में से कोई भी शुभ कर्म करे, बहुत ही कल्याणकारी होता है। इन सब में से आत्म-ज्ञान मुख्य माना गया है, यह सब विद्याओं में उत्तम है। इसीसे अमृत प्राप्त होता है। यह छः कर्म इहलोक और परलोक के लिए कल्याणकारी हैं। वैदिक कर्म दो प्रकार के हैं, प्रवृत्ति रूप और निवृत्ति रूप। प्रवृत्ति रूप सुख-स्वर्ग का साधन और निवृत्ति रूप मोक्ष का साधन है।

इहलोक व परलोक की कामना के लिए किया कर्म प्रवृत्ति कर्म और ज्ञान-पूर्वक निष्काम कर्म निवृत्ति कर्म कहा गया है। प्रवृत्ति कर्म से देवताओं की समता को और निवृत्ति कर्म से पंचभूतों को लाँघ कर मोक्ष पद प्राप्त करता है। सब भूतों में आत्मा को और आत्मा में सब भूतों को देखता हुआ स्वाराज्य (मोक्ष) को प्राप्त होता है। अन्य कर्म त्याग कर द्विजोत्तम आत्म-ज्ञान, शम और वेदाभ्यास में यत्नशील हो। यही जन्म की सफलता है, विशेपतः द्विग के लिए।

वेद की सर्वश्रेष्ठता

वेद मनुष्य, देवता, पितर का सनातन नेत्र है, वेदशास्त्र अशक्य और अप्रमेय (जिसकी कोई सीमा नहीं) है। जो स्मृतियाँ वेद मूलक नहीं और जो कुदर्शन हैं, वे सब निष्फल और अन्धकारपूर्ण हैं। वेद से भिन्न जो शास्त्र हैं, वे उत्पन्न होते, समाप्त होते हैं, वे अब के किसी पुरुष निर्मित होने से निष्फल हैं क्योंकि अनृत है। चारों वर्ण, चारों आश्रम, तीनों लोक, भूत, भविष्य, वर्तमान— सर्व वेद से जाना जाता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध —इन सबकी उत्पत्ति, गुण, कर्म वेद से ही जाने जाते हैं। सनातन वेदशास्त्र सारे भूतों का पालन-पोषण करते हैं, इसलिए मैं इनको उत्तम मानता हूँ जोकि इस मनुष्य के इहलोक-परलोक के साधन हैं। सेनापति, राजा, दंडनेता, और सब लोकों का अधिपति— वेदशास्त्र का ज्ञाता ही हो सकता है। जैसे प्रचंड अग्नि गीले वृक्षों को जला देती है, ऐसे ही वेदज्ञ अपने कर्म जन्य दोषों को ज्ञानाग्नि से जला देता है। वेद शास्त्र का ज्ञाता जिस किसी आश्रम में रहता हुआ, और पृथ्वी पर रहता हुआ, सदा मुक्त होने योग्य होता है। वेद के सर्वथा न जानने वालों से वेद का पाठमात्र करने वाले अच्छे हैं। पाठ करने वालों से धारण करने वाले, धारण करने वालों से ज्ञानी और ज्ञानियों से अनुष्ठानी श्रेष्ठ हैं। तप और विद्या ब्राह्मण के लिए सर्वोत्तम मोक्ष साधन है, तप से पाप दूर होता है और विद्या से मोक्ष लाभ करता है। धर्म से आत्मशुद्धि चाहने वाले को प्रत्यक्ष, अनुमान और अनेक प्रकार के शास्त्र (आप्त प्रमाण) इन तीनों को भलीभाँति जानना चाहिए। वेद और धर्मोपदेश को जो वेदशास्त्र के अविरोधी तर्क से जानता है, वह धर्म को जानता है —दूसरा नहीं।

श्रेष्ठ जीवन की मर्यादाएँ

मानवशास्त्र का रहस्य अब कहते हैं। मर्यादा के सम्बन्ध में यदि संशय हो तो जो वहाँ शिष्ट ब्राह्मण कहे, वही मर्यादा जाननी चाहिए। जिन्होंने मर्यादा अनुसार परिबृंहण समेत वेद को पढ़ा है और जो श्रुति को प्रत्यक्ष रूप से जानते हैं—वही शिष्ट

ब्राह्मण जानने चाहिएँ। कम-से-कम दस की परिषद् जो सदाचार में स्थित है, वह जो धर्म नियत करे उससे विचलित न हो। ऋक्, यजु, साम के जानने वाले तीन पुरुष, एक नैय्यायिक, एक मीमाँसक, एक नैरुक्त, एक धर्मशास्त्री, और तीन आश्रम वाले, (ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ) यह दशावरा परिषद् हैं। सब प्रकार के धर्म विषयक संशय मिटाने के लिए ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद प्रत्येक का जानने वाला—यह त्र्यवरा परिषद् कही जाती है। चारों वेदों को जानने वाला एक भी द्विजोत्तम जिस धर्म का निश्चय करे, वही उत्तम धर्म जानना चाहिए, न कि सहस्त्र अविद्वानों का कहा हुआ। व्रत से हीन, वेद के न जानने वाले, तमोगुणी मूर्ख जो कहते हैं, वह सौ गुण पाप बनकर उस तथाकथित धर्म के बतलाने वालों को प्राप्त होता है, उनका नाशक होता है। इस मोक्ष साधन का पालन करता हुआ विप्र परम गति को प्राप्त होता है। इस प्रकार भगवान् देव मनु राजा ने लोक हित की कामना से धर्म का यह सारा गुह्य भेद मुझे बतलाया। एकाग्र मन होकर सम्पूर्ण स्थूल-सूक्ष्म को परमात्मा में देखे क्योंकि सबको परमात्मा में देखता हुआ मन को अधर्म में लगाने से बच जाता है।

सबसे महान् परमात्मा

परमात्मा ही सबसे बड़ा देवता है, सब उसी में स्थित है, वह वही सब देहधारियों के लिए कर्म भोग की रचना करता है। इस वेद मार्ग पर चलने से ही मोक्ष मिलता है। सबके शासन करने वाले, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, ज्योतिर्मय, केवल समाधि ज्ञान से जानने योग्य, उस परम पुरुष को जान। इसे कई अग्नि कहते हैं, दूसरे प्रजापति, कई इन्द्र, दूसरे प्राण, कई सनातन ब्रह्म कहते हैं। वह परमात्मा सब प्राणियों को पंच-भूतों के साथ संयुक्त कर जन्म, वृद्धि और नाश द्वारा सदा चक्रवत् घुमाता है। इस प्रकार जो आत्मा से परमात्मा को सब भूतों में देखता है, वह सबकी समता को प्राप्त हो ब्रह्म को प्राप्त होता है, जो सबसे ऊँचा पद है।

मानवशास्त्र का फल

मनु के पुत्र भृगु से कहे इस मानवशास्त्र को पढ़ता हुआ द्विज सदाचारी होता है और इच्छित गति को प्राप्त होता है।

वाल्मीकि रामायण

१. बालकाण्ड

दुष्टा स्त्री की हत्या में कोई दोष नहीं

ऋषि विश्वामित्र राम को आदेश देते हैं—

(१) हे राम ! तुम इस दुष्टा, अत्यन्त कठोर हृदया और दुष्ट पराक्रम वाली ताटका को मार कर गौ और ब्राह्मण का हित साधन करो। (२) हे नरोत्तम तुम्हें ऐसी स्त्री का वध करने में घृणा नहीं होनी चाहिए क्योंकि चारों वर्णों का हित साधन राजकुमार का कर्त्तव्य होता है। (३) प्रजा की रक्षा के लिए अच्छा या बुरा कर्म, पातक व अपवाद सहित कर्म को भी करना ही चाहिए। (४) दुष्टों का वध राजकार्य में नियुक्त पुरुषों का सनातन धर्म है। हे राम ! यह ताटका अधर्मिणी है। अतः इसे मार डालो। (५) हे नृप ! सुनते हैं कि पूर्वकाल में इन्द्र ने प्रजा को सताने वाली विरोचन की पुत्री मन्थरा का वध किया था। (६) इसी प्रकार हे राम ! विष्णु ने भृगु की पत्नी, शुक्र की माता को जो इन्द्र को मारना चाहती थी—मार डाला था। (७) हे राजपुत्र ! ऐसे ही और भी बहुत से महात्माओं ने अधर्म युक्त स्त्रियों को मारा है। तुम भी मेरी आज्ञा से घृणा छोड़कर इसे मार डालो। [१५/१७-२३]

(१) विश्वामित्र के उत्साहवर्धक वचनों को सुन राम ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया—(२) आपके कथनानुसार ताटका को मारकर मैं गौ और ब्राह्मण का हित साधन करने तथा इस देश के निवासियों को सुखी करने के लिए तैयार हूँ। (३) स्त्री होने के नाते मैं इसे मारना नहीं चाहता परन्तु मैं इसके हाथ-पैर तोड़कर इसे दुष्टकर्म करने योग्य न रहने दूंगा। (४) विश्वामित्र ने राम से कहा—इस दुष्टा और पापिनी पर अधिक दया दिखाने की आवश्यकता नहीं है। [१६ / १, २, ८, १०]

२. अयोध्याकाण्ड

श्रीराम में राजा होने योग्य गुण

अयोध्या की प्रतिनिधि सभा में सदस्यों का राजा दशरथ से अनुरोध—

(१) हे दशरथ! सत्य पराक्रमी श्रीराम दिव्य गुणों से युक्त इन्द्र के समान हैं, अतः इक्ष्वाकु वंशी राजाओं में वे सबसे श्रेष्ठ हैं। (२) सत्यपारायण श्रीराम लोक में वस्तुतः श्रेष्ठ पुरुष हैं। उन्हीं से धर्म और अर्थ को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है। (३) प्रजा को सुख देने में श्रीराम चन्द्रमा के तुल्य, क्षमा करने में पृथ्वी के समान, बुद्धि में वृहस्पति के तुल्य और पराक्रम में साक्षात् इन्द्र के समान हैं। (४) वे धर्मज्ञ, सत्यवादी, शील युक्त, ईर्ष्या से रहित, शान्त, दुखियों को सान्त्वना देने वाले, मधुर भाषी कृतज्ञ और जितेन्द्रिय हैं। (५) मनुष्यों पर कोई आपत्ति आने पर वे स्वयं दुःखी होते हैं और उत्सव के समय पिता की भाँति प्रसन्न होते हैं। (६) श्रीराम सदा सत्य बोलने वाले, महा धनुर्धर, वृद्धों की सेवा करने वाले, जितेन्द्रिय, हँसकर बोलने वाले और सब प्रकार से धर्म का सेवन करने वाले हैं। (७) उनका क्रोध और प्रसन्नता कभी निरर्थक नहीं होती। वह मारने योग्य को मारते ही हैं (चाहे वह आत्मीय जन ही क्यों न हो!) और अवध्यों पर कभी क्रोध नहीं करते। (८) श्रीराम यम-नियम आदि पालन में कष्ट सहिष्णु हैं। प्रजाजनों के प्रीति पात्र हैं, स्वजनों में प्रीति उत्पन्न कराने वाले हैं। इन गुणों से युक्त श्रीराम रश्मियों से युक्त सूर्य की भाँति देदीप्यमान हैं। (९) इन सब गुणों से युक्त सत्य पराक्रमी श्रीराम को लोकपालों की भाँति पृथ्वी अपना राजा बनाना चाहती है। (१०) हम लोग आपके पुत्र श्रीराम को जो नीलकमल के समान श्याम हैं और शत्रुनाशक हैं, युवराज देखना चाहते हैं। [२/१९-२८]

दशरथ का राम को उपदेश

युवराज पद पर आसीन होने से पहले दशरथ श्रीराम को उपदेश देते हैं—

(१) हे राम! यद्यपि तुम स्वभाव से ही विनम्र एवं गुण सम्पन्न हो, तथापि स्नेह वश मैं तुम्हारे हित की बात कहता हूँ। (२) तुम्हें योग्य है कि और अधिक विनय को धारण करके सदा जितेन्द्रिय बनो और काम तथा क्रोध से उत्पन्न व्यसनों को छोड़ दो। (३) परोक्ष-दूतादि द्वारा और प्रत्यक्ष—स्वयं जांच पड़ताल की वृत्ति को धारण कर अमात्य आदि सबको सदा प्रसन्न रखो। (४) अन्न के भण्डार और अस्त्र-शस्त्रों के भण्डार को सदा भरपूर रखो। देखो! जो राजा अपनी प्रजा को प्रसन्न रखकर राज्य करता है, उससे उसके मित्र ऐसे ही प्रसन्न रहते हैं, जैसे देवता अमृतपान से प्रसन्न होते हैं। अतः हे वत्स! तुम अपने आपको संयम में रखकर जैसा मैंने कहा वैसा ही आचरण करो। [३/२३-२७]

राम की पितृ-भक्ति

कैकेयी ने जब राम को जानबूझ कर मिथ्या बोलते यह कहा कि पिता दशरथ

तुमको भय के कारण वन जाने और भरत को राजगद्दी पर बैठने की आज्ञा नहीं दे रहे, तब राम ने कैकेयी से कहा—

(१) हे देवि ! मैं धन, राज्य ऐश्वर्यादि का आकांक्षी होकर संसार में नहीं रहना चाहता। मुझे तो आप केवल ऋषियों के समान धर्मनिष्ठ समझें। (२) यदि मैं अपने प्राण देकर भी पूज्य पिता का अभीष्ट कार्य कर सकूँ तो निःसंकोच करूँगा, वन जाने की तो भला बात ही क्या ? (३) पिता की सेवा और उनकी आज्ञापालन करने से अधिक संसार में कोई अधिक धर्माचरण है ही नहीं। (४) पिता के न कहने पर भी मैं केवल आपके ही आदेश से चौदह वर्ष तक निर्जन वन में वास करूँगा। (५) हे कैकेयी ! मेरे लिए आप पिता से अधिक पूज्य हैं पर आप मेरे स्वभाव—माता-पिता की आज्ञा का पालन—को नहीं जान पायीं। यदि जानतीं तो ऐसी तुच्छ बात पिता से न कहतीं। [१६/१३-१७]

राज्याभिषेक न होने पर भी राम में कोई परिवर्तन नहीं

(१) राज्याभिषेक न होने के कारण सहज क्रान्ति युक्त लोकप्रिय, राम की मुख द्युति में कोई अन्तर नहीं पड़ा, जिस प्रकार कृष्ण पक्ष में चन्द्रमा के क्षीण होने पर भी उसकी शीतल किरणों में कोई परिवर्तन नहीं आता। (२) यद्यपि राम अखिल पृथ्वी का राज्य छोड़ वन जा रहे थे तथापि जीवन्युक्त योगीश्वर की भाँति उनके मन में किसी प्रकार का विकार दिखाई नहीं दिया। (३) अभिषेक में सम्मिलित होने के लिए आए प्रजाजनों ने सत्यवादी राम के मुख पर कोई विकार नहीं देखा।

[१६/२४-२६]

राम का लक्ष्मण को समझाना—धर्म सबसे मुख्य

(१) लोक में धर्म ही परम पुरुषार्थ है, धर्म में ही सत्य प्रतिष्ठित है। पिता की आज्ञा भी धर्मानुसार होने से माता की आज्ञा से उत्कृष्ट है। पितृ आज्ञा ही पालनीय है। (२) इसलिए मैं पिता की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता। पिता के आदेश से ही कैकेयी ने मुझे वन जाने को कहा है। (३) हे लक्ष्मण ! क्षात्र धर्म का अनुगमन न करने वाली इस दुष्ट बुद्धि को तू छोड़ दे। धर्म का आश्रय ले उग्रता का नहीं। मेरी बुद्धि का अनुगमन कर। (४) हे माता ! आपको, मुझे, वैदेही, लक्ष्मण और सुमित्रा को पिता की आज्ञा में रहना चाहिए। यही सनातन धर्म है।

[१६/६, १३]

दैव और पुरुषार्थ—राम-लक्ष्मण संवाद

श्रीराम लक्ष्मण से बोले—

(१) अब तुम क्रोध और शोक को त्याग धैर्य धारण करो और मेरे वन गमन रूपी अपमान को भूलकर प्रसन्न हो जाओ। (२) मेरे वनवास और पिता द्वारा प्रदत्त राज्य के छिन जाने में दैव को ही कारण समझो। इसमें किसी का कुछ बस नहीं।

यदि दैव मेरे प्रतिकूल न होता तो मुझे पीड़ा देने के लिए कैकेयी की बुद्धि कभी ऐसी न होती। (३) लक्ष्मण ! दैव से कौन युद्ध कर सकता है क्योंकि दैव का प्रत्यक्ष कर्मों के फल भोग के रूप में ही होता है, अन्य किसी रूप में नहीं। (४) सुख-दुःख, भय-क्रोध, लाभ-हानि और जीवन-मरण तथा अन्य सब कुछ दैव के ही आधीन हैं। (५) कठोर तप करने वाले ऋषि भी दैव के द्वारा प्रेरित हो कठोर तपस्या से अर्जित नियमों को त्यागकर काम-क्रोधादि के कारण ऋषि पद से भ्रष्ट हो जाते हैं। (६) जिस कार्य का कभी विचार भी न किया हो और वह अकस्मात् हो जाए तथा प्रयत्न द्वारा प्रारम्भ किया कार्य अनायास रुक जाए इसी को दैव कहते हैं। (७) हे लक्ष्मण ! मेरे लिए तुम सन्ताप न करो। राज्य और वनवास में कुछ भी अन्तर नहीं। मेरे लिए तो वनवास ही महान् कल्याणकारी है।

लक्ष्मण का उत्तर—(८) धर्म दोष के प्रसंग से आपको यह बड़ा भ्रम उत्पन्न हो गया है। (९) हे क्षत्रिय श्रेष्ठ ! आप सामर्थ्यहीन, अशक्त एवं तुच्छ दैव की प्रशंसा क्यों कर रहे हैं ? (१०) जो पौरुषहीन और कायर पुरुष है, वही भाग्य का अनुवर्तन करता है। वीर और धीर पुरुष दैव का अनुसरण नहीं करते। (११) जो पुरुष अपने पुरुषार्थ से दैव को दबा सकता है, उसका न तो दैव कुछ बिगाड़ सकता है और न वह कभी दुःखी होता है। (१२) आज लोग भाग्य और पुरुषार्थ के पराक्रम को देखें। दैव और पुरुषार्थ में कौन बलवान् है, आज इसका निर्णय हो जाएगा। (१३) जिन लोगों ने दैव के कारण आपके राज्याभिषेक को नष्ट होते देखा है, वे आज मेरे पुरुषार्थ द्वारा भाग्य को भी नष्ट होते देखेंगे।

(१४) तब, राम लक्ष्मण को शान्त कर और उन्हें बार-बार सान्त्वना देकर बोले - हे सौम्य ! मैं माता-पिता की आज्ञा के आधीन हूँ यही सन्मार्ग है। [२०/१-१० और ११-२०]

माता कौसल्या से राम की प्रार्थना

(१) दुःखी माता कौसल्या को राम ने कहा—मातः ! कैकेयी ने महाराज को धोखा दिया है, मैं वन में जा रहा हूँ, और आप भी उन्हें त्याग देंगी। निश्चय ही, तब, महाराज जीवित नहीं रह सकेंगे। (२) पति का परित्याग करना स्त्री के लिए सबसे बड़ी क्रूरता है। ऐसे निन्द्य कर्म की तो आपको कल्पना भी नहीं करनी चाहिए। (३) जब तक दशरथ महाराज जीवित हैं, आप उनकी सेवा करें। यही परम्परागत सनातन धर्म है। (४) हे देवि ! मेरे पिता आपके पति हैं, गुरु हैं और श्रेष्ठ हैं और सबके स्वामी और पूज्य हैं। (५) जब तक स्त्री जीये, उसे उचित है कि वह अपने पति को ही अपना देवता और स्वामी समझे। इस समय आपके और मेरे स्वामी राजा दशरथ ही हैं। (६) जो श्रेष्ठ स्त्री व्रतोपवास तो करती है पर अपने पति की सेवा नहीं करती, वह पाप की भागिनी होती है। (७) पति की सेवा से ही नारी उत्तम सुख प्राप्त करती है। स्त्रियों के लिए पति सेवा ही प्राचीन लोकाचार सिद्ध, वेद और स्मृति अनुकूल

हैं। (८) राम के वचन सुन कौसल्या माता ने राम को वन जाने के लिए आशीर्वाद दिया। [२१/८-१५]

राम की सीता को शिक्षा

(१) तुम भरत के सम्मुख मेरी प्रशंसा कभी न करना क्योंकि ऐश्वर्य सम्पन्न पुरुष दूसरे की स्तुति सहन नहीं कर सकते। (२) मेरे वन चले जाने पर तुम्हें व्रत-उपवास आदि पूर्वक रहना चाहिए, शृंगार आदि नहीं करना चाहिए। (३) प्रातः उठकर यथाविधि सन्ध्या आदि कृत्यों से निवृत्त हो मेरे पिता राजा दशरथ को नित्य नमस्कार करना। (४) मेरी माता कौसल्या वृद्धा हैं और मेरे वन गमन से दुःखी हैं। उनका सम्मान करना तुम अपना कर्त्तव्य समझना। (५) मेरी जो अन्य माताएँ हैं, उनकी भी तुम वन्दना नित्य प्रति करना। (६) भरत और शत्रुघ्न जो मुझे प्राणों से भी प्रिय हैं, तुम अपने भाई और पुत्रवत् समझना। (७) तुम कभी भरत के विरुद्ध आचरण मत करना क्योंकि वह देश के राजा और कुल के स्वामी हैं। (८) अकुटिल भाव से आराधना और प्रयत्न पूर्वक सेवा किए जाने पर राजा लोग प्रसन्न होते हैं, अन्यथा कुपित हो जाते हैं। (९) हे देवि ! तुम्हें अयोध्या में ही रहना है। मेरी तुम्हें यही शिक्षा है। तुम ऐसा आचरण करना जिसे कोई बुरा न माने। [२२/८-१६]

सीता का पतिव्रत धर्म निभाने का आग्रह

(१) हे आर्य पुत्र ! पिता, माता, भ्राता, पुत्र, पुत्रवधू – यह सब अपने अपने पुण्यों का भोग करते हुए अपने-अपने कर्मानुकूल सुख-दुःख प्राप्त करते हैं पर पति के भाग्य को स्त्री ही भोगती है। इसलिए आपके वन गमन के आदेश के अन्तर्गत मुझे भी स्वतः वन जाने की आज्ञा मिल जाती है। (२) हे वीर ! मैं नित्य आपकी सेवा करती और नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई वनों में आपके साथ रहूँगी। (३) फल-मूल खाती हुई ही अपना निर्वाह करूँगी और आपको किसी प्रकार का कष्ट नहीं दूँगी। (४) मैं यम-नियम आदि व्रतों का पालन करूँगी। (५) आपके साथ रहने के सुख के समक्ष मैं स्वर्ग-सुख को भी कुछ नहीं समझती। (६) आपके बिना यदि स्वर्ग में भी मुझे रहना पड़े तो मुझे पसन्द नहीं। (७) आपके चरणों की सेवा करती हुई मैं वहाँ उसी प्रकार सुखपूर्वक वास करूँगी जिस प्रकार अपने पिता के घर रहती थी। [२३/३-१४]

राम की अनुमति

(१) सीता ने कहा—यदि मुझ दुखिया को तुम अपने साथ नहीं ले जाओगे तो मैं विष खाकर, अग्नि में जल कर अथवा पानी में डूब कर अपने प्राण दे दूँगी। (२) चाहे तुम तप करो, वनवास करो या स्वर्ग में रहो—मुझे तो तुम्हारे साथ रहना ही उचित है। मुझे मार्ग चलने में कुछ भी परिश्रम नहीं होगा। (३) हे नाथ ! आपके वन जाने के पश्चात् भी मुझे दुःख से मरना ही है। अतः आप द्वारा परित्यक्त हो इसी समय

मुझे मर जाना अच्छा है।

श्रीराम द्वारा सीता को वन में साथ चलने की स्वीकृति दिए जाने पर उन्होंने कहा—(४) पहले काल के सज्जन जैसा धर्माचरण कर गए हैं, मैं भी उसी का आचरण करूँगा, और तू भी कर। (५) साथ के पाश में बँधा पिता की आज्ञा पालनार्थ ही मैं वन जा रहा हूँ। (६) पिता-माता की आज्ञा मानना ही पुत्र के लिए धर्म है। मैं उनकी आज्ञा का उल्लंघन करना उचित नहीं समझता। (७) माता-पिता-आचार्य की आराधना से तीन लोकों की आराधना होती है। संसार में इससे बढ़कर और कोई पवित्र वस्तु नहीं है। (८) मनुष्य के लिए सत्य, दान, मान और दक्षिणा सहित यज्ञ वैसे हितकारी नहीं है जैसी माता-पिता की सेवा। (९) माता-पिता की सेवा करने वाले मनुष्य के लिए स्वर्ण, धन-धान्य, विद्या, पुत्र और सुख—कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं होती।

[२५/६६-३२]

लक्ष्मण द्वारा सेवा का दृढ़ निश्चय

(१) लक्ष्मण ने कहा—हे राम ! आपके बिना मैं देव लोक में जाना, अमरत्व प्राप्त करना और संसार के ऐश्वर्य आदि कुछ भी नहीं चाहता। (२) लक्ष्मण के दृढ़ निश्चय को देख श्रीराम ने कहा—तुम मेरे स्नेही, धर्म में रत, सदैव सन्मार्ग पर चलने वाले हो। तुम मुझे प्राणों के समान प्रिय हो, मेरे अनुवर्ती, मेरे भाई एवं मित्र भी हो।

श्रीराम के यह कहने पर कि तुम यहीं रहकर वृद्ध पिता और माताओं की सेवा करो, लक्ष्मण ने कहा—भरत यह काम पूर्ण रूप से करेगा और यदि वह नीच पिता और माताओं की सेवा नहीं करेगा तो मैं उसे मार डालूँगा। लक्ष्मण ने कहा—वन में धनुष-वाण, कुदाल और टोकरी लेकर, मार्ग दिखाता हुआ आपके आगे-आगे चलूँगा। आपके लिए प्रतिदिन कन्दमूल और तपस्वियों का भोजन तथा अन्य श्रेष्ठ पदार्थ लाऊँगा।

तब, राम ने प्रसन्न हो लक्ष्मण को साथ चलने की अनुमति दे दी। [२६/४-१९]

वन गमन से पूर्व पिता के दर्शन

वन गमन से पूर्व श्रीराम, सीता और लक्ष्मण सहित, पिता दशरथ का आशीर्वाद प्राप्त करने जब गए, तब राजा अत्यन्त शोक विह्वल और दुःखी थे। उस समय, पिता के अत्यन्त आग्रह पर भी, राम अपने दृढ़ निश्चय से विचलित नहीं हुए। उन्होंने कहा—

(१) हे महाराज ! मैं न राज्य चाहता हूँ, न सुख, न मुझे सीता की इच्छा है और न राजभोगों की। मैं स्वर्ग भी नहीं चाहता। यहाँ तक कि मैं अपना जीवन भी नहीं चाहता। (२) मैं तो केवल आपको सत्यवादी देखना चाहता हूँ, मिथ्यावादी नहीं। आप देवता स्वरूप हैं। यह बात मैं आपके सामने सत्य और धर्म की शपथ खाकर कहना चाहता हूँ। (३) मैं अब एक क्षण भी यहाँ नहीं ठहर सकता। अब आप धैर्य धारण करें, मेरा संकल्प अब बदल नहीं सकता। [२८/३३-३९]

कौसल्या-सीता संवाद

वन गमन के लिए श्रीराम के साथ तैयार सीता को कौसल्या माता ने शिक्षा देते हुए कहा—

(१) जो स्त्रियाँ पति द्वारा सदा सत्कृत और सम्मानित होने पर भी विपत्ति काल में पति का आदर नहीं करतीं, वे स्त्रियाँ कुलटा—असती – कहलाती हैं। (२) ऐसी स्त्रियों का स्वभाव ही ऐसा होता है कि पति की सम्पन्न अवस्था में सुखभोग कर भी पति की विपन्नावस्था में उस पर दोष लगाती और उसे छोड़ भी देती हैं। (३) ऐसी स्त्रियाँ असत्य बोलने वाली और विकृत विचार की होती हैं। पाप संकल्प वाली यह स्त्रियाँ हृदय शून्य और अपने को सदा यौवन-सम्पन्न समझती हुई क्षणमात्र में अपने पति को त्याग देती हैं। (४) प्रशस्त कुल, उपकार, धर्म, विद्या, वस्त्र—आभूषणों का दान, वैवाहिक बँधन—कोई भी ऐसी स्त्रियों के मन को वश में नहीं कर सकता, क्योंकि ये चंचल हृदय वाली होती हैं। (५) सती-साध्वी और पतिव्रता स्त्रियाँ कुलोचित आचरण वाली, सत्य में आस्था शील, वेद के अनुसार आचरण शील और शान्त चित्त होती हैं। ऐसी स्त्रियों के लिए उनका पति ही उनका सर्वस्व होता है।

सीता का उत्तर—(६) हे आर्ये ! आपने मुझे जो उपदेश दिया है, मैं तदनुसार ही आचरण करूँगी। पति के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए—यह मैं जानती हूँ क्योंकि मैं माता-पिता के मुख से यह सब सुन चुकी हूँ। (७) आप असती स्त्रियों के साथ मेरी तुलना न करें। मैं कभी धर्म से विचलित नहीं हो सकती। (८) जैसे बिना तार के वीणा नहीं बजती, बिना पहिए का रथ नहीं चलता, उसी प्रकार बिना पति के स्त्री भी सुख नहीं पाती चाहे वह सौ पुत्रों वाली भी क्यों न हो ? (९) पिता, माता तथा पुत्र—यह सब परिमित सुख के देने वाले हैं परन्तु पति अमित सुख का देने वाला है। ऐसी कौन अभागी स्त्री होगी जो पति का सम्मान नहीं करेगी। (१०) मैंने धर्म मर्मज्ञ श्रेष्ठ लोगों से पतिव्रत धर्म का रहस्य जाना है। पति ही स्त्री का सबसे बड़ा देवता है। मैं पति का अनादर कैसे कर सकती हूँ ? [३२/२१-३२]

सुमित्रा का पुत्र लक्ष्मण को उपदेश

(१) प्रणाम करते हुए लक्ष्मण को उसकी माता सुमित्रा ने रोते हुए कहा—पुत्र ! तू वनवासी राम की सेवा-शुश्रूषा में कभी प्रमाद मत करना। (२) हे लक्ष्मण ! यह विपत्ति में हों या सम्पत्ति में—तुम्हारे आश्रयदाता यही हैं। संसार में सज्जनों का यही धर्म है कि वे अपने बड़ों की आज्ञानुसार चलें। (३) इस रघुकुल का सनातन और उचित सदाचार है—दान देना, व्रतचर्या का पालन, यज्ञ करना और संग्राम में शरीर त्याग। (४) हे पुत्र ! इस वनवास में श्रीराम को तुम अपना पिता दशरथ समझना, सीता को मेरे स्थान अपनी माता समझना, तथा वन को ही अयोध्या समझना। तुम सूख पूर्वक प्रस्थान करो। [३३/४-८]

शोक अत्यन्त नाशक

कौसल्या महाराज दशरथ से कहती हैं—

शोक मनुष्य के धैर्य को नष्ट कर देता है, शोकशास्त्र ज्ञान को नष्ट कर देता है, शोक सर्वनाश कर देता है। शोक से बढ़कर मनुष्य का कोई शत्रु नहीं है। [४७/२०]

कर्म फल आवश्यक

(१) राम के वनवास के लिए जाने के बाद दशरथ कौसल्या से कहते हैं "हे कल्याणि! मनुष्य अच्छा या बुरा जैसा भी कर्म करता है, उसे अपने भले या बुरे कर्म का फल अवश्य मिलता है। (२) जो व्यक्ति ढाक के लाल-लाल पुष्पों को देखकर फल पाने की आशा से आम के पेड़ों को कटवा कर ढाक के वृक्ष को सींचता है, फल लगने के समय आम का फल न पाकर निश्चय उसे पछताना पड़ता है। (३) वही स्वयं किया हुआ मेरा पाप दुःख के रूप में मुझे इस प्रकार प्राप्त हो रहा है जिस प्रकार अज्ञान वश बालक विष खाकर कष्ट सहता है। [४८/३-७]

राजा रहित राष्ट्र की दुर्दशा

महाराज दशरथ की मृत्यु पर विद्वान् मंत्रियों ने राजपुरोहित प्रधानमंत्री वशिष्ट से कहा—

(१) सम्राट् हीन देश में बीजली की चमक सहित महागर्जन करने वाला विद्युन्माली नाम का मेघ अपने दिव्य जल से पृथ्वी को नहीं सींचता। (२) अराजक राष्ट्र में कृषक बीज नहीं बोते, पुत्र पिता के और स्त्री अपने पति के आधीन नहीं रहती। (३) अराजक देश में धन नहीं रहने पाता—चोर डाकू, लूट लेते हैं—स्त्रियाँ व्यभिचारिणी हो जाती हैं। सब ओर भय और आतंक का साम्राज्य होता है। तब सत्य का व्यवहार कैसे हो सकता है? (४) अराजक देश में लोग अपने कर्मों के लिए सभा नहीं करते, रम्य उद्यान नहीं लगाते, यज्ञशाला आदि नहीं बनवाते। (५) अराजक देश में शान्त, दान्त, व्रती और यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण महायज्ञ नहीं करते-करवाते। (६) अराजक राज्य में विवाद उपस्थित होने पर मुकदमों का निर्णय नहीं होता और कथावाचक कथा नहीं करते। (७) अराजक राष्ट्र में अलंकृत होकर कुमारियाँ सायंकाल वाटिका में नहीं जातीं। (८) अराजक राष्ट्र में विलासी लोग शीघ्रगामी वाहनों पर चढ़ वन विहार के लिए नहीं जाते। (९) अराजक राष्ट्र में कृषि और गोरक्षक धनवान् सुरक्षित नहीं रहते। अपने घर के द्वार खोलकर सुख से सो नहीं सकते। (१०) अराजक राष्ट्र में साठ वर्ष की आयु वाले, लम्बे दाँतों वाले हाथी घंटों को बजाते हुए राजमार्ग पर चल नहीं सकते। कहीं गुण्डे उनके दाँत न काट लें इस भय से। (११) अराजक देश में वाण विद्या का अभ्यास करने वाले धनुर्धरों के हस्ततल का शब्द भी सुनाई नहीं देता। (१२) अराजक देश में व्यापार करने वाले बहुत-सा माल लेकर निर्भय हो यात्रा नहीं कर सकते। (१३) अराजक देश में मुनि सन्ध्याकाल में यथेच्छ स्थान पर बैठे ध्यान नहीं कर सकता। (१४) जैसे बिना जल की

नदी, बिना घास का वन और बिना गोपाल के गौएँ होती हैं, ऐसे ही राजा के बिना राष्ट्र हो जाता है। (१५) अराजक देश में कोई किसी का नहीं होता। जैसे बड़ी मछली छोटी को निगल जाती है, ऐसे ही लोग एक-दूसरे को मार खाते हैं। (१६) वर्णाश्रम धर्म को तिलाँजलि देने वाले नास्तिक लोग अराजक देश में राजदंड से निर्भय हो फलने-फूलने लगते हैं। (१७) शरीर रक्षा के लिए नेत्र के समान राजा सत्य और धर्म की रक्षा के लिए सदा तत्पर रहता है। (१८) राजा ही धर्म का, कुलाचार का, प्रवर्तक और जनता के लिए माता-पिता सदृश पूर्ण हितकारी होता है। (१९) अपने कर्त्तव्य का भली-भाँति पालन करने वाला चरित्रवान् राजा यम, कुवेर, इन्द्र और वरुण से भी वड़ा होता है। (२०) शिष्ट-अशिष्ट में भेद करनेवाला चरित्र वल से सम्पूर्ण राष्ट्र को आलोकित करने वाला राजा न हो तो सर्वत्र अन्धकार ही छाया रहे। [५१/७-३०]

भरत की शपथें

दशरथ की मृत्यु के बाद भरत के ननिहाल से वापस अयोध्या आने पर और राम-सीता-लक्ष्मण के बनवास का सारा वृत्तान्त सुनने पर जब वह कौसल्या माता से मिलने गया और उसने गहरा उपालम्भ देते हुये भरत को ही राम के वनवास का कारण बताया, तब भरत ने अपने को सर्वथा निर्दोष और अनभिज्ञ बताते हुए निम्न शपथें खायीं जो अत्यन्त शिक्षाप्रद हैं—

(१) आर्य राम के वन गमन में जिसने परामर्श दिया हो, उस अभागे की बुद्धि कभी शास्त्र अनुगामी न हो। (२) जिसकी अनुमति से राम वन गये हों, वह पापात्मा नीच जाति का सेवक हो। उसे वह पाप लगे जो सूर्य की ओर मुख करके मल-मूत्र त्याग करता है और सोती हुई गौ को लात मारने से लगता है। (३) नौकर से बहुत काम कराकर मज़दूरी न देने वाले स्वामी को जो पाप लगता है, वह उसे लगे जिसकी अनुमति से राम वन गये हों। (४) पुत्रवत् प्रजा का पालन करने वाले राजा का विद्रोह करने वाले का वह पाप उसे लगे जिसकी अनुमति से राम वन गये हों। (५) यज्ञ में ऋत्विजों को दक्षिणा देने की प्रतिज्ञा कर जो दक्षिणा न दे, उसे जो पाप लगता है वह राम को वनवास की अनुमति देने वाले को लगे। (६) हाथी, घोड़े, रथ आदि और शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित होकर भी जो युद्ध से पराङ्मुख हो, उसे जो पाप लगता है, वह राम को वनवास की अनुमति देने वाले को लगे। (७) जिसके परामर्श से राम वन गये हों, वह दुष्टात्मा बुद्धिमान् गुरु द्वारा दिये गये परलोक साधक सूक्ष्म तत्त्व के शास्त्र को भूल जाए। (८) बिना पंचमहायज्ञ किये जो तिल, चावल, खीर खाता और बकरी का दूध पीता है और खड़े होकर गुरु को प्रणाम न करने वाले को जो पाप लगता है, वह उसे लगे जिसकी अनुमति से राम वन गये हों। (९) गौ को पैर से छूने, गुरुजन के निन्दक और मित्रद्रोही को जो पाप लगता है, वह उसे लगे जिसकी अनुमति से राम वन गये हों। (१०) विश्वासपूर्वक कही गई निन्दाजनक बातों को जो प्रकाशित कर देता है, उस विश्वासघातक को जो पाप लगता है, वह

उसे लगे जिसके परामर्श से राम वन गए हों। (११) वह उपकार का वदला न देने वाला, कृतघ्न, सज्जनों से बहिष्कृत, निर्लज्ज और लोक में निन्दित हो जिसकी अनुमति से राम वन गए हों। (१२) सामने बैठे नौकर-चाकर स्त्री-पुत्र को न देकर जो अकेला खाता है उसे जो पाप लगता है, वह उसे लगे जिसकी अनुमति से राम वन गए हों। (१३) वह अनुकूल पत्नी को बिना पाए, पुत्रहीन होकर मर जाए और यज्ञादि क्रियाओं के बिना ही मर जाए जिमकी अनुमति से राम वन गए हों। (१४) जिसकी अनुमति से राम वन गए हों, वह अपनी पत्नी के गर्भ से उत्पन्न अपनी सन्तान को देखे बिना ही दुखी हो मर जाए। (१५) राजा, स्त्री, वालक और वृद्ध को वध करने और निरपराध, स्वामीभक्त भृत्य को त्यागने से जो पाप होता है, वह उसे लगे जिसकी अनुमति से राम वन गये हों। (१६) लाख, माँस, शराब, मछली पकड़ने का काँटा और विष का विक्रय कर अपने आश्रितों के पालन करने वाले को जो पाप लगता है, वह उसे लगे जिसकी अनुमति से राम वन गए हों। (१७) भयंकर सैन्यदल को देख युद्ध से पराङ्मुख हो भागने वाले को जो पाप लगता है, वह उसे लगे जिसकी अनुमति से राम वन गए हों। (१८) जिसके परामर्श से राम वन गए हों उसे वह पाप लगे जो उन्मत्त की भाँति चिथड़े लपेटे, खोपड़ी हाथ में लिए द्वार-द्वार पर भीख माँगता हुआ पृथ्वी पर भ्रमण करने वाले को लगता है। (१९) जिसकी अनुमति से राम वन गए हों, वह मनुष्य सदा मद्य पीने, पर-स्त्री गमन और जूआ खेलने में अत्यन्त आसक्त हो और सदा काम-क्रोध के अभिभूत हो। (२०) जिसके परामर्श से राम वन गए हों, उसका मन धर्म में न लगे, वह अधर्म का सेवन करे और कुपात्रों को वहुत सा दान दे। (२१) जिसके परामर्श से राम वन गए हों, उसकी विधिपूर्वक कमायी हुई धन-सम्पत्ति को दस्यु लोग लूट ले जाएँ। (२२) सायं और प्रातः—दोनों सन्धि वेला में सोने वाले को जो पाप लगता है, वही पाप उसे लगे जिसकी अनुमति से राम वन गए हों। (२३) आग लगाने वाले, गुरु-पत्नी गामी और मित्रद्रोही को जो पाप लगता है, वही पाप उस नीच को लगे जिसकी सम्मति से राम वन गए हों। (२४) जिसकी अनुमति से राम वन गए हों, उसे वही पाप लगे जो माता-पिता आदि की सेवा न करने वाले को लगता है। (२५) वह सज्जनों के समाज से, सज्जनों की कीर्ति और सत्कर्मों से एकदम च्युत हो जाए जिसकी अनुमति से राम वन गए हों। (२६) जिसकी अनुमति से दीर्घबाहु और विशाल वक्ष राम वन गए हों, उसे मातृ सेवा से विमुख होने और अधर्म कार्यों में रत होने से जो पाप लगता है, लगे। (२७) जिसकी सम्मति से राम वन गए हों, वह बहुत सन्तान वाला और दरिद्र हो, वह ज्वर रोग से ग्रस्त हो अति क्लेश को प्राप्त करे। (२८) प्रशंसा करने वालों और भिक्षुकों को—जो कुछ प्राप्ति की आशा से उधर दृष्टि किए हुए है, उन्हें निराश करने से जो पाप लगता है वह उसे लगे जिसकी सम्मति से राम वन गए हों। (२९) जिसकी अनुमति से राम वन गए हों, वह कपट-प्रिय, चुगलखोर, वेईमान, अधर्मी तथा सदा राजभय से ग्रस्त रहे। (३०) जिसकी सम्मति से राम वन गये हों, उसे वह पाप लगे जो ऋतु स्नाता, पतिव्रता, ऋतुकाल में पति की कामना करने वाला स्त्री से रति दान

न देने वाले को लगता है। (३१) पाणिगृहीत पत्नी को छोड़ तथा धर्मानुकूल रति-त्याग कर पर-स्त्री सेवन से जो पाप लगता है, वह उसे लगे जिसकी अनुमति से राम वन गए हों। (३२) जिस ब्राह्मण की सन्तानें भूख से विह्वल हो मर जाएँ, उसे जो पाप लगता है, वह उसे लगे जिसकी अनुमति से राम वन गए हों। (३३) पेय जल को दूषित करने वाले और विष देने वाले को जो पाप लगता है, वह उसे लगे जिसकी अनुमति से राम वन गए हों। (३४) ब्राह्मण के सत्कार में विघ्न डालने वाले और छोटे बछड़े वाली गौ का दूध दोहने वाले को जो पाप होता है, वह उसे लगे जिसकी अनुमति से राम वन गए हों। (३५) हाथ में पानी होने पर भी किसी बहाने प्यासे को पानी न देने वाले को जो पाप लगता है, वह उसे लगे जिसकी अनुमति से राम वन गए हों। (३६) दो विद्वानों के मध्य शास्त्रीय चर्चा में मध्यस्थ बन पक्षपात करने से जो पाप लगता है, वह उसे लगे जिसकी अनुमति से राम वन गए हों।
[५७/१७-५४]

तीन द्वन्द्व सब के साथ

राजा दशरथ की अन्त्येष्टि के बाद शोकातुर भरत और शत्रुघ्न को उपदेश देते हुए वसिष्ठ ऋषि ने कहा—

सभी मनुष्यों के साथ तीन द्वन्द्व —भूख-प्यास, दुःख-सुख, जन्म-मरण —सामान्य रूप से लगे हुए हैं। इन्हें दूर करना सम्भव नहीं। अतः तुम्हें इस प्रकार दुःखी नहीं होना चाहिए। [५८/१५]

तीन गुण आवश्यक

भरद्वाज ऋषि के आश्रम में मंत्रिगण और सेना सहित भरत के पहुँचने पर और ऋषि की आशंका का भरत द्वारा निराकरण हो जाने पर भरद्वाज कहते हैं—

हे पुरुषसिंह ! तुम्हारा जन्म प्रसिद्ध रघुकुल में हुआ है। अतः वृद्धों की सेवा, इन्द्रियों का दमन और साधु जनों का अनुयायी होना—यह तीनों गुण तुम में होने ही चाहिएँ। [६४/१५]

राम का मातृ-प्रेम

भरत की सेना को देख और लक्ष्मण के अत्यन्त क्रुद्ध हो युद्ध करने और भरत को मार देने के लिए उद्यत देख श्रीराम कहते हैं—

(१) बन्धु-बान्धवों और इष्ट मित्रों का वध करके जो धन प्राप्त हो, मैं उसे ग्रहण नहीं कर सकता। मैं उसे विष मिश्रित भोजन सदृश त्याज्य समझता हूँ। (२) हे लक्ष्मण ! मैं शपथ पूर्वक कहता हूँ कि धर्म, अर्थ, काम और पृथ्वी को मैं अपने भाइयों के लिए ही चाहता हूँ। (३) हे लक्ष्मण ! मैं अपने हथियारों को स्पर्श कर सत्य कहता हूँ कि मैं राज्य की कामना भी भाइयों के पालन और सुख के लिए ही करता हूँ।

(४) हे सौम्य ! समुद्रों से घिरी इस पृथ्वी का राज्य हस्तगत करना मेरे लिए दुर्लभ नहीं है पर मैं अधर्म से तो इन्द्र पद भी प्राप्त नहीं करना चाहता । [६७/५-८]

राम-भरत संवाद—उत्तम राज्य का स्वरूप

(१) हे तात तुम विद्वान्, रक्षक, नौकर, गुण, पितृ तुल्य वृद्धजन, वैद्य और ब्राह्मण—इनका सत्कार तो करते हो ? (२) तुम वाण और शस्त्र विद्या में निपुण और अर्थशास्त्रज्ञ, धनुर्वेदाचार्य सुधन्वा का आदर तो करते हो ?(३) क्या तुमने अपने समान विश्वसनीय और नीति-शास्त्रज्ञ, लोभ रहित, उत्तम कुल उत्पन्न और संकेत समझने वाले व्यक्तियों को मंत्री बनाया है ? क्योंकि मंत्रणा को धारण करने वाले, नीतिशास्त्र विशारद मंत्रियों द्वारा गुप्त रखी मंत्रणा ही राजाओं के विजय का मूल होती है। (४) तुम निद्रा के वशीभूत तो नहीं होते । यथा समय उठ तो जाते हो । रात्रि के पिछले प्रहर में अर्थ की प्राप्ति के उपायों का चिन्तन तो करते हो ? (५) तुम अकेले तो किसी बात का निर्णय नहीं कर लेते, अथवा तुम बहुत सारे लोगों में बैठ कर तो विचार-विमर्श नहीं करते ? तुम्हारा विचार कार्य रूप में परिणत होने से पूर्व दूसरों को विदित तो नहीं हो जाता ? (६) मंत्रियों के साथ किए गए गुप्त निश्चयों को दूसरे लोग तर्क व युक्ति से जान तो नहीं लेते ? तुम और तुम्हारे मंत्री अन्यों के गुप्त रहस्यों को जान लेते हैं न ! (७) अल्प-प्रयास से सिद्ध होने वाले और महान् फलप्रद कार्य को करने का निश्चय कर तुम उसे शीघ्र आरम्भ कर देते हो न ? उसे पूर्ण करने में विलम्ब तो नहीं करते ? (८) तुम हज़ार मूर्खों की अपेक्षा एक बुद्धिमान् परामर्शदाता को अच्छा समझते हो न ? संकट के समय बुद्धिमान् व्यक्ति महान् कल्याण करता है। (९) तुम उत्तम, मध्यम और साधारण भृत्यों को उनकी योग्यता के अनुसार ही कामों में लगाते हो न ? (१०) क्या तुम धर्म, अर्थ, काम में सुपरीक्षित, कुल परम्परा से प्राप्त, पवित्र और श्रेष्ठ व्यक्तियों को ही मंत्री पद पर नियुक्त करते हो ? (११) तुम्हारे राज्य में उग्र दण्ड से उत्तेजित प्रजा तुम्हारा अथवा तुम्हारे मन्त्रियों का अपमान तो नहीं करती ? (१२) जिस प्रकार स्त्रियाँ पर-स्त्री गामी पति का तिरस्कार करती हैं अथवा जैसे यज्ञ कर्म से हीन व्यक्ति का याजक निरादर करते हैं, उसी प्रकार अधिक कर लेने से प्रजा तुम्हारा अपमान तो नहीं करती ? (१३) उपाय कुशल वैद्य को, कर्त्तव्य पालक भृत्य को और ऐश्वर्य अभिलाषी शूर को जो राजा मार देता है—वह स्वयं मारा जाता है। (१४) क्या तुमने व्यवहार कुशल, शूर, बुद्धिमान्, धीर, पवित्र, कुलीन, स्वामीभक्त और कर्म कुशल व्यक्ति को अपना सेनापति बनाया है ? (१५) तुम्हारी सेना में जो अत्यन्त बलवान्, युद्ध विद्या निपुण, सुपरीक्षित और पराक्रमी सैनिक हैं, तुम उन्हें पुरस्कृत और सम्मानित तो करते हो ? (१६) तुम सैनिकों को उनके कार्यानुरूप भोजन और वेतन उचित परिमाण और उचित काल में यथा समय दे देते हो न ? (१७) भोजन और वेतन ठीक समय पर न मिलने से भृत्य वर्ग क्रुद्ध हो जाता है और स्वामी की निन्दा करता है। यह भारी अनर्थ का कारण होता है। (१८) क्षत्रिय कुल उत्पन्न भृत्य लोग तुम्हारे प्रति अनुराग तो रखते हैं न ? क्या समय आने पर वह तुम्हारे लिए,

अपने प्राण न्यौछावर करने को तैयार रहते हैं ? (१९) अपने राज्य में उत्पन्न दूसरों के अभिप्राय को समझने वाले, उत्तम बुद्धि युक्त, ठीक प्रकार सन्देशवाहक विद्वान् को तुमने अपना दूत बनाया है या नहीं ? (२०) हे भरत ! तुम परस्पर अनभिज्ञ, तीन-तीन गुप्तचरों द्वारा राज्य के पन्द्रह तथा पर-राज्य के अट्ठारह तीर्थ, अर्थात् महत्वपूर्ण और उच्च पदस्थ व्यक्तियों के चरित्र व गुप्त रहस्य जानते हो न ? (२१) पराजित और भगाए गए शत्रुओं के किसी प्रकार पुन: राज्य में लौट आने पर तुम उन्हें दुर्बल समझ उनकी उपेक्षा तो नहीं करते ? (२२) तुम नास्तिक ब्राह्मणों की संगति तो नहीं करते ? अपने को पंडित समझने वाले ये मूर्ख, धर्मानुष्ठान से लोगों का चित्त हटाकर नरक गामी बना देते हैं । (२३) पापी लोगों से रहित, मेरे पूर्वजों द्वारा सुरक्षित और समृद्ध कोसल देश सुखी तो है न ? (२४) कृषि गो-रक्षा आदि में संलग्न समस्त प्रजाजन सुखी तो है न ? व्यवसाय में नियुक्त रहकर ही वैश्यगण धन-धान्य से युक्त तो हैं न ? (२५) तुम उन्हें इष्ट वस्तु प्रदान कर उनके अरिष्टों को दूर कर भरण-पोषण तो उनका करते हो न ? राज्य के निवासियों की रक्षा राजा को सावधानता से करनी चाहिए । (२६) तुम हाथी-हथिनियों और घोड़ों आदि पशुओं का ठीक प्रकार पालन-पोषण तो करते हो न ? इनके लाभ से तुम तृप्त तो नहीं होते ? (२७) हे राजपुत्र ! तुम प्रतिदिन प्रात: उठकर और सब प्रकार से सुभूषित हो दोपहर से पहले सभा में जाकर प्रजाजनों से मिलते हो या नहीं ? (२८) तुम्हारे भृत्य तुम्हारे सामने से सदा निर्भय होकर तो नहीं चलते ? अथवा डर के मारे तुमसे दूर तो नहीं रहते ? यह दोनों स्थितियाँ ठीक नहीं हैं । नौकरों के साथ मध्यम व्यवहार ही उचित है । (२९) तुम्हारे सब दुर्ग धन-धान्य, अस्त्र-शस्त्र, जल, यन्त्र, शिल्पी और धनुर्धारियों से पूर्ण तो हैं ? (३०) तुम्हारी आय अधिक और व्यय न्यून तो है न ? तुम्हारे कोष का धन अपात्रों के लिए तो खर्च नहीं होता ? (३१) तुम्हारा धन, विद्वान्, रक्षक वर्ग, अभ्यागत, योद्धा और मित्रों पर ही तो व्यय होता है न ? (३२) जब विशुद्धात्मा, पवित्र, श्रेष्ठ व्यक्ति मिथ्या, चोरी आदि अपराधों के कारण न्यायालय में उपस्थित किए जाते हैं, तब तुम्हारे वकील उनसे जिरह किए बिना ही, लालच में फँस, उन्हें दण्ड तो नहीं दिला देते ? (३३) चोरी करते हुए पकड़े गए चोर को—जिसके पास चोरी का सामान भी मिला है—क्या रिश्वत के लोभ से उन्हें छोड़ तो नहीं दिया जाता ? (३४) धनी और निर्धन का झगड़ा होने पर तुम्हारे बहुश्रुत मंत्री लोभ रहित हो न्याय करते हैं या नहीं ? (३५) मिथ्या अपराधों के कारण दण्डित व्यक्ति के आँसू अपने भोग-विलास में आसक्त राजा के पुत्र और पशुओं का नाश कर डालते हैं । (३६) तुम वृद्ध, बालक, वैद्य और मुखिया लोगों को इष्ट वस्तु प्रदान कर, स्नेहपूर्ण व्यवहार और आश्वासन युक्त वचनों से प्रसन्न तो रखते हो न ? (३७) तुम धर्मानुष्ठान के समय को अर्थोपार्जन में और अर्थोपार्जन के समय को धर्मानुष्ठान में तो नष्ट नहीं कर देते ? अथवा काम वासना में फँस दोनों कर्त्तव्यों का समय तो नहीं गँवा देते ? (३८) धर्म, अर्थ, काम का विभाग कर सबका यथा समय अनुष्ठान तो करते हो न ? तुम एक ही काम में तो सारा समय नहीं बिता देते ? (३९) राजा के चौदह दोष हैं—नास्तिकता, असत्य भाषण, क्रोध, प्रमाद, दीर्घ,

सूत्रता, सज्जनों से न मिलना, आलस्य, इन्द्रिय परवशता, मन्त्रियों की अवहेलना कर स्वयं ही सब निर्णय करना, अशुभ चिन्तकों से परामर्श, निश्चित कार्य को आरम्भ न करना, रहस्यों को प्रकट कर देना, मंगल कृत्यों का त्याग, सब शत्रुओं पर एक साथ आक्रमण, नीच-ऊँच सबके लिए खड़े हो जाना—इन चौदह राज दोषों का तुमने त्याग तो कर दिया है न? (४०) हे भरत! तुम दश वर्ग, पंच वर्ग, चतुर्वर्ग, सप्तवर्ग, अष्टवर्ग, त्रिवर्ग तीनों विद्याएँ, इन्द्रिय विजय, षड्गुण, देव मनुष्य सम्बन्धी आपत्तियाँ, राजकृत्य, विंशति वर्ग, प्रकृति तथा मंडल, यात्रा विधान, दण्ड विधान और सन्धि विग्रह—इन सबको हेय—उपादेय रूप से जानते तो हो न? (४१) क्या तुम नीतिशास्त्र के अनुसार तीन-चार मन्त्रियों को एकत्र करके एक साथ अथवापृ थक्-पृथक् विचार-विमर्श उनके साथ करते हो? (४२) क्या तुम अग्नि होत्रादि कर वेदाध्ययन करते हो? दान-भोग द्वारा क्या तुम अपना धन सफल करते हो? सन्तानोत्पादन द्वारा क्या तुम अपनी पत्नी को प्रसन्न करते हो? क्या शास्त्र श्रवण द्वारा अपने जीवन को सफल बनाते हो? (४३) तुम स्वादु पदार्थों को अकेले ही तो नहीं खा जाते? खाते समय उपस्थित मित्र आदि को देकर खाते हो न? (४४) हे भरत! इस प्रकार धर्मानुकूल दण्डधारी, नीति निष्ठ राजा प्रजा का पालन करता हुआ स्वर्ग को प्राप्त होता है।
[६६/६-५४]

जन्म-मृत्यु का चक्र—राम का भरत को उपदेश

(१) हे भरत! अपने सुख-दुःख के लिए मनुष्य स्वतन्त्र नहीं है। यह पुरुष परतन्त्र है। कर्मों का यथा योग्य फल देने के लिए परमात्मा इसे इधर-से-उधर खेंचता है। (२) सभी संगृहीत वस्तुओं का नाश अवश्यम्भावी है। ऊँचा उठने वाला नीचे भी अवश्य गिरता है। संयोग का अन्त वियोग और जीवन के पश्चात् मृत्यु भी निश्चित है। (३) जैसे पके हुए फलों का पतन अवश्य है, इसी प्रकार उत्पन्न हुए मनुष्य की मृत्यु अवश्य है। (४) जैसे दृढ़ खम्भों वाला गृह स्तम्भ के जीर्ण होने पर धराशायी हो जाता है, इसी प्रकार मनुष्य भी जरा और मृत्यु के आक्रमण से नष्ट हो जाता है। (५) जो रात्रि व्यतीत हो गयी वह पुनः लौट कर नहीं आती। नदी का जो जल एक बार समुद्र में चला गया, वह फिर वापस नहीं आता। (६) दिन और रात प्राणियों की आयु को उसी प्रकार कम करते जाते हैं जिस प्रकार ग्रीष्म काल में सूर्य की किरणें जल को सुखा देती हैं। (७) हे भरत! तुम अपने आत्मोद्धार के लिए चिन्ता करो, दूसरों के लिए क्यों चिन्तित होते हो? चाहे जंगम हो अथवा स्थावर—आयु तो सभी की क्षीण हो रही है। (८) मृत्यु मनुष्य के साथ ही चलती और साथ ही बैठती है। बहुत दूर जाकर फिर साथ ही लौट आती है। (९) जब शरीर में झुर्रियाँ पड़ गईं सिर के बाल श्वेत हो गए और मनुष्य जरा से जर्जरित हो गया, तब वह किस बलबूते पर दूसरों पर प्रभुता जमा सकता है? (१०) मनुष्य सूर्योदय और सूर्यास्त होने पर आनन्दित और हर्षित होता है पर उसकी आयु प्रतिक्षण घट रही है—इस तथ्य को वह अनुभव नहीं करता है। (११) नई ऋतुओं के आगमन से मनुष्य प्रसन्न होता है

पर इस ऋतु-चक्र से उसके प्राण तो क्षीण हो ही रहे हैं। (१२) जैसे समुद्र में लहरों द्वारा एक काष्ठ दूसरे काष्ठ के साथ मिल जाता है और समय पाकर फिर अलग हो जाता है, वैसे ही स्त्री-पुत्र, भार्या-बन्धु, धन-सम्पत्ति समय से प्राप्त होते, फिर इनका वियोग भी हो जाता है क्योंकि वियोग निश्चित है। (१३) हे भरत ! संसार का कोई भी प्राणी जन्म-मृत्यु का अतिक्रमण नहीं कर सकता। इसीलिए मृत व्यक्ति के लिए शोक मनाते हुए भी मनुष्य अपनी मृत्यु को पीछे धकेल नहीं सकता। (१४) जिस प्रकार मार्ग में जाते यात्री-दल के साथ मार्ग में बैठा मनुष्य भी उसके पीछे-पीछे चलने को उद्यत होता है, उसी प्रकार पिता-पितामहादि पहले जिस मार्ग से गए हैं, उसी से हम सबको जाना है। इस अपरिहार्य गति के लिए शोक से क्या लाभ ? (१५) जिस प्रकार नदी की धारा आगे ही बढ़ती जाती है, पीछे नहीं लौटती, इसी प्रकार आयु को क्षीण होते देख मनुष्य अपने को धर्मकृत्यों में लगाए क्योंकि मानव जीवन सुख-शान्ति के लिए ही मिला है। (१६) हे पुरुष सिंह ! जो मनुष्य धार्मिक और दयालु है और जिसे अपने परलोक बनाने की इच्छा है, उसे बड़ों की आज्ञा माननी ही चाहिए।

[७३/८-३०]

पुत्र का लक्षण—राम वचन

पुत्र पिता का पुत्—दुःखदायी नरक से उद्धार करता है। इसीलिए उसे पुत्र कहते हैं क्योंकि वह पिता की सब प्रकार से रक्षा करता है। [७५/१०]

श्रीराम का जाबालि ऋषि को उत्तर

(१) आपने मुझे प्रसन्न करने के लिए जो बातें कही हैं, वह कर्म रूप में परिणत करने अयोग्य और पथ्य के रूप में अपथ्य हैं। (२) जो मनुष्य मर्यादा रहित, पापाचरण युक्त और साधु-सम्मत शास्त्रों के विरुद्ध आचरण करने वाला है, वह सज्जन पुरुषों में सम्मान प्राप्त नहीं कर सकता। (३) यह कुलीन है या अकुलीन, वीर है व भीरू, पवित्र है व अपवित्र—इसका निर्णय चरित्र ही करता है। (४) लोक में वर्ण संकर बढ़ाने वाले आपके उपदेश को जो धर्म के वेश में अधार्मिक है—यदि मैं मान लूं तो शुभ कर्म को त्याग कर वेद विरुद्ध, विधि हीन कर्म करने के पाप का भागी बनूंगा। फिर, कार्य-अकार्य को जानने वाला कौन ज्ञानी पुरुष लोक को दूषित करने वाले आचारहीन मुझको सम्मान की दृष्टि से देखेगा ? (५) यदि आपके आदेशानुसार मैं सत्य प्रतिज्ञापालन हीन वृत्ति का आचरण करूँ, तो फिर ऐसा कौन-सा आचरण रह जाएगा जिसके द्वारा मैं ख्याति को प्राप्त कर सकूंगा। (६) यदि मैं आपके आदेशानुसार स्वच्छन्दचारी हो गया तो सारा संसार मेरे अनुकरण में स्वेच्छाचारी हो जाएगा क्योंकि प्रजा राजा का ही अनुकरण करती है। (७) सत्य और दयालुता—यह राजाओं का परम्परागत सदाचार हैं। इसीलिए राज्य सत्य रूप ही कहलाता है। सत्य के आश्रय से ही सारा संसार टिका हुआ है। (८) ऋषि और विद्वान् सत्य को ही उत्कृष्ट मानते हैं क्योंकि सत्यवादी ही इस संसार में अक्षय मोक्ष आनन्द को प्राप्त

करता है। (९) मिथ्यावादी से लोग वैसे ही डरते हैं जैसे सर्प से। संसार में सत्य ही सबसे प्रधान धर्म माना जाता है। स्वर्ग प्राप्ति का मूल साधन सत्य ही है। (१०) संसार में सत्य ही ईश्वर है। सत्य लक्ष्मी, सुख शान्ति एवं ऐश्वर्य का मूल है। संसार में सत्य से बढ़कर और कुछ नहीं है। (११) दान, यज्ञ, हवन, तपश्चर्या द्वारा प्राप्त सारे तप और वेद—यह सब सत्य के आश्रय पर ही ठहरे हुए हैं। अतः सबको सत्य-परायण होना चाहिए। (१२) मैं राज्य पाने के लोभ, मोह, अज्ञान अथवा क्रोध के कारण पिता की आज्ञा पालन रूपी मर्यादा को तोड़ नहीं सकता क्योंकि मैं स्वयं भी सत्य प्रतिज्ञ हूँ। (१३) मेरी सम्मति में प्रत्येक व्यक्ति के लिए सत्य पालन रूपी धर्म सब धर्मों की अपेक्षा प्रधान धर्म है। जिस जटा वल्कल धारण रूपी धर्मभार को पूर्व काल के सत्पुरुष उठा चुके हैं, मैं भी उसका अभिनन्दन करता हूँ। (१४) आपके बतलाये क्षात्र धर्म को जिसमें धर्म तो नाममात्र का है और अधर्म प्रचुर परिमाण में है; मैं त्याज्य समझता हूँ क्योंकि ऐसे अधर्म का सेवन तो नीच, निष्ठुर, लोभी और पापी ही किया करते हैं। (१५) राज्य, कीर्ति, यश, लक्ष्मी ही नहीं अपितु स्वर्ग भी सत्यवादी को ही प्राप्त होता है। अतः मनुष्य को सदा सत्य ही बोलना चाहिए। (१६) हे जाबालि! सत्य भाषण, धर्म पालन, समय पर पराक्रम दर्शन, प्राणिमात्र पर दया, मधुर भाषण, विद्वान्, ब्राह्मण अतिथियों का सत्कार, यह कर्म सज्जनों ने स्वर्ग के साधन बताए हैं। (१७) जो सदा धर्मानुष्ठान में तत्पर, सत्पुरुषों की संगति करने वाला तेजस्वी, दान में अग्रसर, गुण गरिमा से युक्त, अहिंसक और पाप रहित होते हैं, ऐसे मुनिगण ही संसार में पूजनीय होते हैं। [७६/११-२६]

श्रीराम की भरत के सम्मुख घोषणा

भले ही चन्द्रमा चन्द्रिका छोड़ दे, हिमालय चाहे हिम को छोड़ दे, और हो सकता है समुद्र अपनी मर्यादा को छोड़कर सीमा को लाँघ जाए, पर मैं पिता से की हुई अपनी प्रतिज्ञा को छोड़ नहीं सकता। [७८/१३]

३. अरण्यकाण्ड

श्रीराम की सेवा में ऋषियों का शिष्ट-मण्डल

जिस समय सीता-लक्ष्मण सहित श्रीराम दंडक वन में प्रविष्ट हुए और महर्षि शरभंग के आश्रम में गए—तब उस अरण्य के ऋषिगण श्रीराम की सेवा में उपस्थित हुए और बोले—

(१) आप जैसे रक्षक राजा के होते हुए भी यह ब्राह्मण-बहुल वानप्रस्थियों का दल, अनाथों के समान राक्षसों द्वारा मारा जा रहा है। (२) हे राम! आप इधर आइए और उन आत्मदर्शी तपस्वियों के मृत शरीरों को देखिए जिन्हें राक्षसों ने भालों की नोक से छेदकर और तलवारों से काटकर मारा है। (३) इस घोर वन में

भयंकर राक्षसों द्वारा तपस्वियों पर जो घोर अत्याचार किए जा रहे हैं, अब वह कष्ट हमसे सहन नहीं होते। (४) हे राम ! आप शरण रक्षक हैं, हम सब आपकी शरण में आये हैं। राक्षसों द्वारा मारे जाने वाले हम लोगों की आप रक्षा करें।

श्रीराम ने उत्तर दिया—

(१) आप लोगों की मुझसे प्रार्थना करना उचित नहीं। मुझे तो आप आज्ञा करें। मैं तो आप सबका आज्ञाकारी हूँ। मुझे तो आप अपने कार्य के लिए वन में आया हुआ समझें। (२) मैं तपस्वियों के शत्रु राक्षसों का वध करना चाहता हूँ। हे तपोधन ऋषिगण ! आप मेरे और मेरे भाई लक्ष्मण के पराक्रम को देखें। (३) धर्म धुरन्धर श्रीराम ने उन सब तपस्वियों को अभय प्रदान किया। [५/६-१६]

आपत्ति का प्रतिकार—

जब खर राक्षस अपनी भारी सेना के साथ पंचवटी में श्रीराम-सीता-लक्ष्मण पर आक्रमण करने को आया तब श्रीराम लक्ष्मण से कहते हैं—

अपना कल्याण चाहने वाले पंडित और आपत्ति की शंका करने वाले पुरुष को आपत्ति आने से पूर्व ही उसके प्रतिकार का उपाय कर लेना चाहिए।

[१६/२]

श्रीराम द्वारा राक्षस खर की कठोर भर्त्सना

राक्षस खर के सेनापति दूषण तथा अन्य सैनिकों के भारी संख्या में मारे जाने पर जब खर श्रीराम के सम्मुख युद्ध के लिए आया, तब श्रीराम ने कहा—

(१) विशाल सेना का स्वामी होकर तूने सर्वलोक निन्दित अनेक घोर पाप कर्म किए हैं।(२) क्या तू नहीं जानता कि प्राणियों को दुःख देने वाला, निर्दयी और पापी भले ही त्रिलोकी का स्वामी हो, वह अधिक दिन नहीं जी सकता। (३) हे राक्षस ! लोक विरुद्ध मानवीय शान्ति का नाश करने वाले अत्याचारी को ऐसे ही मार देना चाहिए जैसे अपने घर में आए विषधर साँप को मार दिया जाता है। (४) जो मनुष्य लोभ या काम से वशीभूत हो पाप कर्म करके पश्चात्ताप नहीं करता, उसे ऐश्वर्य से ऐसे ही भ्रष्ट होना पड़ता है जैसे चार पैर वाला कीट वृष्टि के ओलों को खाकर अपना अन्त कर लेता है। (५) हे राक्षस ! इस दंडक वन में रहने वाले धर्माचरण में रत, निरपराध तपस्वियों को मारने का फल तुझे ही भोगना पड़ेगा, क्या तू यह नहीं जानता ? (६) पापी, क्रूर और लोक निन्दित मनुष्य ऐश्वर्य पाकर भी चिरकाल तक जीवित नहीं रह सकता, जैसे गली-सड़ी जड़ वाले वृक्ष बहुत देर तक नहीं ठहरते। (७) जैसे ऋतु आने पर वृक्ष स्वयं पुष्पित हो जाते हैं, ठीक उसी प्रकार समय आने पर जीवों को अपने किए पाप-कर्मों का फल अवश्य प्राप्त होता है (८) जैसे विष मिश्रित अन्न खाने से मनुष्य शीघ्र ही मर जाता है, उसी प्रकार पापी को किए हुए पापों का फल प्राप्त होने में विलम्ब नहीं होता। (९) हे राक्षस ! घोर पाप कर्म करने वाले

और लोक का अमंगल करने वाले पापियों का वध करने के लिए मुझे दशरथ महाराज ने वन में भेजा है। [१६/२-१०]

खर का वध—ऋषियों द्वारा श्रीराम का अभिनन्दन

(१) खर का वध हो जाने पर दंडक वन के सभी राजर्षि तथा ब्रह्मर्षि एकत्र हो श्रीराम के पास आए और उनका सम्मान कर प्रसन्नता से बोले—(२) हे राम ! राक्षस वध रूपी यह कार्य तुमने पूरा किया। अब हम महर्षिगण इस दंडक वन में सुख से धर्मानुष्ठान करेंगे। (३) उन ऋषियों ने हर्षित हो श्रीराम पर पुष्प वृष्टि की। ऋषिगण आश्चर्य में थे कि राक्षसों की विशाल सेना को राम ने इतनी शीघ्र कैसे समाप्त कर दिया। [२०/१६-२१]

जटायु का सीता हरण कर जा रहे रावण को उपदेश

(१) जो राजा धर्म मार्ग में स्थित है, क्या उसे पर-नारी पर हाथ डालना उचित है ? हे रावण ! तुम्हें तो राजदाराओं की विशेष रूप से रक्षा करनी चाहिए। (२) हे रावण ! पर-वधू से सम्पर्क करने की इच्छा रखने वाली नीच बुद्धि को तुम त्याग दो। जिस कार्य के करने से लोक में निन्दा होती है, धीर लोगों को वह काम नहीं करना चाहिए। (३) हे रावण ! शिष्ट जन जिस धर्म, अर्थ अथवा काम के सम्बन्ध में शास्त्र का विधान नहीं पाते तब राजा जैसा आचरण करता है, प्रजा भी उसी का अनुकरण करती है। राजा को धर्म मार्ग का ही सदा अनुकरण करना चाहिए। [३०/५-७]

शोक विह्वल राम को लक्ष्मण का परामर्श

हे आर्य ! शोक त्याग कर धैर्य धारण कीजिए। फिर उत्साह पूर्वक सीता को खोजिए क्योंकि उत्साही मनुष्य ही संसार में कठिन से कठिन परिस्थिति में दुःखी नहीं होता। [३५/२२]

४. किष्किन्धाकाण्ड

उत्साह के गुण—लक्ष्मण वचन

(१) हे भाई ! आप स्वस्थ हो जाइए। इस दीनता और कायरता को त्याग दीजिए। धैर्य धारण करें क्योंकि उद्योग के अभाव में लक्ष्य की सिद्धि कभी नहीं हो सकती। (२) हे आर्य ! उत्साह में बड़ा बल होता है। उत्साह से बढ़कर अन्य कोई बल नहीं है। उत्साही एवं उद्योगी पुरुषों के लिए इस संसार में कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है। (३) उत्साही किसी भी कार्य को करने में घबराता नहीं है। (४) आप

महात्मा और कृतविद्य होकर भी अपने स्वरूप को क्यों नहीं पहचानते ? आप शोक को त्याग कर कामी जनों जैसी इस वृत्ति को परे फेंकिए। [१/२२-२५]

सीता के आभूषण और लक्ष्मण

रावण से अपहृत आकाश मार्ग से राक्षस द्वारा ले जा रही सीता ने ऋष्यमूक पर्वत पर आभूषणों की जिस पोटली को सुग्रीव-हनुमान् के सम्मुख ऊपर से फेंका था, उसे श्रीराम-लक्ष्मण के सम्मुख उपस्थित किए जाने पर बड़े भाई के निर्देश पर लक्ष्मण ने खोला और आभूषणों को देख कर कहा—

मैं इन बाजूबन्दों को नहीं जानता और कान के कुंडलों को भी नहीं पहचानता। मैं इन नूपुरों को अवश्य पहचानता हूँ क्योंकि प्रतिदिन सीता की चरण वन्दना के समय मैं इन्हें देखा करता था। [५/१५]

शोक से हानि—सुग्रीव

(१) हे राम ! आप दैन्य छोड़कर अपने अन्तर्भूत धैर्य का स्मरण करें। आप जैसे महापुरुषों के लिए इस प्रकार का बुद्धि लाघव उचित नहीं। (२) मुझे भी स्त्री हरे जाने का दुःख प्राप्त हुआ है किन्तु न तो मैं इस प्रकार का शोक ही करता हूँ और न मैंने धैर्य छोड़ा है। (३) धैर्यवान् पुरुष स्वजन वियोग, धन नाश के समय भय उपस्थित होने पर और प्राणों पर संकट उपस्थित होने पर भी, अपनी बुद्धि से कार्य लेते हैं और वे इसीलिए कभी दुःखी नहीं होते। (४) मूर्ख ही विपत्ति में हीनता का परिचय दिया करते हैं। ऐसे लोग विवश हो शोक सागर में ऐसे ही डूब जाते हैं जैसे भार से लदी नौका जल में डूब जाती है। (५) शोक करने वाले व्यक्तियों को कभी सुख व शान्ति प्राप्त नहीं होती। शोकाकुल व्यक्ति का तेज नष्ट हो जाता है। आपको शोक नहीं करना चाहिए। (६) शोकाकुल व्यक्तियों का जीवन संशय में पड़ जाता है। आप शोक का त्याग कर धैर्य का आश्रय लें। (७) मैं केवल मित्रता के कर्त्तव्य से प्रेरित हो आप के हित की बात कर रहा हूँ। मेरी मैत्री का आदर करते हुए आपको शोक नहीं करना चाहिए। [६/५-११]

मित्र के गुण—सुग्रीव

(१) हे राम ! सन्मित्र अपने मित्र के स्वर्ण, रजत और उत्तम आभूषणों को अपना ही समझते हैं परस्पर कोई भेद-भाव नहीं रखते। उत्तम पुरुष ऐसा ही समझते हैं। (२) मित्र चाहे धनी हो या निर्धन, दुःखी हो या सुखी, निर्दोष हो व सदोष— किसी भी स्थिति में हो, फिर भी मित्र उसका परम सहायक हुआ करता है। (३) इसी कारण मित्र-स्नेह के मूल्य में मित्र लोग, अपने मित्र के लिए धन, सुख और यहाँ तक कि प्राणों का भी त्याग कर देते हैं। [७/६-८]

श्रीराम का बाली को उपदेश

(१) धर्म की व्यवस्था के अनुसार ज्येष्ठ भ्राता, पिता और विद्यादाता गुरु—तीनों ही पिता तुल्य माने जाते हैं। (२) धर्म के अनुसार छोटा भाई, पुत्र और गुणवान् शिष्य—यह तीनों पुत्र के तुल्य ही माने गए हैं। (३) जो मनुष्य पाप कर्म करते हुए राजा द्वारा दंडित किए जाते हैं, वे पाप से मुक्त हो पुण्यात्मा पुरुषों की भाँति स्वर्गवासी होते हैं। (४) जो चोर अथवा पापी स्वयं राजा के पास जाकर अपने पाप को स्वीकार कर लेता है और दंड चाहता है—राजा उसे चाहे दंड दे अथवा क्षमा कर दे—दोनों अवस्थाओं में वह पापी पाप से मुक्त हो जाता है। पर पापी को पाप का दंड न देने से राजा स्वयं उस पाप का भागी होता है। [१३/११, १२, २१, २२]

कृतघ्नता पाप है—श्रीराम

वीर लोक उपकार का बदला अवश्य ही प्रत्युपकार से देते हैं। जो कृतघ्न हो जाते हैं और प्रत्युपकार नहीं करते, उनसे उपकार करने वाले का मन फट जाता है। [२२/२३]

मित्र धर्म—हनुमान् सुग्रीव के प्रति

(१) समय को जानने वाला जो पुरुष अपने मित्रों के साथ उत्तम व्यवहार करता है, उसका राज्य, यश और प्रताप उत्तरोत्तर बढ़ता है। (२) हे राजन्! जिसका कोष, सेना, मित्र और आत्मा पर समान रूप से प्रेम रहता है, वह महान् राज्य का उपभोग करता है। (३) आप सदाचार सम्पन्न हैं और सन्मार्ग पर अरूढ़ हैं। अत: आपको मित्र के कार्य को भली प्रकार सम्पन्न करना चाहिए। (४) जो मनुष्य अपने कार्यों को छोड़कर मित्र के कार्य का सम्पादन नहीं करता अपितु मोह में फंस अन्य कार्यों में विशेष उत्साह दिखाता है, वह अधर्म में फंस जाता है। (५) जो व्यक्ति समय के बीत जाने पर मित्र के कार्य में प्रवृत्त होता है, वह सिर तोड़ परिश्रम करने पर भी मित्र के कार्य को पूर्ण नहीं कर सकता। [२३/३-७]

प्रतिज्ञापालन—श्रीराम वचन

(१) जो मनुष्य बल-पौरुष युक्त एवं पूर्व उपकारी अर्थियों को प्रतिज्ञा पूर्वक आश्वासन देकर उसे भंग करता है, वह संसार में अधम पुरुष माना जाता है। (२) इसके विपरीत जो वीर मनुष्य भली अथवा बुरी जो भी प्रतिज्ञा कर, उसे सत्यता-पूर्वक निभाता है, वह पुरुषोत्तम है। (३) अपना मनोरथ सिद्ध हो जाने पर जो पुरुष अपने मित्र का कार्य नहीं करता, वह कृतघ्न होता है और ऐसे कृतघ्न के मरने पर उसके माँस को मांसाहारी पक्षी भी नहीं खाता। [२४/१५-१७]

लक्ष्मण का सुग्रीव को उपदेश

(१) श्रेष्ठ कुलोत्पन्न, दयालु, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ एवं सत्यवादी राजा ही संसार

में पूजनीय होता है। (२) जो राजा कुमार्ग गामी, उपकारी मित्रों के साथ प्रतिज्ञा कर उसे पूरा न करने वाला है, उससे बढ़कर निर्दयी और क्रूर व्यक्ति संसार में कौन होगा ? (३) जो एक घोड़े के लिए झूठ बोलता है, उसे सौ घोड़ों के मारने का पाप लगता है। एक गाय के बारे में जो झूठ बोलता है, उसे एक सहस्र गो घात का पाप लगता है और पुरुष के विषय में झूठ बोलने से आत्म-हत्या और स्वजन हत्या के बराबर पाप लगता है। (४) जो व्यक्ति पहले मित्र से अपना प्रयोजन सिद्ध करा ले और उस उपकारी मित्र का प्रत्युपकार न करे, वह पुरुष कृतघ्न कहलाता और मार डालने योग्य है। (५) सत्पुरुषों के अनुसार विद्वान् ब्राह्मण के मारने वाले, मद्य पीने वाले, चोरी करने वाले और व्रतभंग करने वाले का उद्धार हो सकता है और पाप का प्रायश्चित्त हो सकता है यह कृतघ्न के लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं। [२६/४-६]

श्रीराम का उपदेश—सुग्रीव के प्रति

(१) जो राजा अपने समय का विभाग कर धर्म-अर्थ और काम सम्बन्धी कार्य करता है, वही राजा राज्य पाने योग्य होता है। (२) जो राजा धर्म और अर्थ का परित्याग कर केवल काम का ही सेवन करता है, वह वृक्ष की डाली पर सोने वाले उस पुरुष के समान है जो पतन के पश्चात् ही उसके कटु परिणाम को समझता है। (३) जो राजा शत्रु के वध में तत्पर और मित्रों के संग्रह में कटिबद्ध रहता है, वह राजा धर्म, अर्थ और काम रूपी त्रिवर्ग को भोगता है और धर्माधिकारी कहलाता है। [३०/१४-१६]

विषाद हानिकारक है—अंगद

(१) विषाद मत करो। विषाद दोष कारक है। जैसे क्रुद्ध सर्प बालकों को मार डालता है, उसी प्रकार विषाद भी पुरुष को मार डालता है। (२) पराक्रम दिखाने के समय जो व्यक्ति विषाद करता है, वह तेज हीन हो जाता है, उसकी कार्य सिद्धि कभी नहीं होती। (३) यह विषाद करने का समय नहीं अपितु पराक्रम दिखाने का है। [४०/५, ६, ७]

५. सुन्दरकाण्ड

सीता द्वारा रावण की कठोर भर्त्सना

(१) मैं राम की पत्नी और सती स्त्री हूँ। अतः मैं तेरी भार्या नहीं बन सकती। तुझे उचित है कि तू सज्जनों द्वारा सेवित सद्धर्म और श्रेष्ठ पुरुषों के व्यवहार का आचरण कर। (२) हे निशाचर! जैसे अपनी स्त्री की रक्षा करनी चाहिए, उसी प्रकार पर-स्त्रियों की भी रक्षा करनी चाहिए। अपने को उत्तम बनाकर तुम अपनी ही स्त्रियों से रमण करो। (३) जो अजितेन्द्रिय मनुष्य इन्द्रियों के वश हो अपनी स्त्रियों के साथ संतुष्ट नहीं होते, ऐसे निकृष्ट बुद्धि वाले पतित को पर-स्त्रियों से पग-पग

पर अपमानित होना पड़ता है। (४) स्मरण रख ! अनीति पथ का अनुसरण करने वाले अजितेन्द्रिय राजा के कारण धन-धान्य से समृद्ध नगर और राष्ट्र नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। [१२/४,५,६,८]

क्रोध से हानि—हनुमान्

(१) वह पुरुष धन्य हैं जो उठे हुए क्रोध को बुद्धि के द्वारा इस प्रकार शान्त कर देते हैं जिस प्रकार जल द्वारा प्रदीप्त अग्नि शान्त कर दी जाती है। (२) क्रोध के वशीभूत हो मनुष्य कौन-सा पाप नहीं कर डालता ? क्रोध के आवेग में मनुष्य अपने गुरुजनों को भी मार डालता है। क्रोधी मनुष्य अपने कठोर वाक्यों से अपने गुरुजनों का तिरस्कार भी कर देता है। (३) क्या कहना चाहिए और क्या नहीं कहना चाहिए—क्रोधी मनुष्य को इसका विवेक नहीं रहता। क्रोधी मनुष्य के लिए कुछ भी अवक्तव्य और अकर्त्तव्य शेष नहीं रह जाता। (४) जो कभी अपने उठे हुए क्रोध को क्षमा द्वारा वैसे ही बाहर निकाल देता है जैसे सर्प पुरानी कैंचुली को—वही व्यक्ति पुरुष कहलाने योग्य है। [३६/३-६]

६. युद्धकाण्ड

रावण का विचार-विमर्श मंत्रियों से

(१) मननशील आर्य विचार को ही विजय की कुंजी बताते हैं। (२) संसार में उत्तम, मध्यम और अधम—तीन प्रकार के मनुष्य होते हैं। मैं इन तीनों के गुण-दोष बताता हूँ। (३) जो मनुष्य हितैषी और परामर्श देने की योग्यता रखने वाला अथवा अपने समान सुख-दुःख भोगने वाले, अपने भाई-बन्धु अथवा अपने से अधिक योग्य व्यक्तियों के साथ विचार-विमर्श कर कार्य प्रारम्भ करता है और परमात्मा की सहायता पाने के लिए पुरुषार्थ करता है—ऐसा पुरुष उत्तम कहा जाता है। (४) जो मनुष्य अकेला ही प्रस्तुत विषय के ऊँच-नीच पर विचार कर और धर्म का आश्रय ले अकेला ही कार्य आरम्भ करता है, वह मध्यम पुरुष कहलाता है। (५) जो मनुष्य गुण-दोषों का विचार किए बिना और धर्म का सहारा त्याग कर और अकेला ही करने की घोषणा कर कार्य को प्रारम्भ करे और फिर उसकी उपेक्षा कर, कार्य को बीच में ही छोड़ दे—वह पुरुष अधम है। (६) इन तीन प्रकार के पुरुषों के समान मंत्र (विचार-परामर्श) भी उत्तम, मध्यम, अधम—तीन प्रकार के जानने चाहिए। (७) मंत्रिगण एकमत होकर जहाँ शास्त्रोक्त दृष्टिकोण से विचार करते हैं, वह उत्तम मंत्र है। (८) जिस विचार-विमर्श में मंत्रिगण प्रारम्भ में अनेक मत होकर अन्त में एकमत हो जाएँ—उसे पंडित मध्यम मंत्र कहते हैं। (९) जहाँ सम्मतिदाता एक-दूसरे के विरुद्ध ही कहें, सब एकमत न हों और एकमत होने पर भी कोई कल्याण न हो—वह मंत्र अधम कहा जाता है। [५/५-१४]

रावण के नाना माल्यवान् राक्षस का रावण को परामर्श

(१) हे राजन् ! जो राजा चौदह विद्याओं में निष्णत होकर नीतिशास्त्र के अनुसार कार्य करता है, वह बहुत समय तक प्रजा पर शासन करता हुआ ऐश्वर्य भोगता और शत्रुओं को अपने वश में करता है। (२) जो राजा समय के अनुसार शत्रु के साथ संधि और विग्रह कर अपने को शक्तिशाली बनाता है, वह महान् ऐश्वर्य को भोगता है। (३) राजा को उचित है कि जब वह अपने को शत्रु से दुर्बल या समान बल समझे तब शत्रु से सन्धि कर ले। शत्रु कैसा भी हो, उसे कभी तुच्छ न समझे। हाँ, यदि स्वयं शत्रु से बलवान् हो तो युद्ध करना चाहिए। [२२/५,६,७]

कुम्भकर्ण का रावण को कर्त्तव्य उपदेश

(१) जो राजा राजपद पर आरूढ हो प्रथम करने योग्य कामों को पीछे और पीछे करने योग्य कामों को पहले करता है, वह राजा नीति और अनीति को नहीं जानता। (२) जो काम देश काल को बिना विचारे किये जाते हैं, वे समस्त कार्य दूषित होने के कारण वैसे ही विपरीत फल देने वाले होते हैं, जैसे मंत्र से असंस्कारित अग्नि में डाली हुई आहुतियाँ इष्ट फलदायी नहीं होतीं। (३) जो राजा संधि, विग्रह और तटस्थता—इन तीन काम करने से पूर्व पाँच विषय-उपाय, जनबल-धनबल, देशकाल-आपत्ति का निवारण और कार्य की सफलता – को अपने मंत्रियों से परामर्श कर एक सिद्धान्त निश्चित कर लेता है, वही समाज में श्रेष्ठ और नीति मार्ग पर चलने वाला माना जाता है। (४) जो राजा नीति अनुसार आचरण करता है, जो मंत्रियों और हितैषी मित्रों के साथ परामर्श कर कार्य का निश्चय करता है, वही राजा नीतिवान् कहलाता है। (५) जो राजा धर्म, अर्थ और काम को पृथक्-पृथक् अथवा तीनों में से दो-दो (धर्म-अर्थ, अर्थ-धर्म और काम-अर्थ) को अथवा सबको यथा समय करता है, वही राजा नीतिज्ञ कहलाता है। (६) धर्म, अर्थ और काम—इन तीनों में जो श्रेष्ठ धर्म है, उसके अनुसार आचरण नहीं करता, उसका शास्त्र सुनना व्यर्थ है। (७) राजन् ! समय के अनुसार शत्रु के पास जाकर द्रव्य देना (दान), समीचीन भाषण (साम), शत्रु के मित्रों में फूट डालना (भेद) और दण्ड देना तथा नीति अनीति, मंत्रियों के साथ परामर्श—जो जितेन्द्रिय राजा उचित समय पर यह सब कार्य करता है, उसे संसार में कभी दु:ख प्राप्त नहीं होता। (८) राजा को उचित है कि अर्थ तत्वज्ञ मंत्रियों से अपने हित-अहित का विचार कर मार्ग का निश्चय करे। जो राजा ऐसा करता है, वही इस संसार में टिक सकता है। (९) जो राजा शत्रु को तुच्छ समझ अपनी रक्षा नहीं करता, वह भारी अनर्थ को प्राप्त हो स्थान भ्रष्ट हो जाता है। [३३/५,-१४]

विभीषण का मेघनाद को उपदेश

विभीषण युद्ध-भूमि में मेघनाद को कहता है—

(१) यह ठीक है कि मैं क्रूर कर्मा राक्षस-कुल में उत्पन्न हुआ हूँ पर मैं मनुष्यों

के सर्व प्रधान गुण—धार्मिक वृत्ति को धारण करने वाला हूँ। राक्षसों में यह गुण नहीं हैं। इसी कारण मुझे निष्ठुर कर्म और अधर्म का मार्ग पसन्द नहीं है। (२) हे मेघनाद ! जो धर्म रूपी शील से पतित है, वह निश्चय ही पापी है। ऐसे पापी को त्याग देने से वैसा ही सुख प्राप्त होता है जैसे विषधर साँप को हाथ से छोड़ देने से प्राप्त होता है। (३) जो हिंसक पर धन हर्ता और पर-स्त्री अपहरण करने वाला है—ऐसे दुराचारी को जलते हुए घर की भाँति त्याग देना ही नीतिज्ञों का कथन है। (४) दूसरों का धन छीनना, पर-स्त्री पर हाथ डालना और मित्र पर सन्देह करना—यह तीनों पापकर्म नाश करने वाले हैं। [४६/१३-१६]

भाई सर्वाधिक प्रिय—श्रीराम

रावण की शक्ति से मूर्च्छित लक्ष्मण को देख श्रीराम गहन दुःख के साथ कहते हैं—

स्त्रियाँ और मित्र तो सब स्थानों पर मिल सकते हैं पर मुझे ऐसा कोई स्थान दिखाई नहीं देता जहाँ सहोदर भाई मिल सके। [५६/३]

वैर केवल मरणकाल तक ही—श्रीराम

रावण के मरने पर विलाप करते विभीषण को श्रीराम कहते हैं—

जब तक मनुष्य जीवित रहता है, तभी तक उसके साथ वैर रहता है। मरने पर वैर भी समाप्त हो जाता है। अब इसका सम्मान पूर्वक दाह-संस्कार करो। अब तो यह जैसा तुम्हारा भाई था वैसा मेरा भी है। [८०/११]

आचार मुख्य है—सीता का हनुमान् के प्रति वचन

रावण-वध के बाद जब हनुमान् श्रीराम की आज्ञानुसार सीता को यह शुभ समाचार देने अशोक वाटिका गया और सीता को दुःख देने वाली राक्षसियों को मार देने के लिए आग्रह करने लगा, तब सीता ने कहा—

(१) दूसरे के बुरे काम को देख कर उसके प्रति बुरा वर्ताव करना उचित नहीं। प्रत्येक मनुष्य को अपने आचार की रक्षा करनी चाहिए क्योंकि आचार ही श्रेष्ठ पुरुषों का आभूषण है। (२) चाहे कोई पापी हो या धर्मात्मा अथवा वध करने योग्य ही क्यों न हो परन्तु आर्य जन को उस पर दया ही करनी चाहिए क्योंकि अपराध किससे नहीं होता ? [६३/२५-२६]

रामराज्य

(१) राम के राज्य में न तो विधवाओं का करुण क्रन्दन था, न सर्प सदृश प्रवृत्ति वाले शस्रों और हिंसकों का भय था और न रोगों का भय था। (२) राज्य भर में चोर, डाकू और लुटेरों का कहीं नाम तक न था। दूसरे के धन को लेना तो दूर, उसे कोई छूता तक न था और राम के शासन-काल में किसी वृद्ध ने किसी बालक का

मृतक संस्कार नहीं किया। (३) रामराज्य में सब अपने-अपने वर्ण के अनुसार धर्म-कृत्यों में तत्पर रहते थे। सब लोग सदा सुप्रसन्न रहते थे। राम दुःखी होंगे—इस विचार से प्रजाजन एक-दूसरे को दुःख नहीं देते थे। (४) रामराज्य में मनुष्यों की आयु दीर्घ होती थी और मनुष्य बहुत पुत्रों से युक्त होते थे। सभी अयोध्या निवासी रोग और शोक से रहित थे। (५) रामराज्य में वृक्ष सदा फलते-फूलते रहते थे। उनकी शाखाएँ लम्बी होती थीं। वर्षा यथा समय होती थी और सुख स्पर्शी मन्द समीर सदा चलता रहता था। (६) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कोई भी लोभी व लालची न था। सब लोग अपना-अपना काम करते हुए अपने कार्यों में सन्तुष्ट रहा करते थे। (७) श्रीराम के राज्य में सारी प्रजा सत्यपरायण थी, झूठ से सदा दूर रहती थी। सब लोग शुभ लक्षणों से युक्त थे और सब लोग धर्मपरायण थे। [७४/२५-३१]

शुक्रनीति

नीति पालक राजा ही श्रेष्ठ

(१) नीति हीन राजाओं के शत्रु इस तरह खड़े हो जाते हैं, जैसे कुपथ्य करने वाले मनुष्य के रोग तत्काल या कालान्तर में उत्पन्न हो जाते हैं जिससे वह रोगी (व राजा) जीवित नहीं रह पाता। (२) राजा का परम धर्म प्रजा का परिपालन और दुष्टों का निग्रह करना है। यह दोनों कार्य बिना नीतिशास्त्र के अध्ययन से सिद्ध नहीं हो सकते। (३) राजा को अपने हित के उद्देश्य से ऐसी नीति का अवलम्बन करना चाहिए जिस से सारा राष्ट्र, बिना किसी बाहर की प्रेरणा के ही, राजा के हित में तत्पर हो जाए। (४) जिस राष्ट्र में फूट पड़ जाती है, सेना फूट जाती है या अमात्यगण शत्रु से मिल जाते हैं, उसमें राजा की ही नीति अनभिज्ञता मानी जाती है। यह सब राजा की अनीति का ही फल होता है। (५) प्रजा में आचार का प्रेरक राजा होता है। इससे राजा काल का कारण कहा गया है। जो काल को ही सब कुछ का कर्ता माना जाएगा, तो फिर कर्ताओं (प्रजा) में कर्म की स्थिति कैसी मानी जा सकेगी। (६) सारे मनुष्य राज दण्ड के भय से अपने-अपने धर्म में प्रवृत्त होते हैं। जो मनुष्य इस लोक में धर्म-आचरण करता है, वही तेजस्वी होता है। (७) अपने धर्म के आचरण के बिना सुख नहीं हो सकता। अपने धर्म का आचरण ही बहुत बड़ा तप है। इसी से तप रूप धर्म सर्वदा धर्म की वृद्धि करता है। (८) जो राजा दानी, क्षमाशील, शूरवीर और विषयों से पृथक् है वैराग्य युक्त होकर सत्य परायण है, वही राजा इस लोक में विजयी होकर अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है। (९) जो राजा निर्दयी, मदोन्मत्त, हिंसक और सत्य कर्म से रहित है, वह तामसी माना गया है और वह नरकगामी होता है। (१०) जो राजा पाखण्डी, लोभी, भोग-विलासी, ठग और शठ हो, मन, वाणी और कर्म पृथक्-पृथक् रखता हो, सर्वदा कलह प्रिय हो, नीति विरुद्ध चलता हो, छल परायण हो, वह अधम राजा है। वह मर कर पशुयोनि, वृक्षादि स्थावर योनियों में जाता है।

वर्ण जन्म से नहीं, गुण कर्म से—दैव और पुरुषार्थ

(१) इस जगत् में उत्तम और अधर्म गति की प्राप्ति का कारण कर्म ही

पूर्व जन्म के कर्म ही प्रारब्ध बन मनुष्य को उत्तम व अधम गति की ओर ले जाते हैं। कोई भी मनुष्य क्षण भर भी कर्महीन नहीं हो सकता। (२) कोई भी मनुष्य बिना कारण जन्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या म्लेच्छ नहीं बन सकता। इस भेद का कारण, वस्तुतः पूर्व जन्म व इस जन्म के गुण, कर्म ही हैं। (३) यदि कोई जन्म मात्र से ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि होते तो ब्रह्मा से उत्पन्न होने के कारण सब ब्राह्मण ही होते। किसी वर्ण या पिता के घर में जन्म लेने से ही किसी को ब्रह्म तेज की प्राप्ति नहीं हो सकती। (४) जो मनुष्य ज्ञान, कर्म, उपासना द्वारा देव-आराधना में तत्पर, मन और इन्द्रियों का विजेता और प्राणी मात्र पर दया करने वाला है, वही ब्राह्मण है। (५) जो लोक की रक्षा में तत्पर, चतुर, शूरवीर, उदार, पराक्रमी और दुष्टों के निग्रह में समर्थ है, वही क्षत्रिय कहाता है। (६) जो क्रय-विक्रय और व्यापार में कुशल है तथा पशु-रक्षा और कृषि में तत्पर है, वह वैश्य कहलाता है। (७) जो द्विजातियों की सेवा में संलग्न, शूर, शान्त और जितेन्द्रिय है तथा हल, काष्ठ, तृण, घास आदि से वृत्ति करता है, वह शूद्र कहा जाता है। (८) जिसने अपने धर्म के आचरण को छोड़ दिया, निर्दयी होकर दूसरों को पीड़ा पहुँचाता है, उग्र स्वभावधारी, हिंसक, अज्ञानी म्लेच्छ कहाता है।

(९) पूर्व जन्म के कर्म के आधीन मनुष्य की बुद्धि जब कर्म में प्रवृत्त होती है, तभी वह पाप या पुण्य में प्रवृत्त होता है। बिना पूर्व जन्म के शुभ-अशुभ कर्म में प्रवृत्त नहीं हो सकता। (१०) पर बुद्धिमान्, आदर्श चरित्र मनुष्य कभी हाथ पर हाथ धर देव के भरोसे नहीं बैठता। वह पुरुषार्थ को ही श्रेष्ठ मानता है। जो पुरुषार्थ करने में असमर्थ है, वही दैव-दैव पुकारता है—पर दैव और पुरुषार्थ, इन दोनों के आधीन ही सिद्धि माननी चाहिए। इस जन्म के कर्म ही तो दैव और पुरुषार्थ कहाते हैं, अर्थात् एक कर्म के ही तो यह दो भेद हैं, पृथक्-पृथक् वस्तु नहीं है। (११) शुभ कर्म के विपाक होने पर अभीष्ट सिद्धि और अशुभ कर्म के विपाक पर अनिष्ठ प्राप्ति होती है। मनुष्य शास्त्र द्वारा सत्-असत् कर्म का ज्ञान प्राप्त करे और असत् को छोड़ सत्कर्म का ही आश्रय ले – यही उत्तम मार्ग है।

राज्य के सात अंग

(१) सत् और असत् कर्म के प्रचार का कारण राजा ही माना गया है। राजा अपने तेज और उद्यत दण्ड से प्रजा को अपने धर्म में प्रवृत्त करता रहे। (२) स्वामी, अमात्य, सुहृत्, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और सेना—यह सात राज्य के अंग हैं। इनमें सर्व-श्रेष्ठ मस्तक रूप राजा है। अमात्य राजा के नेत्र, सुहृत् कान, मुख कोष, सेना मन, हाथ दुर्ग, और पाद राष्ट्र माने गए हैं। (३) राजा ही जगत् की उन्नति का हेतु है—ऐसा वृद्ध पुरुष मानते आए हैं। समुद्र के आनन्द की वृद्धि का हेतु चन्द्रमा के समान, प्रजा के नेत्रों का आनन्ददायक राजा होता है। (४) प्रजा पालक राजा के बिना प्रजा अपने-अपने धर्म में स्थित नहीं रह पाती है। इसी प्रकार प्रजा के बिना राजा की शोभा नहीं होती है। (५) राजा ही पिता, माता, गुरु, भ्राता, बन्धु, कुवेर और यम के सदृश—माना गया है। जो पिता आदि के तुल्य है, वही रक्षक है, वही राजा है। इन

गुणों से वंचित राजा सार्थक राजा नहीं माना जा सकता। (६) जो राजा अपराधों को क्षमा कर दे, वह क्षमावान् कहाता है और जो न्यायपूर्वक दण्ड देता है—वह शक्तिशाली माना गया है। क्षमा के बिना राजा अनेक सद्‌गुणों से युक्त होने पर भी उत्तम नहीं माना जा सकता। (७) नीच जनों के संग से रहित, दीर्घदर्शी, वृद्ध सेवक, नीतिमान्, गुणयुक्त जो राजा होता है, वही देव अंश से प्रादुर्भूत राजा समझना चाहिए।

कृत कर्म का फलभोग—विनयशीलता

(८) कृत कर्म का फल मनुष्य को अवश्य भोगना पड़ता है। इसका कोई प्रतिकार नहीं है। कितना भी प्रतिकार किया जाए पर किए हुए कर्मों को बिना भोगे समाप्ति नहीं होती। (९) जिस प्रकार रोग की चिकित्सा करने पर उसकी समाप्ति होती है, ऐसे ही कर्म भी भोग रूपी चिकित्सा से समाप्त होते हैं। यदि रोग की वृद्धि का कोई उपदेश दे तो वह ग्रहण नहीं किया जाता, इसी तरह अनिष्ट फल उत्पादक कर्म में भी प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिए। (१०) मनुष्य का अन्तःकरण सत् फलदायी कर्म में लगे, दुःख परिणाम वाले कर्म में कभी प्रवृत्त न हो। इसके उपाय स्वरूप मनुष्य शास्त्रों द्वारा सत्-असत् कर्मों का ज्ञान प्राप्त कर असत् का त्याग और सत् को ग्रहण करे। (११) नीति का मूल विनय है और विनय का ज्ञान शास्त्रों के अध्ययन से होता है। इन्द्रिय विजय से विनय प्राप्ति और विनय प्राप्ति से ही शास्त्र ज्ञान होता है। (१२) राजा को चाहिए कि सब से प्रथम विनय गुण की प्राप्ति करे। इसके बाद पुत्र, अमात्य, भृत्य और प्रजा को विनय युक्त करे। (१३) राजा केवल परोपदेश में कुशल न होकर स्वयं धर्म का आचरण करे। इस दुर्गुण के कारण राजा कभी-कभी प्रजा के अधिकार से वंचित हो जाता है।

पाँचों विषयों के सेवन से मनुष्य की दशा

(१) विषय रूपी महावन में इन्द्रिय रूपी मदोन्मत्त हाथी घूम रहे हैं। मनुष्य ज्ञान रूपी अंकुश से इस इन्द्रिय रूपी हाथी को सदा वश में करे। (२) यह मन रूपी व्याध विषय रूपी माँस के लोभ से इन्द्रिय रूपी श्येन (बाज) को इधर-उधर घुमाता रहता है। इसी मन को प्रयत्न से रोके, फिर जितेन्द्रिय होने में कोई सन्देह नहीं रहता। (३) यदि राजा इस मन को वश में करने में असमर्थ है तो वह समुद्र पर्यन्त पृथ्वी को जीतने में कैसे समर्थ हो सकता है। (४) सांसारिक विषय चित्त को खींचते हैं पर विषय भोग लेने पर वे नीरस हो जाते हैं। जिस राजा का मन विषयों में फँस जाता है, वह हाथी के सदृश बन्धन को प्राप्त होता है। (५) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध – इनमें से एक भी मनुष्य के विनाश के लिए पर्याप्त है। जो पाँचों में फँसा हो, उस मनुष्य की दुर्दशा का क्या कहना? (६) केवल कुशांकुर खाकर अहिंसक और दूर भागने में समर्थ हिरण केवल शिकारी की वीणा के गाने पर मोहित हो मृत्यु को प्राप्त होता है। (७) हाथी पर्वत के तुल्य विशाल आकारधारी, वृक्षों को सहज ही उखाड़ फेंक देने वाला, हथिनी के स्पर्श मोह के कारण बन्धन में फँस जाता है। (८) स्निग्ध, सुन्दर,

दीप शिखा की ओर पतंगा खिचा चला आता है और इस रूप के मोहक हेतु मृत्यु को तत्काल प्राप्त होता है। (९) मत्स्य अगाध जल में निमग्न, वधिकों से दूर रहता हुआ भी कांटे में लगे माँस के लोभ से मृत्यु को प्राप्त होता है। (१०) भ्रमर कमल की पंखड़ियों को काट देने में समर्थ होता हुआ भी गन्ध लोभ से कमल पुष्प में वन्द हो मृत्यु को प्राप्त होता है। (११) विष तुल्य एक-एक विषय प्राणी को मार देने में समर्थ है, फिर इन पाँच विषयों के गुलाम मनुष्य का विनाश तो अवश्यंभावी है। (१२) जूआ, स्त्री संभोग और सुरापान यह तीनों अयुक्ति से सेवन किए अनर्थ के हेतु हैं।

राजा के आठ गुण : चार विद्याओं का अध्ययन

(१) जो राजा प्रजा की रक्षा नहीं करता, जो ब्राह्मण (विद्वान्) तप: परायण न हो, जो धनवान् होकर दान न देता हो, उसे दैव विनष्ट कर देता और नीचे गिरा देता हैं। (२) स्वामित्व, दानशीलता और धनिकता—यह तीनों तप के बिना प्राप्त नहीं होते। याचकता, दासता और दरिद्रता—यह तीनों पाप के फल हैं। (३) दुष्टों को दण्ड, दान, प्रजापालन, राजसूय आदि यज्ञ, न्यायानुसार कोष वृद्धि, अन्य राजाओं का वशीकरण, शत्रु का दमन, भूमि का संरक्षण —यह आठ राजा के कर्त्तव्य हैं। (४) जो राजा नट, गायक, गणिका, मल्ल, नपुंसक और नीचों के सम्पर्क में ही रहता है, वह निन्दनीय और शत्रु मुख में स्थित रहता है। (५) राजा गुप्तचरों द्वारा अपनी निन्दा करने वाले, मन्त्रियों के चरित्र, अपने गुण-अवगुण, पता लगाता हुआ और गुप्तचरों पर क्रोध न करता हुआ अपनी नीति की रक्षा और दुर्गुणों का नाश करे। (६) यौवन, जीवन, चित्त, कान्ति, लक्ष्मी और स्वामित्व —यह छ: चंचल होते हैं। ऐसा जान सदा धर्मरत रहे। (७) जब राजा वृत्ति देने में असमर्थ, अपमान, छल, कपट, कटु वाक्य परायण और प्रबल दण्ड देता है—ऐसे राजा को प्रजा छोड़ देती है। (८) इसके विपरीत राजा वेतन देने में समर्थ, यथोचित्त सबका मान करने वाला, छल-कपट से दूर, मधुर भाषी, क्षमाशील होवे, तब प्रजा प्रसन्न रहती है। (९) काम, क्रोध, मोह, लोभ, मान, और मद— यह छः दुर्गुण राजा को छोड़ देने चाहिए। तभी वह सुखी हो सकता है। (१०) राजा सदा दर्शन-विद्या, वेद अध्ययन, व्यापार नीति और राजनीति— इन चारों विद्याओं का अध्ययन करता रहे। इससे वह धर्म पर स्थित रहेगा। (११) राजा कभी अपने सुख के लिए दीन मनुष्य को भी पीड़ा न पहुँचाए। जब राजा दीन को पीड़ा पहुँचाता है, तब दीन जन की मृत्यु से वह मर जाता है। (१२) राजा अपनी मधुर वाणी से सारी प्रजा को आह्लादित रखे। जो कठोर बोलने वाला होता है, वह कुबेर के समान धनी और दानी भी क्यों न हो, उससे प्रजा भड़क उठती है। (१३) पराक्रम, बल, बुद्धि और शूरवीरता—ये राजा के उत्तम गुण माने गए हैं। इन गुणों से हीन तथा अन्य गुणों से युक्त भी धन-सम्पन्न राजा अल्प भूमि के भोगने में भी समर्थ नहीं हो सकता है। वह थोड़े ही काल में राज्य, ऐश्वर्य से नष्ट हो जाता है।

छः प्रकार के राजा : ग्रामों के आठ प्रकार

(१) जिस की भूमि का कर एक लाख रुपये से तीन लाख रुपये तक प्रति वर्ष हो और प्रजा को बिना पीड़ा दिए वसूल होता हो—वह छोटा राज्य **सामन्त** कहाता है। (२) प्रति वर्ष तीन लाख रुपये से अधिक आमदनी वाला दस लाख रुपये तक का राजा **माँडलिक** कहलाता है। (३) जिसकी भूमि-कर की आय पचास लाख रुपये तक हो वह **महाराजा** कहलाता है। एक करोड़ रुपये तक की आय वाला **स्वराट्** और इससे अधिक दस करोड़ तक आमदनी वाले राजा की सम्राट् संज्ञा होती है। दस करोड़ से पचास करोड़ तक के अधिपाति की **विराट्** संज्ञा है। इससे आगे अरबों रुपया की संख्या की वार्षिक कर की आमदनी वाले राजा को **सार्वभौम** कहते हैं। इसके वश में सातों द्वीपों वाली पृथ्वी होती है। (४) कर लेने से राजा की वृत्ति चलती है। इससे राजा को विधाता ने प्रजा का दास बनाया है। दूसरी ओर प्रजा का पालन करने से वह प्रजा का स्वामी माना गया है। (५) सामन्तों के समान वेतन देकर जिन पुरुषों को राजा अपनी भूमि का अधिकार देते हैं, वे **अनुसामन्त** कहाते हैं। यह भी राजा के कर के भाग के भागी माने गए हैं। (६) सौ गाँवों का अधिपति भी **सामन्त** कहा जाता है। सामन्त की बराबरी का वेतन पाने वाला भी अनुसामन्त कहाता है। (७) जिस व्यक्ति को दस गाँवों का अधिकार दिया गया हो वह **नायक** कहाता है। जो दस सहस्र गाँवों का स्वामी है वह भी **आशापाल** व **स्वराट्** कहा जाता है। (८) जिसकी लम्बाई-चौड़ाई का घेरा एक कोस हो और एक सहस्र रुपया राजकीय कर देता हो, वह **ग्राम** कहाता है। गाँव से आगे पाँच सौ रुपया कर देने वाला **पसवी** और इससे आधा कुम्भ माना जाता है।

भूमियों को माप के विविध परिमाण

(९) प्रजापति के मत से पाँच सौ हाथ के परिमाण का एक कोस होता है। मनु का मत है कि चार हज़ार हाथ की चौड़ाई का एक कोस होता है। (१०) ब्रह्मा के मत में ढाई करोड़ हाथ के परिमाण वाला कोस होता है। पच्चीस सौ हाथ के विनि-वर्तन से भी कोस का क्षेत्र माना गया है। (११) मध्यमा अँगुली के मध्य भाग की लम्बाई तक एक अँगुल माना गया है। इसकी लम्बाई आठ सौ जौ के मध्य भाग के तुल्य होती है और मोटाई पाँच सौ जौ के मध्य भाग के बराबर मानी गई है। (१२) प्रजापति के मत में चौबीस अँगुल का हाथ का परिमाण होता है। पृथ्वी के माप में इसी का ग्रहण प्रमाण माना जाना चाहिए। (१३) चार हाथ का अथवा किसी के मत में पाँच हाथ का लघु दण्ड माना गया है। पाँच जौ के मध्य भाग की मोटाई और लम्बाई इसकी अँगुल होती है। इस परिमाण की चौबीस अँगुल का मनु के मत में हाथ का परिमाण होता है। (१४) प्रजापति के मत में ७३८ यवों के परिमाण का और मनु के मत में तीन सौ यवों परिमाण का दण्ड होता है। (१५) प्रजापति और मनु—दोनों के मत में पच्चीस सौ दण्ड का निवर्तन होता है। तीन सहस्र अँगुल या पन्द्रह हज़ार यव के प्रमाण से निवर्तन का परिमाण होता है। (१६) मनु के मत में १२५ हाथ का

निवर्तन होता है । उन्नीस हज़ार दो सौ यव के मध्य भाग से भी विनिवर्तन का परिमाण होता है । (१७) प्रजापति के मत में चौबीस सौ अँगुल तथा सौ हाथ का निवर्तन होता है । (१८) इन दोनों प्रकार की नाप निवर्तन में सवा छः सौ दण्ड के परिमाण से होती है । इन दोनों के सर्वदा पच्चीस निवर्तन माने गए हैं । (१९) पिचहत्तर हज़ार अँगुल का परिवर्तन होता है, मनु के मत में और प्रजापति के मत में साठ हज़ार अँगुल का परिवर्तन का परिमाण स्वीकार किया गया है । (२०) मनु के मत में २१२५ हाथों का और प्रजापति के मत में पच्चीस सौ हाथों का परिवर्तन माना गया है । (२१) तीन लाख पिचहत्तर हज़ार यवों के प्रमाण से प्रजापति का और चार लाख अस्सी हज़ार यव प्रमाण का मनु का परिवर्तन माना गया है । (२२) मनु के प्रमाण से बत्तीस निवर्तनों के चार सहस्र हाथ या आठ सौ दण्ड होते हैं । (२३) पच्चीस दण्डों की भुजा मानी गयी हैं । दस हज़ार हाथों का उसका क्षेत्र कहा गया है । (२४) खेती के लिए जोती जाने वाली भूमि का परिवर्तन चतुर्भुज के समान होना चाहिए । जहाँ तक हो सके, राजा प्रजापति के मान से ही भूमि का ग्रहण करे । यदि युद्ध आदि की कठिनता उपस्थित हो जाए, तो मनु के मान से भी ग्रहण किया जा सकता है । (२५) राजा अपनी भूमि का दो अँगुली का भाग भी विना कर ग्रहण के न छोड़े । कर का ग्रहण तो अपने निर्वाह के लिए होता है । राजा अपने समस्त जीवन तक कर का ग्रहण करता रहता है । (२६) धर्मात्मा राजा मन्दिर, उद्यान अथवा सदाचारी गृहस्थ के निमित्त भूमि दान में दे सकता है ।

राजधानी, राजभवन और परकोट का निर्माण

(१) अनेक वृक्ष व लताओं से परिपूर्ण, पशु-पक्षियों से व्याप्त, प्रभूत जल-अन्न से सम्पन्न, तृण काष्ठ से सम्बद्ध, नौका-संचालन योग्य नदियों से संयुक्त, पर्वतों से सुशोभित, सुन्दर, समतल के मनोहर प्रदेश में राजा अपनी राजधानी का निर्माण करे । (२) राजधानी का आकार अर्ध चन्द्र के तुल्य वक्र तथा गोल, सुन्दर चौकोर, चारों ओर परकोटा और खाई—इस प्रकार राजधानी का निर्माण आवश्यक है । ग्राम, पल्ली आदि इसके अन्तर्गत होने चाहिए । (३) राजधानी के मध्य सभा भवन और नगर में अनेक कूप, वापी, तडागों के साथ, चारों दिशाओं में चार सुन्दर सड़कें, उद्यान और वीथिकाएँ हों । (४) राजधानी के मध्य दृढ़, सुरम्य देवालय, मठ, धर्मशाला आदि के सहित राजा यहाँ पूर्ण रक्षा के साथ निवास करे । (५) राज सभा के पास ही राजमहल और उसके भीतर गौ, अश्व, गज इत्यादि के रहने की सुरम्य शाला होवे । इस राजप्रासाद में नाली, कूप, जल यन्त्र आदि की सुव्यवस्था हो । (६) राजधानी की भुजा सब ओर से समान, दक्षिण दिशा में ऊँची और उत्तर की ओर झुकी होनी चाहिए । राजमहल शाला और भुजा से हीन न हो । उसमें विषम भुजा न हो । (७) राजभवन में जो गजशाला आदि बनाई जाए, वह एक भुजा की न हो । राजभवन में चारों ओर शाला न भी हों, तभी वह शुभ मानी जाती है । शस्त्रास्त्र धारण करने के स्थान और प्राकार (शहर पनाह) के ऊपर तोप आदि संचालन के यन्त्र लगे हों ।

(८) राजभवन के चारों द्वारों पर तीन-तीन मंज़िलें हों—जो चारों दिशाओं में सुन्दर बनी हों। इस पर चार, पाँच या छः पहरेदार दिन-रात बदल-बदल कर पहरा दें। इसमें अनेक कमरे, कोठरी, अटारी हों। इसमें शस्त्रास्त्र सुसज्जित सैनिक दिन-रात राजधानी की रक्षा करते रहें। (९) राजभवन के पूर्व की ओर वस्त्र प्रक्षालन गृह, स्नानागार, अग्निहोत्र शाला, पाकशाला का निर्माण हो। (१०) निद्रा, विहार, जल पात्र, शोक, धान्य संग्रह, पीसना-कूटना, दास-दासी निवास, मलमूत्र त्याग—यह सब भवन की दक्षिण-दिशा में बनवाए जाएँ। गौ, मृग, ऊँट, गज, कुत्ता आदि पशुओं के स्थान राजमहल के पश्चिम की ओर निर्मित हों। (११) रथ, अश्व, शस्त्र, अस्त्र, व्यायाम, परिभ्रमण और वस्त्र, द्रव्य के सुरक्षित रखने के स्थान, विद्याभ्यास का भवन—यह सब उत्तर दिशा की ओर निर्मित हों। यह सुन्दर और सुगुप्त हों। राजा अपनी आवश्यकता के अनुसार शास्त्रानुकूल राजभवन बनाए। (१२) धर्माध्यक्ष की कचहरी, शिल्पशाला भी उत्तर में हो। कमरे के विस्तार से पाँच गुणी ऊँची भित्ति बनानी चाहिए। कमरे के विस्तार से छठा भाग भित्ति की मोटाई का हो। एक मंज़िल के ऊपर दूसरी मंज़िल बनाई जा सकती है। (१३) भित्तियों के कमरे पृथक् और खम्भों पर बने कमरे पृथक् हों। तीन, पाँच या सात कोष्ठों से युक्त स्थान को ही ग्रह कहा जाता है। (१४) द्वार के लिए रखी गयी भूमि के आठ भाग बनाएँ जिसमें दो भाग बीच के निकाल शेष द्वार की रचना करे। चारों दिशाओं में दो-दो द्वार हों। इससे धन-पुत्रादि की प्राप्ति होती है। (१५) भूमि के मध्य भाग में ही द्वार की रचना करे। इससे उलट-पलट न बनायें। प्रत्येक कमरे में वायु संचार का स्थान—बरामदा-झरोखा आदि हों—जिससे सुख प्राप्त हो। (१६) अपने घर का द्वार अन्य के घर के द्वार से बिंधा न हो। वृक्ष, गृहकोण, स्तम्भ, मार्ग, चबूतरा, कूप—इत्यादि से बिंधा घर का द्वार नहीं होना चाहिए। (१७) राजमहल और यज्ञ मंडप के द्वार में मार्ग का वेध नहीं माना गया है पर यह तभी होगा जब इसका चबूतरा चतुर्थांश तक विस्तृत हो। (१८) किसी प्राकार की नींव का भाग ऊँचाई से सृतीषांश तक का होता है। उसकी चौड़ाई नींव से आधी मानी गयी है। प्राकार की ऊँचाई इतनी हो कि उसका चोर उल्लंघन न कर सके। (१९) इस प्राकार पर पहरा देने वाले सैनिक नियुक्त रहें जिनके पास सुसज्जित बन्दूकें हों। प्राकार के दृढ़ गुल्म (कंगूरे) और गवाक्ष हों जिनके द्वारा बन्दूक की गोली मारी जा सके। (२०) प्राकार के साथ प्रासाद के चारों ओर खाई बनायी जाए जिसमें अगाध जल भरा रहे। युद्ध के साधनों की सामग्री और युद्ध में कुशल योद्धाओं के बिना इस खाई और परकोट से प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता है। (२१) राजा को दुर्ग में नहीं रहना चाहिए। वह तो बन्धन का हेतु हो जाता है। इसलिए दुर्ग में सुरंग होनी चाहिए।

राजभवन नगर और गाँव की रूपरेखा

(१) राजभवन के तीन, पाँच, सात कोष्ठ हों। यह भवन दक्षिण-उत्तर में जितना लम्बा हो, उससे पूर्व-पश्चिम में दुगुना या तिगुना होना चाहिए। यह एक मंज़िल,

दो मंज़िल या तीन मंज़िल अपनी इच्छानुसार बनाए। ऊपर की मंज़िल में युद्ध की सामग्री से युक्त छोटे कमरे हों। (२) प्रत्येक कोष्ठ के आगे झरोखा हो और पार्श्व कोष्ठ से दुगुना मध्य कोष्ठ का विस्तार हो। मध्यम कोष्ठ के विस्तार से पंचमांश अधिक उसकी ऊँचाई हो। (३) इन कमरों में उत्तम स्तम्भ, चारों ओर से आने-जाने के मार्ग, फव्वारे और स्वर यन्त्र होने चाहिए। (४) कहीं पर इनमें वायु यन्त्र, काल यन्त्र, घंटा-घड़ियाल हों, दर्पण और चित्रों से सुशोभित हों। (५) इस राजभवन में मंत्रणा के लिए उपयुक्त स्थान हों, मन्त्रियों का, न्यायालय का और अध्यक्षों के स्थान हों। (६) राजभवन के उत्तर या पूर्व में दो सौ हाथ दूर सेना की छावनी हो। राजभवन के समीप नागरिक-प्रजा के घर बनाए जाएँ, जो कुलीन और धनवानों के हों। (७) प्रथम अमात्य आदि प्रकृति, फिर वन्धु-बांधव अनुप्रकृति, उसके बाद अधिकारी, सेनाध्यक्ष, सैनिक, अश्वारोही—इनके घर बनें। (८) इनके आगे अश्व, गज, गजपालों के घर और बड़ी-वड़ी तोपों के स्थान हों। इनके पास अश्व पालकों के भवन हों। (९) राजधानी में प्रत्येक जाति के पृथक् समुदाय रूप में पंक्ति बद्ध घर हों। एक जैसी वस्तुओं के बाजार एक दिशा में क्रमवद्ध हों। इस प्रकार पृथक्-पृथक् बाजार प्रत्येक वस्तु के हों। (१०) राजभवन के चारों ओर की सड़कों की चौड़ाई तीस हाथ से कम न हो। यह उत्तम राजमार्ग है। वीस हाथ का मध्यम और पन्द्रह हाथ का निकृष्ट माना गया है। (११) जिसकी तीन हाथ की चौड़ाई हो वह मार्ग पद्मा, पाँच हाथ की वीथि और दस हाथ के परिमाण को मार्ग कहा गया है। वन में चौवीस कोस के अन्तर पर सड़क वनी हो। गाँव-गाँव में दस-दस हाथ की गली हो। (१२) गाँव वाले कछुए की पीठ के सदृश ढालू और सुदृढ़ उत्तम पुल बनाएँ। गाँव का पानी निकालने के लिए गाँव वाले गाँव के पास ही नाली खोद लें। (१३) घरों के द्वार सड़क पर हों। घर के पीछे सेवकों के घर और पीछे गली में मल-मूत्र त्याग के स्थान हों। घरों के मध्य कंकड़ और कली की कूटकर वनी पक्की सड़क हो जिनकी मरम्मत प्रति वर्ष हो। (१४) अभियुक्त या कैदी अथवा गाँव के मजदूरों द्वारा इस सड़क को राजा बनवाए। दो गाँवों के मध्य सराय वनाई जाए। सराय में ठहरने वालों से उनकी पूरी जानकारी ली जाए और उनके पास कोई शस्त्र हो, तो सराय का व्यवस्थापक अपने पास रख ले। (१५) सराय में ठहरने वाले यात्रियों की संख्या गिनना, रात को द्वार बन्द करना, प्रातःकाल उन्हें जगा देना और उनके शस्त्र वापस दिए जाने की आज्ञा देना—यह सब पांथशाला का व्यवस्थापक करे।

राजा की दिनचर्या

(१) राजा दो घड़ी रात रहते उठे, आय-व्यय का व्यौरा जाँच कर उसका अनुमान लगाए। नित्य कर्मों से निवृत्त हो संध्या, वेद-पाठ, श्रवण, दान इत्यादि दो घंटों में समाप्त कर, उत्तम कर्मचारियों को पुरस्कार दे। देश के सम्बन्ध में पूरे ब्यौरे के साथ आवश्यक जानकारी प्राप्त करने में एक घंटा लगाए। (२) इसके वाद सुहृद्-जनों के साथ भोजन कर, एक घंटा विश्राम के बाद खेल-शिकार, सेना की व्यूह रचना

और अभ्यास का निरीक्षण कर सायंकाल की सध्या करे। सायंकाल के भोजन के बाद गुप्तचरों से समाचार सुने। इसके बाद आठ मुहूर्त शयन करे। दिन और रात को इस प्रकार राजा तीस मुहूर्त में बाँट लें। (३) राजा कभी अपना समय वृथा न खोवे। स्त्री सेवन और सुरापान से अपने को बचावे। जो कार्य आवश्यक है और समयानुसार है, उसमें कभी प्रमाद न करे। राजा न्यायशील, नीतिमान्, नम्रता युक्त हो, सेना और पहरेदारों को यथायोग्य चार, पाँच या छः को उपयुक्त स्थानों पर नियुक्त करे। (४) कार्यालयों से प्रतिदिन के समाचार लेखकों व अधिपतियों से सुने। पहरेदारों का प्रतिदिन परिवर्तन, यथासम्भव होता रहे। (५) गली के द्वार पर नियुक्त सिपाहियों व पहरेदारों का वेतन गली में रहने वाले गृहस्थों से कर द्वारा वसूला जाए। इन पहरेदारों द्वारा राजा गृहस्थों के कुशल समाचार जाने। (६) नगर व गाँव से बाहर जाने वाले व प्रविष्ट होने वालों की तलाशी ले उन्हें आने जाने का प्रमाण-पत्र दिया जाए। (७) शुद्ध आचार के व्यक्ति बिना इस प्रमाण-पत्र के आ जा सकें। पहरेदार दो-दो घंटे में चक्कर लगाएँ ताकि चोर-व्यभिचारी कोई कुकर्म न कर सकें। राजा इस प्रकार सावधानता से प्रजा पर शासन करे। (८) राजा की यह आज्ञा हो कि दास, भृत्य, भार्या, पुत्र और शिष्य के साथ देशवासी कभी वाणी दण्ड के अतिरिक्त अन्य किसी दण्ड का प्रयोग न करें। (९) तराजू, आज्ञा-पत्र, बाट, सिक्का, वृक्षादि का रस (लाख आदि), धातु, सजातीय बान्धव, घृत, मधु, दुग्ध, चर्बी, आटा आदि के विषय में मिथ्या लेख या बलपूर्वक कोई लेख न होना चाहिए। (१०) रिश्वत आदि से राजा का कोई लाभ नहीं होता। दुराचारी, चोर, व्यभिचारी, राजा के शत्रु से द्वेष न करने वाला और राजा का द्वेषी—ऐसे पुरुषों की कभी रक्षा न करे। माता-पिता, पूज्य, सदाचारी तथा विद्वानों का कभी अपमान या उपहास न करे। (११) स्त्री-पुरुष, स्वामी-सेवक, भाई-बहिन, पिता-पुत्र और गुरु-शिष्य में राजा कभी झगड़ा न होने दे।

राज्य अधिकारियों के कर्त्तव्य : राज्य की आय का विभाग

(१)बा वड़ी, कूप, बागीचा, सीमा, धर्मशाला, देवालय और हीन तथा विकलाँग व्यक्तियों के मार्गों में कभी बाधा न पहुँचाए। जुआ, सुरापान, शिकार, शस्त्र धारण, गौ, हाथी, अश्व, ऊँट, भैंस, मनुष्य, स्थावर, चाँदी, सुवर्ण, रस, मादक और विषैले पदार्थ, ऋय-विक्रय, शराब बनाना, गृह आदि बेचने का पट्टा, दान पत्र, ऋण के निर्णय का पत्र (दीवानी मिसल)—इन कामों को राजा की आज्ञा के बिना कोई न करे। फर्द जुर्म (महापाप का अभिशपन) लगाना किसी अधिकारी के लिए उचित नहीं है और न वह किसी के धन का ग्रहण (जब्र) कर सकता है। (२) कोई भी अधिकारी नवीन समाज के नियम, निर्णय, जाति दूषण, स्वामी हीन या नास्तिक के धन का संग्रह (जब्ती) और मंत्र का भेद न करे। अपने कर्त्तव्य का त्याग, असत्य भाषण और पर-स्त्री भोग कोई अधिकारी न करे। (३) किसी भी अधिकारी को झूठे साक्षी, झूठा लेख, रिश्वत—यह सब पाप नहीं करने चाहिए और न निश्चित कर से वह अधिक ले। चोरी व साहस का किसी प्रकार का अनुचित कार्य न करे। (४) कोई भी अधिकारी वेतन,

महसूल (शुल्क), भाग, सूद, अहंकार के वल और छल द्वारा मन से भी अपने स्वामी का द्रोह न करे। (५) कोई भी अध्यक्ष प्रजा के किसी व्यक्ति को न सताए। जितना राजा ने नियत कर दिया, उतने ही परिमाण में नाप-तोल राजा की मोहर (मुद्रा) से निश्चित रहना चाहिए। (६) सब अधिकारी प्रजा के सुखकारी कार्य की वृद्धि में संलग्न रहें। चोर आदि दुष्ट पुरुषों को पकड़कर दण्डाधिकारी (मजिस्ट्रेट) के सम्मुख पेश कर दें। (७) जिन लोगों ने वृषभ आदि छोड़े हैं, वे ही उन्हें रोककर रखें। राजा प्रजा में घोषणा कर दे कि जो मेरी आज्ञा के विरुद्ध चलेंगे, मैं उन अपराधियों को महान् दण्ड देकर शिक्षा प्रदान करूँगा। (८) राजा अपने आज्ञा-पत्र को लिखवा कर चौराहों पर चिपकवा दे। राजा सर्वदा अपने दण्ड को असाधु पुरुषों और शत्रुओं पर डालता रहे। राहगीरों की रक्षा और सुख के निमित्त राजमार्ग की रक्षा अच्छी तरह कराए। (९) राजा दस्यु और पथिकों को पीड़ा देने वालों को प्रयत्न पूर्वक नष्ट कर दे। अपनी आय के तिहाई भाग से सेना का संग्रह करे। उसका आधा भाग दान में लगाया जाए। आधे भाग से प्रजा की रक्षा और आधे भाग से अधिकारी गणों के वृत्ति दी जाए। अर्धांश से राजा अपना काम चलाए और एक अंश सर्वदा कोष में पड़ा रहे। (१०) इस प्रकार राजा प्रति वर्ष आय के छः विभाग करके व्यय करे। सामन्त से छोटे जमींदारों पर यह नियम लागू नहीं हैं।

भोजन की परीक्षा : मृगया से लाभ : गुप्तचरों पर कड़ी दृष्टि

(१) राजा विष दोष की शंका से अन्न को वानर, कुक्कुट आदि से परीक्षा कराए। विष मिश्रित अन्न को देखते ही हंस चकराता है, भ्रमर शब्द करने लगता, मयूर नाचता, मुर्गा बुरी तरह कुकलाता, क्रौंच पक्षी उन्मत्त हो जाता, वानर मल-मूत्र छोड़ने लगता, नेवले के रोमांच खड़े हो जाते और मैना वमन करने लगती है। ऐसी दशा में राजा भोजन को छोड़ दे। (२) राजा को षड्रस भोजन करना चाहिए। दो या तीन रस का मिश्रित अन्न का भोजन राजा को शोभा नहीं देता। राजा कम या अधिक भोजन न करे और न ही चरपरा, मीठा और खट्टा मिला कर खाए। (३) प्रार्थियों की बात राजा मन्त्रियों के साथ सुने। राजा अपने मन्त्री आदि प्रकृति, स्त्री, नट, गायक, मागध और बाजीगर लोगों के साथ उद्यान आदि में सावधानता से घूमे। (४) राजा को अश्व, गज, और रथ की सवारी का नित्य अभ्यास करना चाहिए। सेना के दुर्ग की रचना की शिक्षा ग्रहण करे और अपने योद्धाओं को भी कराए। (५) राजा सिंह आदि वनचर और मयूर आदि पक्षियों के द्वारा अपने चित्त को बहलाए। राजा मृगया में दुष्ट सिंहादि जन्तुओं का ही वध करे। (६) मृगया से शूरवीरता बढ़ती और नित्य लक्ष्य बन्धन का अभ्यास होता है। कायरता भाग जाती और शस्त्र चलाने की फुर्ती भी राजा में बनी रहती है। मृगया में यह सब कुछ गुण हैं पर इसमें हिंसा का एक महान् दोष भी है। (७) जो असत्य बोलने वाले गुप्तचर को दण्ड नहीं देता, वह राजा म्लेच्छ है क्योंकि इस चेष्टा से वह प्रजा के प्राण और धन का अपहरण करता है। (८) ब्रह्म-चारी, तपस्वी, संन्यासी, कापालिक आदि नीच सिद्धक रूप धारण करने वाले गुप्तचर

की प्रत्यक्ष व गुप्त रीति से राजा परीक्षा करता रहे। (६) यदि राजा गुप्तचरों पर दृष्टि नहीं रखेगा तो उसे सच्चे वृत्तान्त का पता ही नहीं लगेगा। जो राजा इनकी पड़ताल नहीं करे तो यह गुप्तचर राजा के सम्मुख भी मिथ्या भाषण करने में न हिचके। अमात्य आदि और अधिकारी वर्ग के पीछे भी राजा गुप्तचर नियुक्त करे।

राज्य के उत्तराधिकारी, बन्धु-बांधवों का स्थान : राजसभा में कौन कहाँ बैठे ?

(१) राजा अपने राज्य में एक ही नायक नियुक्त करे, कभी भी एक कार्य पर अनेक नायक नियुक्त न करे। किसी भी कार्य को बिना नायक के राजा न छोड़े। (२) यदि राजकुल में बहुत से पुत्र हों तो उनमें सब से ज्येष्ठ को ही राजा बनाया जाता है, अन्य राज कार्य के साधक ही होते हैं। यह लोग अन्य सहायकों की अपेक्षा राजा की वृद्धि के निमित्त माने गए हैं। (३) यदि ज्येष्ठ पुत्र बहरा, कुष्ठी, गूँगा, अन्धा, नपुंसक हो तो वह राजगद्दी के योग्य नहीं माना जा सकता। उसके स्थान पर उसका भ्राता या पुत्र ही अधिकारी होता है। राज्य के हिस्सेदारों का एकमत होना ही राज्य के हित के लिए परम श्रेयस्कर है। (४) यदि राजकुल में फूट पड़ जाए तो राज्य और कुल का विनाश ही होगा। राजा को चाहिए कि वह अपने बांधवों को उनका भाग प्रदान कर दे। (५) राज्य के पृथक्-पृथक् टुकड़ों में बँट जाने से राजा का कल्याण नहीं है। ऐसा होने से राज्य को शत्रु निगल लेना चाहेंगे। (६) राज्य की आमदनी का चतुर्थांश देकर चारों ओर अपने बांधवों को नियुक्त करे। चारों दिशाओं में अधिकारी वर्ग की नियुक्ति करे। (७) गौ, गज, अश्व, उष्ट्र और कोष—इन विभागों के उच्च आसन पर माता या माता के समान उच्च पदवी की मौसी आदि को नियुक्त करे। (८) सेना के विभाग पर बांधव व पत्नी के भाई आदि को नियुक्त करे। अपने दोषों को बताने के लिए गुरु और सुहृदों को लगाए। (९) वस्त्र आभूषण, पात्र आदि की देख-रेख में स्त्रियों को नियुक्त करे। इन पर भी अपनी दृष्टि रखे और इनके कार्यों पर अपनी मोहर लगाए। (१०) राजा अपने मित्र, भ्राता, पुत्र और बांधवों के साथ राजकृत्यों का सभा में विचार करे। इनके साथ सेनापति, सभासद् आदि भी हों। (११) सभा में पश्चिम दिशा के मध्य भाग में राजा का सिंहासन हो। इधर-उधर के कोष्ठों में दाँयीं और बाँयीं ओर सामन्त बैठें। (१२) राजा के पृष्ठ भाग में पुत्र, पौत्र, भ्राता, भतीजे आदि बैठें। दौहित्र दाँयीं ओर तथा चाचा, ताऊ, अपने कुल के उत्तम पुरुष, सभासद, सेनापति, राजा के सम्मुख अथवा दाँयी ओर आगे बैठें। (१३) मातामह के कुल के उत्तम व्यक्ति, मंत्री, बन्धु, बान्धव, श्वसुर, श्यालक (साला)—यह वाम भाग में आगे बैठें। (१४) बांये और दक्षिण पार्श्व के भाग में आगे की ओर जामाता या बहनोई बैठें। जो अपने समान राजा या सुहृद् हो, उसे राजा अपने सिंहासन पर ही बैठाए। (१५) दौहित्र, भानजे आदि के साथ यदि उसी सम्बन्ध के कोई दत्तक हों तो वहाँ बैठने योग्य हैं। भागिनेय, दौहित्र आदि भी पुत्र के स्थान पर बैठ सकते हैं। (१६) जो पिता का स्थान है, वही गुरु का गौरव है। वह राजा के सम्मुख उत्तम आसन

पर बैठे। अगले पार्श्व में मंत्रियों के पीछे सारे लेखक बैठें। (१७) अन्य सेवक पीछे के आसनों पर स्थित हों। स्वर्ण दण्ड धारण किये दो कर्मचारी राजा की बगल में खड़े रहें जो दरबार में किसी के प्रविष्ट होने और प्रणाम करने की सूचना देते रहें।

जब राजा सभा में सिंहासन पर बैठे : प्रजापीड़कों को कठोर दण्ड

(१) राजा अपने छत्र आदि विशेष राजोचित चिह्नों के साथ सिंहासन पर बैठे। वह उत्तम आभूषण कवच, वस्त्र और मुकुट युक्त हो। शस्त्र विद्या में कुशल राजा खड्ग धारण कर सावधान होकर बैठे। कर्ण मधुर बोलने वालों की बातों पर राजा ध्यान न दे। (२) राग, लोभ, भय से यदि मंत्री राजा को उचित मार्ग न सुझाएँ तो राजा उन्हें विश्वास पात्र न समझे। इससे कार्य सिद्धि नहीं हो सकेगी। (३) राजा अपने मंत्रियों के मत को साधक-बाधक प्रमाण सहित पृथक्-पृथक् लिखवाए। फिर अपनी बुद्धि से विचार, जिस पक्ष में बहुमत हो, उसे ही व्यवहार में लाए। (४) हाथी, घोड़ा, रथ, पशु, भृत्य, दास, युद्ध सामग्री, कार्य योग्य सैनिक इत्यादि का प्रतिदिन ध्यान से कार्य देखे और जो पुराने पड़ गए हों, उन्हें हटा दे। (५) अपने गुप्तचरों से राजा दस हज़ार कोस तक के समाचार एक दिन में ही जान ले। अपने सेवकों को सब क्रियाओं और कलाओं के अभ्यास में निपुण बना दे। (६) जब किसी भृत्य की शिक्षा समाप्त हो जाए तो उसकी परीक्षा कर उसके योग्य काम पर लगा दे। जो विद्या-भ्यास में श्रेष्ठ हों, उन्हें प्रतिवर्ष कुछ पुरस्कार देता रहे। (७) राजा सदा विद्या और कला की उन्नति के लिए प्रयत्न करता रहे। राजा हाथी पर बैठ प्रजा रंजन के निमित्त राजधानी का चक्कर लगाए। (८) इस अवसर पर राजा अपने तुल्य गुणवान्, अपने बान्धव, मित्र या अमात्य आदि के साथ एक गज पर चढ़ कर चले पर कभी किसी नीच पुरुष को गज पर साथ बैठा कर न चले। (९) राजा प्रति वर्ष ग्राम, पुर और देश की देखरेख करता हुआ अधिकारियों का प्रजा के साथ व्यवहार और प्रजा के कष्ट की जाँच करता रहे। राजा को कभी भृत्यों का पक्षपाती न होकर प्रजा का पक्षधर होना चाहिए। (१०) किसी अधिकारी के विरुद्ध यदि सौ प्रजाजन शिकायत करें तो उसे अपने पद से हटा दे। मन्त्री भी यदि अन्याय परायण हो तो उसे तत्काल निकाल दे। मन्त्री के प्रथम अपराध पर उसे एकान्त में चुपचाप दण्ड दे पर यदि वह प्रजाजन के प्रति अपराध करने का अभ्यासी हो गया हो तो उसे निकाल दे। पड़ोसी राजा भी यदि अन्याय कर रहा हो तो उसका राज्य तथा सर्वस्व यह बलवान् राजा छीन ले। (११) जिन देशों को जीता है, राजा वहाँ धर्म-व्यवस्था की स्थापना करे। उन विजित राजाओं की उनके चरित्र के अनुसार कुछ वृत्ति निश्चित कर दे।

एक पत्नी व्रत पालन : राज्य छिन जाने पर कूटनीति का अवलम्बन

(१) अपने से प्रेम करने वाली, सुन्दर, उत्तम वस्त्र धारण करने वाली, प्रिय वादिनी, अलंकारों से युक्त, शुद्धाचार सम्पन्न, स्त्री को अपनी भार्या बना कर शयन में प्राप्त होने का अधिकार दे। (२) जो राजा छः घण्टे सोता है, वह सुखी रहता है।

जहाँ तक सम्भव हो, राजा अपना स्थान छोड़ कर न जाए पर नीति के द्वारा ही शत्रु-विजय करे। (३) स्थान से भ्रष्ट दाँत, नख, केश और राजा शोभा को प्राप्त नहीं होते हैं। संकट आने पर राजा किसी पर्वत स्थित दुर्ग का आश्रय ले। (४) वहाँ स्थित हो नीति से अपना राज्य वापस लेने की चेष्टा करे। इस विपत्ति में राजा दुष्टों के धन का अपहरण करता हुआ किसी एक स्थान पर न रहे और किसी का विश्वास न करे। (५) इस स्थिति में राजा बड़ा सावधान रहे। अपने प्राणों की भी चिन्ता न करे। सदा उद्योग परायण होकर चोरी से भी राज्य वापस लेने में संकोच न करे। (६) राजा को पर-स्त्री और कुलीन कन्याओं को दूषित करने से सदा दूर रहना चाहिए —अर्थात्, कभी व्यभिचार न करे। पुत्र के समान पाले हुए भृत्य भी इस व्यवहार से शत्रु हो जाते हैं। (७) उद्योग करने पर भी राजा यदि अपनी पुनः राज्य प्राप्ति में असफल रहे तो इसमें उसका क्या दोष ? भाग्य का ही अपराध है। इस अवस्था में राजा अपने उद्योग को विफल देख तप करता हुआ अन्त में स्वर्ग जाने की चेष्टा करे।

२. राजा बुद्धिमान् सत्यप्रिय मन्त्रियों के परामर्श से ही कार्य करे : युवराज की नियुक्ति

(१) यद्यपि राजा सब विद्याओं में कुशल हो और मन्त्र करना जानता हो, तब भी मन्त्रियों के बिना उसे अकेले मन्त्र को विचारना नहीं चाहिए। (२) बुद्धिमान् राजा को सर्वदा अपने सभासद्, अधिकारी, अमात्यादि और प्रजा के मध्य लोगों की सम्मत्ति से कार्य करना चाहिए। राजा कभी अपने मत के ही पीछे न चले। (३) जो राजा शक्तिशाली, स्वेच्छाचारी हो जाए, उस पर विपत्ति अवश्य आएगी। वह तो अपने संकट का कारण आप ही होता है। उसके राष्ट्र और अमात्य आदि में बहुत अधिक फूट पड़ जाती है। (४) भिन्न-भिन्न मनुष्यों में पृथक्-पृथक् प्रकार का बुद्धि-वैभव देखा गया है। अकेला मनुष्य सब कुछ जान लेने में असमर्थ होता है। इसलिए राजा विद्वान् और बुद्धिमान् पुरुषों की प्रजा-पालन में अवश्य सहायता ले। (५) यह सहायक कुल, गुणशील, स्वभाव में बड़े-चढ़े होने चाहिए, राजा के भक्त और प्रियवादी होना आवश्यक है। यह हितचिन्तक, क्लेश सहन में तत्पर, धर्मात्मा, पवित्र और बुद्धिमान् हों ताकि कुमार्ग गामी राजा को भी बुद्धि द्वारा सन्मार्ग पर ला सकें। इनमें राग, द्वेष, काम, क्रोध, लोभ और आलस्य न हो। (६) यदि राजा का सहायक नीच पुरुष होगा तो वह राजा को धर्म और राज्य से च्युत कर देगा। दैत्य लोग अपने कुकर्म और कुसहाय के कारण ही नष्ट हुए हैं। (७) युवराज और अमात्यगण राजा के दाँए-बाँए नेत्र और कर्ण माने गए हैं। अतः राजा बड़े योग्य व्यक्ति को ही युवराज और अमात्य बनाए। इनके बिना राजा बाहू, कर्ण और नेत्र रहित माना जाता है। इसमें विचार के समय यदि इन्हें नियुक्त न किया गया तो बड़े अनर्थ की सम्भावना हो सकती है। (८) युवराज, राजा की मोहर के बिना भी सारे राज्य कृत्य करने का अधिकारी होता है। अतः राजा अपनी पत्नी से उत्पन्न औरस पुत्र को राज्य का अधिकारी युवराज बनाए।

(६) अपने कनिष्ट चाचा, छोटे भ्राता, बड़े भ्राता के पुत्र, स्वपुत्र, दत्तक पुत्र, व कृत्रिम पुत्र को युवराज पद पर राजा नियुक्त करे। इनके अभाव में अपनी पुत्री के पुत्र—दौहित्र या बहिन के पुत्र —भानजे को युवराज बनाए। अपने सुख के लिए भी फिर इन्हें कभी तंग न करे। (१०) अपने धर्म में तत्पर, शूरवीर, भक्त, नीतिमान् सिंह बालक भी राजपुत्र हों तो भी उनकी यत्न से रक्षा करनी चाहिए। यदि इन अरक्षितों को राज्य का लालच आ गया तो यह राजा को मार सकते हैं। राजपुत्र मत्त हाथी की तरह सर्वदा निरंकुश होते हैं। ये अपने पिता और भ्राता को भी मार देते हैं। फिर, अन्य मनुष्यों का कहाँ बचाव हो सकता है ? (११) मूर्ख बालक भी राजा बनना चाहता है। फिर, युवा पुत्र की राजा बनने की इच्छा कितनी उत्कट होती है—इसका कहना ही क्या ? योग्य भृत्यों से, छल द्वारा राजा स्वयं राजपुत्रों के मन की बात जानता रहे। (१२) राजा मन्त्रियों आदि के द्वारा अपने पुत्रों को नीतिज्ञ, धनुर्वेद विशारद, क्लेश सहिष्णु, वाग दण्ड से न भड़कने वाले, शूरवीर, युद्ध के उत्साही, सर्वकलावित् और सुशिक्षित शीघ्र बनाए। यदि युवराज को ऐसी शिक्षा न दी गई तो राजकुल शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा।

राजपुत्र व युवराज के कर्त्तव्य : पुत्र-पुत्री में भेद नहीं

(१) यदि राजपुत्र दुराचारी भी है, उस राज्य से बाहर नहीं निकालना चाहिए। देश-निकाले से दुःखी हो वह शत्रु के साथ मिल पिता के नाश में समर्थ हो सकता है। (२) यदि कोई राजपुत्र बुरे आचरण में फँस जाए तो उसे उसके व्यसन के साथियों से ही हटा दे या उन्मत्त हाथी की तरह उसे इनके द्वारा सुख के बन्धन में डाल दो। (३) राजा के जो बान्धव बहुत ही बिगड़ गए हों तो उन्हें प्रयत्न के साथ व्याघ्र आदि वन्य-जन्तु, शत्रु, या अन्य किसी छल से राज्य की वृद्धि के लिए मरवा दे। (४) यदि इनका नियन्त्रण नहीं किया गया तो ये प्रजा तथा राजा के विनाश का कारण बन जाते हैं। राजा के बन्धु-बान्धव भी अपने उत्तम गुणों से राजा को सदा प्रसन्न रखें, अन्यथा वे अपने भाग्य से हीन होकर दुःख पा सकते हैं। जो अपने सापिंडय (कुल) से दूर हैं, उन्हें राजा कभी अपना न मानें और न ही उनके पुत्र को दत्तक बनाए। लोग धनिक मनुष्य को देखकर उसका दत्तक पुत्र बनने की बड़ी इच्छा करते हैं। (५) अन्य कुल के पुत्र की अपेक्षा तो अपने कुल की कन्या का पुत्र श्रेष्ठ है क्योंकि पुत्री भी तो अपने अंग से ही पैदा होती है। उसका स्थान पुत्र के ही बराबर है। अतः उसका पुत्र अपना पुत्रवत् ही मानना चाहिए। (६) पिंडदान में पुत्र और दौहित्र में शास्त्र कोई भेद नहीं करता। पृथ्वी और प्रजा के पालन के हेतु राजा दत्तक पुत्र की भी अवश्य पालना करे। राजपुत्र को चाहिए कि वह युवराज बनकर कभी राजा से बिगाड़ न करे। (७) युवराज अपनी सम्पत्ति के मद से माता, पिता, आचार्य, भ्राता, भगिनी, राजा के अन्य सुहृद् तथा राष्ट्र के मान्य सज्जनों का कभी अपमान न करे और न पीड़ा पहुँचाए। युवराज होने से उसे बहुत कुछ ऐश्वर्य प्राप्त हो गया है, फिर भी वह अपने पिता, वृद्ध राजा की आज्ञा में रहे। पुत्र का पिता की आज्ञा में रहना बड़ा ही श्रेयस्कर

है। (८) अपने सहोदर भाइयों में युवराज अपनी अधिकता न दिखाए। (९) जो राजपुत्र पिता की आज्ञा का उल्लंघन करता है, वह ऊँचे पद पर पहुँच कर भी अवश्य एक दिन गिरता है। (१०) युवराज सदा वही काम करे जिससे अपना पिता सन्तुष्ट हो। पिता के लिए तनिक भी विषाद पैदा करने वाला कार्य राजपुत्र कभी न करे। (११) यदि किसी की चुगली व अन्य कारण से पिता नाराज़ हो गया हो तो अमात्य आदि की सहायता से राजा को एकान्त में समझा दे। जब राजा प्रसन्न हो जाए तो वह ऐसे चुगलखोर को कड़ा दण्ड दे। (१२) प्रातःकाल उठकर राजपुत्र प्रतिदिन पिता-माता, गुरु को प्रणाम करे। (१३) दिन भर में जो कार्य युवराज करे, वह प्रतिदिन राजा को सुनाए। किसी प्रकार का विरोध न कर राजपुत्र घर में ही निवास करे। (१४) युवराज अपने उत्तम गुणों से सदा प्रजा का रंजन करे। धन का दानी होकर आत्माभिमान के साथ सबको वश में रखे। (१५) इस प्रकार राजपुत्र धीरे-धीरे शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति गुण संग्रह करे। ऐसा युवराज चिरकाल तक पृथ्वी का शासन कर पाता है।

राज सेवकों के गुण व दोष

(१) कर्म, सहवास, गुण, शील, कुलादि से राजा नित्य, अपने भृत्यों की परीक्षा करे। जो विश्वास योग्य हो, उसी पर विश्वास करे। भृत्यों की केवल जाति या कुल पर दृष्टि न रख उनके शील और कर्म की परख करे। किसी भी जाति या केवल उच्च कुल होने से उसकी श्रेष्ठता नहीं हो जाती। (२) सत्यवान्, गुण सम्पन्न, कुलीन, सुशील, निरालस, भृत्य जिस तरह अपने काम को सम्पादित करता है, उससे भी अधिक वह स्वामी के कार्य को करे। (३) भृत्य चौगुना प्रयत्न कर मन, वाणी और शरीर से स्वामी का कार्य करे। जितना वेतन मिलता है, उसी में सन्तुष्ट रहता हुआ मृदुभाषी, कार्य दक्ष, शुद्धाचार और दृढ़ प्रतिज्ञ बना रहे। सदा परोपकार में रत और अपकार से दूर रहे। अपने स्वामी का अपराध करने वाले अपने पुत्र या पिता पर भी कड़ी दृष्टि रखे। (४) यदि स्वामी भूल से कोई अन्याय करने लगे तो सेवक उसे सुझा दे। भूल करने वाले राजा का साथी स्वयं न हो। स्वामी की वाणी को बीच में न काटे और न उसकी त्रुटियों को प्रकट करे। (५) सत्कार्य में देरी न करे और बुरे काम से झिझकता रहे। सेवक अपने स्वामी की भार्या, पुत्र, मित्र आदि के छिद्र देखने की कभी चेष्टा न करे। (६) स्वामी के भार्या, पुत्र और बन्धुओं की भी प्रतिष्ठा करे, उनके सम्मुख अपनी डींग न मारे और न उनसे स्पर्धा करे। ईर्ष्या, निन्दा से सेवक को सदा बचना चाहिए। (७) सेवक कभी अधिकार की इच्छा न करता हुआ निःस्पृह और सदा आनन्दित रहे। जो कुछ स्वामी के भार्या पुत्र आदि वस्त्रादि प्रदान करें, उनके सम्मुख वही धारण करे। (८) सेवक अपने वेतन के तुल्य ही खर्च करे। उसे उदार, दयालु और शूरवीर होना चाहिए और राजा के विगड़ते कार्य की सूचना एकान्त में दे। (९) इन गुणों से विपरीत सेवक निन्दनीय समझे जाते हैं। जिन भृत्यों का वेतन थोड़ा है या दण्ड से दुःखी है, जो दुष्ट, कायर, लालची, सामने प्रिय

बोलने वाले, उन्मत्त, व्यसनगुण, आतुर, रिश्वतखोर, जुआरी, नास्तिक, पाखंडी, सत्य-वाणी के निन्दक, अपमानित, कटु वचनों से मर्माहत, अत्यन्त, क्रोधी, उतावले और धर्महीन हैं—उन्हें सेवक ही नहीं समझना चाहिए।

राज्य की दस प्रकृतियाँ

(१) पुरोधाः (पुरोहित), (२) राजा का प्रतिनिधि, (३) प्रधान, (४) सचिव, (५) मन्त्री, (६) प्राड्विवाक (वकील), (७) पंडित, (८) सुमंत्री, (९) अमात्य और (१०) दूत—यह दस प्रकृति कहाते हैं। इन दस के साथ ग्यारहवाँ राजा माना गया है। इनका वेतन क्रमशः दशमांश अधिक होता है। (२) इन सब में पुरोधाः (पुरोहित) का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। वह राजा और राष्ट्र—दोनों का पालक है। इसके बाद प्रतिनिधि और उसके बाद प्रधान मन्त्री का, फिर सचिव, फिर मंत्री, फिर प्राड्विवाक, फिर पण्डित, उसके बाद सुमंत्री और फिर अमात्य का स्थान है। इसके बाद दूत का पद है। इनमें क्रम से पूर्व पूर्व का श्रेष्ठ है। (३) पुरोहित, मन्त्रानुसार अनुष्ठान में कुशल वेद त्रयी का ज्ञाता, कर्मकाण्ड ज्ञाता, जितेन्द्रिय, क्रोध विहीन और लोभ मोह से रहित हो। वेद के छः अंगों का ज्ञाता, धनुर्वेद का मर्मज्ञ, अर्थ और धर्म का तत्त्वज्ञ हो। पुरोहित के कोप के डर से राजा धर्मनीति-परायण रहे। नीतिशास्त्र, व्यूह रचना आदि में भी पुरोहित कुशल होता हुआ, आचार्य रूप से शाप और अनुग्रह में समर्थ हो। (४) राजा को उत्तम मन्त्रणा दे, धर्म में रखने वाला सुमन्त्री, राज्य, प्रजा, सेना, कोश, राजा की उत्तमता और शत्रु का नाश—इत्यादि की मन्त्रणा देने वाला मन्त्री कहलाता है। (५) राजा के कार्य-अकार्य का ज्ञाता प्रतिनिधि, सब कार्यों का द्रष्टा प्रधान, सेना की पड़ताल करने वाला सचिव नीति में कुशल मन्त्रणा देने वाला मन्त्री, धर्म तत्त्व का ज्ञाता राज पण्डित, लोक, शास्त्र और नीति का ज्ञाता प्राड्विवाक (वकील), देश काल का ज्ञाता अमात्य, आय-व्यय रखने वाला सुमंत्री, इंगित, आकार, चेष्टा जानने वाला स्मृतिमान्, देश काल का ज्ञाता, सन्धि विग्रह में समर्थ वाग्मी, निर्भीक—दूत कहलाता है। (६) राजा इन सब कर्मचारियों पर पूरी दृष्टि रखे। इन अमात्य आदि को राजा समय-समय पर बदल पृथक्-पृथक् कार्यों पर नियुक्त करता रहे। (७) अपने से अधिक शक्तिशाली व्यक्ति को किसी अधिकार पर राजा न लगाए। यह दशों प्रकृति के अंग समान बलशील हों।

अधिकारियों की नियुक्ति और योग्यता

(१) एक पद पर तीन अधिकारी हों। उनमें एक मुख्य और दो गौण। मुख्य अधिक विद्वान् हो। (२) इन अधिकारियों के कार्य की पड़ताल करने वाले दो निरीक्षक हों। वे तीन, पाँच, सात या दस वर्ष में इनके काम की पड़तात अवश्य करते रहें। (३) इनके कामों में जितना जिसका कौशल है, उसे तदनुकूल पद पर परिवर्तन कर दें। राजा किसी निकम्मे व्यक्ति को कभी देर तक अधिकार पर न रखे। (४) विनयी पुरुष को ही अधिकार पर रखे, क्योंकि अधिकार को पाकर कौन उन्मत्त

नहीं हो जाता ? (५) उत्तम कार्य करने वाले को ऊँचे पद पर लगाए और उसके स्थान पर उसके अनुभवी सहायक को लगाए। (६) यदि अनुयायी कुशल न हो तो किसी अन्य अधिकारी को उस स्थान पर परिवर्तन कर दे। यदि उसका पुत्र अनुभवी हो चुका हो तो उसे ही इस पद पर लगा दे। (७) इस प्रकार श्रेष्ठ पद पर तदनुकूल ही अधिकारी लगाए। यह नियुक्ति, यथाशक्ति, अनुक्रम से ही होनी चाहिए। (८) जैसा अधिकार हो, उसी के अनुसार कई निरीक्षक नियुक्त किए जा सकते हैं। यह भी हो सकता है कि किसी अधिकारी को उसके विश्वास और योग्यता के हेतु निरीक्षक लगा दिया जाए। (९) इसके सिवाय जो अन्य छोटे कार्यों के अधिकारी हैं, उन्हें इसी प्रकार नियुक्त करे। (१०) गज, अश्व, रथ, पैदल, पशु, उष्ट्र, मृग, पक्षी, सुवर्ण, रत्न, रजत, वस्त्रादि के अध्यक्ष, वितान (शामियाना, तम्बू) आदि अन्य भण्डारों के अधिपति, पाकशाला अध्यक्ष, उद्यानों के अधिकारी, प्रासादों के अध्यक्ष, कोष - भण्डार आदि के स्वामी, मन्दिरों के अधिपति, दानाध्यक्ष—इत्यादि की भी इसी तरह नियुक्ति करे और परिवर्तन करता रहे।

(११) दण्डाधिपति (मैजिस्ट्रेट), ग्राम के नेता (चौधरी), तीसरे शुल्क उगाहने वाले, चोथे लेखाधिपति, पाँचवें महसूल लेने वाले और छटे द्वारपाल—इन छः कर्मचारियों को अनेक ग्राम में नियुक्त करे। (१२) तपस्वी, दानशील, श्रुति-स्मृति, में विशारद सृष्टि वंश को जानने वाले (पौराणिक), शास्त्रज्ञ, ज्योतिषी, मन्त्रशास्त्री, वैद्य, कर्मकाण्डी, तान्त्रिक तथा अन्य विद्याओं में कुशल, बुद्धिमान्, जितेन्द्रिय पुरुषों का भी राजा पालन करे। दान और मान से सदा उनका सत्कार करता रहे। जो राजा ऐसा नहीं करता, वह राज्य से भ्रष्ट हो अपयश प्राप्त करता है। (१३) जिन कार्यों को कई मनुष्य कर सकते हैं, उन-उन कार्यों के योग्य कुशल मनुष्यों को खोज-खोज कर वहाँ नियुक्त करे। (१४) कोई अक्षर ऐसा नहीं है जिसका मंत्र न बन सकता हो, कोई जड़ी-बूटी ऐसी नहीं जो औषधि न बन सके। कोई पुरुष अयोग्य नहीं होता पर उसे उपयुक्त काम पर लगाने वाला योग्य व्यक्ति चाहिए।

राजा और राजसेवक : राजदरबार का शिष्टाचार

(१) सत्याचरण और परोपकार बड़ा पवित्र माना गया है। राजआज्ञा में तत्पर भृत्यों को ही उनके स्थान पर रहने दे, अन्यथा हटा दे। (२) हिंसा और मिथ्या भाषण—इन दोनों प्रबल पापों से युक्त भृत्यों को कभी अपनी सेवा या राज्य के किसी पद पर न रहने दे। (३) उत्तम भृत्य वही है जो उचित काम को उचित समय कर डाले और आवश्यक बात राजा को ठीक समय पर जता दे। ऐसे भृत्य का ही राजदरबार में आदर होता है। (४) राज सेवक प्रातःकाल उठ, नित्य कर्मों से निवृत्त हो, परमात्मा का स्मरण कर, सन्ध्या-वन्दन का कार्यालय में पहुँच कार्य-अकार्य का विचार करे।

(५) जो व्यक्ति राजा के पास जाना चाहे, द्वारपाल उसे रोक कर, राजा को सूचित करे और उसकी आज्ञा होने पर राजा के पास ले जाए। (६) दण्डधर सेवक

सभा में आये व्यक्तियों का राजा से परिचय कराए और उनके प्रणाम व भेंट की राजा को सूचना दे, उन आगन्तुकों को यथा स्थान बैठाए। (७) राज सेवक राजा की प्रयत्न से सेवा करे और राजा के सम्मुख उचित भाषण करे। (८) विवाद के समय राजा की आज्ञा से ही निश्चित अर्थ का प्रतिपादन करे। राजा के समक्ष शीघ्रता से न बोले। अपनी वेश-भूषा सरल और सादा रखे। जब राजा बोलने के लिए आमन्त्रित करे, तब राज सेवक विषय पर अपने कार्यों का निवेदन करे। (९) राजा जिस स्थान पर बैठने को कहे, प्रसन्नता से वहीं बैठ जाए। (१०) बुद्धिमान् राज सेवक अभिमान त्यागकर आपत्ति, कार्यकाल में विलम्ब व संकट आने की सूचना, राजा के हित की दृष्टि से, बिना पूछे भी कह दे। उस समय वह प्रिय, तथ्य और धर्मार्थ युक्त ही बात कहे। (११) राजा किसी भी बहाने से प्रजा का धन न छीने। चाहे कितना भी कष्ट भूखा रहने से हो, पर अनर्थ युक्त वृत्ति कभी न करे। (१२) राजा ने जिस राज सेवक को जिस कार्य पर लगाया है, उसे ही करे। अन्य के अधिकार में कभी हस्तक्षेप न करे। किसी की चुगली न करता हुआ अपना काम यथाशक्ति करे। (१३) अपने स्वामी के गुप्त मंत्र और गुप्त कर्म को कभी प्रकाशित न करे। किसी से विद्वेष व किसी के विनाश का विचार न करता हुआ राजा मेरा परममित्र है—ऐसा समझ स्वेच्छाचारी न बने। (१४) राजा की वेश-भूषा की नकल न करे और राजा के अभिप्राय को संकेत व आकार से जान ले।

(१५) राज सेवक कभी अपने अधिकार का अभिमान प्रदर्शित न करे। जिस-जिस कार्य पर राजा ने नियुक्त किया है, वहाँ अपने अधिकार की रक्षा करे। अधिकारीगण और राजा— दोनों के सदाचार पर स्थित रहने से ही राज्यलक्ष्मी स्थिर रहती है। अन्य के अधिकार की बात ज्ञात भी हो तब भी उसकी चर्चा न करे। राजा कभी किसी अन्य के मुख से किसी के विषय में न सुने। (१६) जो अधिकारी राजा को हित-अहित का बोध न कराए, वह सेवक रूप में प्रच्छन्न वैरी समझा जाए। (१७) मंत्रियों के मुख से जो राजा हित-अहित की बात नहीं सुनता, राजा के रूप में वह लुटेरा समझना चाहिए। (१८) जो मन्त्री राज पुत्रों के साथ गाढ़े प्रेम का व्यवहार करते हैं, वे उत्तम मंत्री हैं। जो राजपुत्रों से विरोध बढ़ा लेते हैं, वह प्रच्छन्न चोर समझे जाने चाहिए। (१९) सेवक राजा से धन ही लेता है पर राजा तो सेवक के प्राण भी युक्ति से ले सकता है। युद्ध आदि महान् कार्य उपस्थित होने पर राजा भृत्यों के प्राणों से भी अपनी रक्षा कर सकता है।

राजा के बाद क्रमिक अधिकारी और उनका सम्मान

(१) राजा के बाद युवराज का पद है। अमात्य आदि अधिकारी इसका भी मान करते रहें। इससे न्यून पद अमात्यादिकों का और उससे न्यून अधिकारी गण हैं। (२) दस हज़ार सेना के अधिपति का पद मंत्री के तुल्य है। सहस्त्र सैनिकों का अधिपति पद मंत्री से न्यून है। राजा के साथ कभी खेल न खेले और खेले तो उसे ही जितावे या उसका विशेष ध्यान रखे। (३) मंत्रीगण कभी राजपत्नी या राजकन्या

का अपमान न करें। राजा के सम्बन्धी व सुहृद गलानी आदर योग्य माने गए हैं। (४) जब राजा बुलाए तो अपने सब काम छोड़ कर तत्काल जाए। राजा सुमंत्रित कार्य को अपने घनिष्ट मित्र से भी न कहे। (५) अपने वेतन के और राजा द्वारा दिए पुरस्कार के अतिरिक्त राज्य धन को राज सेवक हाथ भी न लगाए। राजा की आज्ञा बिना अपनी नौकरी से कुछ उत्तम या सर्वोत्तम पद की इच्छा न करे। (६) अपने द्रव्य के लोभ से किसी के भी अच्छे कार्य का राजाधिकारी नाश न करे। अपने प्राणों से भी समय पर राजा की रक्षा करे। (७) नए कर और शुल्कों से प्रजा तंग हो जाती है। जो राजा प्रजा के गुण, नीति और बल का द्वेषी है, वह कुल क्रमागत राजा होने पर अधार्मिक राजा कहा जाता है। ऐसे राष्ट्र विनाशक राजा की भक्ति का परित्याग कर दे। (८) पुरोहित ऐसे राजा के स्थान पर राज कुल में उत्पन्न किसी दूसरे योग्य व्यक्ति को चुन ले और प्रजा की सम्मति से राज्य रक्षा के उद्देश्य से उसे सिंहासन पर स्थापित करे। (९) अस्त्रधारी सेवक और राजा के प्रिय रक्षक राजा की आज्ञानुसार राजा से दस हाथ की दूरी पर रहें ताकि कहीं अचानक राजा पर अस्त्र न गिर पड़े। (१०) राजा से पाँच हाथ की दूरी पर मंत्री और लेखकों के आसन हों। सेनापति के अतिरिक्त कोई भी व्यक्ति शस्त्रास्त्र से सुसज्जित राजसभा में प्रवेश न करे। राजा के साथियों में सर्वश्रेष्ठ पुरोहित का पद है, उसके बाद सेनापति का पद है। (११) राजा के सम्बन्धी और सुहृदों का मध्यम स्थान माना गया है। मंत्रीगण उत्तम माने जाते हैं। अधिकारी मध्यम, दर्शक या लेखक साधारण स्थान, अन्य सेवा करने वाले भ्रत्य इससे भी निम्न और अन्य परिचारक गण निम्नतर माने गए है। (१२) पुरोहित को आता देख राजा उठकर आगे आये, सेनापति को देखकर खड़ा हो जाए, सुहृद सम्बन्धी आए तो अपने आसन पर बैठा ले, मंत्री गण में से कोई आए तो उससे कुशल प्रश्न करे, अन्य राज सेवकों की ओर मुस्करा कर देखे। सभा में स्थित राजा आलस्य छोड़ अधिकारियों के साथ पूर्वोक्त व्यवहार करे।

राजा की प्रत्येक आज्ञा लिखित हो : कर्मचारियों का कार्य वृत्त

(१) राजा अपने भ्रत्यों के साथ हँसी दिल्लगी (परिहास) और क्रीड़ा न करे। इससे राजा का अपमान और उसे भय उत्पन्न हो सकता है और कई प्रकार के दोष पैदा हो जाते हैं। (२) कोई भी भृत्य राजा के लिखित आज्ञापत्र के बिना कोई काम न करे। राजा भी, चाहे छोटी आज्ञा हो या बड़ी, बिना लेख के जारी न करे। (३) भूल जाना तो पुरुष का स्वभाव है। लेख ही किसी बात का सच्चा प्रमाण होता है। जो राजा बिना लेख के आज्ञा दे और राज सेवक बिना लिखे आज्ञापत्र के कार्य में प्रवृत्त हो तो दोनों ही चोर समझने चाहिए। राजा की मुद्रा से निकला लेख ही राजा है। राजा का शरीर राजा नहीं होता। (४) जिस आज्ञापत्र पर राजा की मोहर लग चुकी है, वह सबसे अधिक प्रमाण-पत्र है। जिस पर मोहर न हो पर राजा का लेख है, वह पहले मुद्रा वाले से न्यून है। मंत्री आदि के लेख इससे न्यून हैं। पुरवासियों का लेख सब साधनों से युक्त होने पर भी इससे कनिष्ठ है। (५) राजा ने जिस-जिस मनुष्य को

जिस काम पर लगा दिया, वह अमात्य से लेकर युवराज तक क्रम से दैनिक, मासिक वार्षिक, बहुवार्षिक—कामों की सूचना राजा के सम्मुख रखते रहें। इन वृत्तों की रसीद भी कर्मचारी गण अवश्य प्राप्त कर लें। (६) बहुत समय बीत जाने पर लोग भूल जाया करते हैं, या अन्यथा प्रतीत होने लगता है। इसे स्मरण रखने के लिए पूर्वोक्त लेख लिखने का निर्देश दिया गया है।

विविध प्रकार के लेखों और पत्रों के नाम

(१) आज्ञा के अनुकूल कर्त्तव्य कर्म से संयुक्त, अगले कर्त्तव्य का निश्चित आज्ञा सहित पत्र 'जय पत्र' कहाता है। (२) सामन्त, भृत्य राष्ट्र पालादिकों को जिससे काम करने की आज्ञा दी जाए, वह 'आज्ञा पत्र' कहाता है। (३) ऋत्विक्, पुरोहित, आचार्य तथा अन्य पूज्य व्यक्तियों को कार्य करने की दी गई प्रेरणा 'प्रज्ञापन पत्र' कही जाती है। (४) तुमको निश्चित रूप से यह करना चाहिए। मेरी आज्ञा द्वारा अपने कर्त्तव्य को सुनो - राजा के हस्ताक्षरों से निकला ऐसा आदेश 'शासन पत्र' कहाता है। (५) किसी की शूरवीरता पर प्रसन्न हो भूमि, ग्राम आदि लिखकर राजा जो प्रदान करता है, वह 'तोषपत्र' कहाता है। कर और भेंट के सम्बन्ध में लिखा पत्र —'भोग पत्र' कहाता है। (६) भाई आदि में अपनी इच्छा अनुसार किया बटवारा—'भाग लेख्य' कहलाता है। (७) भूमि आदि कुछ देकर जो व्यक्ति उसका प्रमाण पत्र प्रदान करता है, कभी वापस न लेने के लिए वह—'दान पत्र' कहाता है। (८) घर, खेत आदि क्रय करके उसके मूल्य और माप का प्रमाणपत्र 'क्रय लेख्य' कहलाता है। (९) पशु, आभूषण आदि गिरवी का लेख 'बहुलेख्य' कहाता है और ग्राम, देश के लोग परस्पर मिलकर जो अविरोधी लेख लिखते हैं वह 'संवित् पत्र' कहाता है। (१०) ब्याज सहित ऋण देने, दिलाने, साक्षीयुक्त लेख 'ऋण लेख्य' कहा जाता है। (११) जो शर्त पूरी कर दी गयी हो व उसके निमित्त किया गया प्रायश्चित, साक्षियों सहित लिखा लेख 'शुद्धि पत्र' कहाता है। (१२) अपना-अपना भाग डालकर साँझे व्यापार का लेख 'सामयिक पत्र' कहा जाता है। (१३) अधिकारी, अमात्यों द्वारा दोनों वादियों के लिए मानने योग्य पत्र 'सम्मति पत्र' कहाता है। (१४) अपने इतिहास और पूज्य व्यक्ति के परिचय और कार्य बोधक मांगलिक भावना से लिखा गया लेख 'क्षेम पत्र' कहाता है। (१५) अपने दुःखों और आक्रमणों सहित लिखा लेख 'भावा पत्र' कहाता है।

आय और धन के विविध रूप

(१) छोटी-बड़ी चीज़ें मूल्य, तोल आदि से भिन्न, विशेष संज्ञाओं से युक्त, उन-उन संज्ञाओं के अनुसार नामधारी बहुत-से लेख पत्र (रजिस्टर) होते हैं। उनमें प्रति वर्ष, प्रति मास और प्रति दिन की आमदनी लिखी जाती है। यह 'आय पत्र' कहाता है। (२) जो धन अन्य के आधीन कर दिया गया, वह व्यय कहाता है। जो प्राचीन आय आने वाले कार्यों की साधक हो, उसे 'संचित धन' कहते हैं। (३) व्यय

भी दो प्रकार का है। एक—जिसका उपयोग कर किया गया हो। दूसरा—किसी अन्य को समर्पित कर दिया गया हो। (४) संचित धन के भी तीन भेद होते हैं। एक जिस संचित धन का स्वामी निश्चित हो, वह 'निश्चितान्य स्वामिक', जिसका कोई स्वामी न हो वह 'अनिश्चितान्य स्वामिक' और जिस पर अपना अधिकार हो वह 'स्वत्व निश्चित' कहाता है। (५) धन के तीन भेद अन्य प्रकार से हैं। (क) जिस धन को विश्वासपूर्वक, अपने पास रख लिया हो वह 'औपनिध्य', (ख) बिना सूद लिया द्रव्य या आभूषण आदि पदार्थ 'स्थित द्रव्य' अथवा 'वाचतिक' और (ग) जिस धन को ब्याज के साथ स्वीकार किया हो, वह 'औत्तमर्णिक' कहाता है। यह ऋण यदि वृद्धि के निमित्त ग्रहण किया हो तो वह भी 'औत्तमर्णिक' कहाता है।

(६) अचानक मिला कोष—जिसके स्वामी का पता न हो—यह 'साहजिक धन' और जो ब्याज से धन बढ़ गया वह 'अधिक' कहाता है। (७) दिन, मास और वर्ष में जो आय प्रति दिन, प्रति मास, प्रति वर्ष प्राप्त होती रहे, वह 'साहजिक' कही जाती है। (८) जो वस्तु दाय भाग में प्राप्त हुई हो, 'स्वभावज' जो मूल्य से हुआ अधिक लाभ व ब्याज से प्राप्त अथवा यज्ञादि की दक्षिणा 'प्रकृष्ट धन' कहा जाता है। (९) राजा से मिला पारितोषक, व वेतन से प्राप्त अथवा विजय में मिला हो, वह सारा धन 'स्व-स्वत्वाधिक' कहाता है। इसके अतिरिक्त अन्य धन कोष 'साहजिक' कहाता है। (१०) पूर्व वर्ष का शेष और वर्तमान वर्ष का धन, इस प्रकार 'संचित धन' दो प्रकार का होता है। (११) अधिक और साहजिक धन भी दो प्रकार के हैं, एक पृथ्वी से प्राप्त और दूसरा अन्य स्थानों से प्राप्त। (१२) नहर आदि कृत्रिम जल, देश, ग्राम व पुर से प्राप्त धन अधिक, मध्य और अल्प भेद से तीन प्रकार का होता है। यह सब पार्थिव धन के रूप हैं। (१३) शुल्क, दण्ड, आकर (खान), उपायन (भेंट) आदि से प्राप्त धन 'पार्थिवेतर द्रव्य' कहाता है। क्योंकि वह भूमि से पृथक् मार्गों से प्राप्त होता है।

व्यय और तोल-माप के विविध रूप

(१) जिस महकमे से जो आमदनी हो, उसे उसी महकमे में खर्च करना उचित है। (२) व्यय भी निधि, उपनिधि और विनिमय—इस प्रकार तीन भागों का है। (३) जो व्याज या बिना व्याज के ऋण दिया जाए, वह आवर्तक व्यय, जो पृथ्वी में गाड़ दिया जाए, वह निधि और किसी के पास धरोहर रूप में हो वह 'उपनिधि' कहाता है। दिए हुए मूल्य से जो वस्तु प्राप्त हो वह 'विनिमय व्यय' कहाता है। जो व्याज अथवा विना व्याज के ऋण दिया जाए वह 'आधमर्णिक' कहाता है। (४) 'स्वत्व निवर्तक' व्यय वह है जो इस लोक व परलोक के उद्देश्य से दिया जाता है। (५) प्रतिदान, पारितोषक, वेतन और भोग्य—यह चार प्रकार का व्यय इस लोक के उद्देश्य से होता है। परलोक के उद्देश्य से किया गया व्यय अनेक भेद वाला होता है। (६) जो शेष धन में धन रखवा दिया जाए, वह 'पुनरावर्तक' होता है क्योंकि वह पुनः लिया जाता है। (७) धान्य, वस्त्र, गृह उद्यान, गौ, गज, रथ आदि, विद्या, राज्य,

अधिक लाभ व धन की प्राप्ति व रक्षा में व्यय किया गया धन 'उपभोग' कहाता है। (८) मंत्री, शिल्प, नाट्य, वैद्य, मृग, पाक पक्षी आदि की शाला और उनमें नियुक्त सेवकों पर किया गया व्यय 'भोग व्यय' कहाता है। (९) जप, होम, अर्चन और दान—इन चारों पर किया गया व्यय 'पारलौकिक व्यय' कहाता है। (१०) क्रय, ऋण, किसी घटना व अन्य स्थल में किया व्यय 'निवर्तक' होता है। दिए जाने और लिए जाने—सब द्रव्य लिखा जाना चाहिए। (११) आय और व्यय का लेख घटाना-बढ़ाना नहीं चाहिए।

(११) अंगुलि आदि से जो मापा जाए वह 'मान', तराजू-बाटों से तोला जाए वह 'उपमान', किसी पात्र से मापा जाए वह 'परिमाण' और गिनती—एक-दो-तीन का हिसाब 'संख्या' कहाता है।

पत्र लिखने की विधि : प्रत्येक पत्र पर मोहर आवश्यक

(१) लिखे गए पत्र की सब पंक्तियाँ एक सदृश हों। जैसी पंक्ति आरम्भ हो, वैसी ही सीधी चली जानी चाहिए। (२) पत्र के ऊपर राजा अपनी इच्छानुसार मोहर लगा दे। राज चिह्न लेख और विचार के अनुसार ही हो। (३) मन्त्री, वकील, पण्डित और दूत—यह लेख को सुन्दर ढंग से लिखें जो उनके पद के अयोग्य प्रामाणित न हो। (४) यह लेख अच्छी तरह लिखा गया है यह बात प्रथम अमात्य लिखे, इसके बाद सुमन्त्र लिखे। फिर, प्रधान लिखे कि यह सत्य और यथार्थ है। सुमन्त देखे कि विचार कर लिखा गया है। प्रतिनिधि इस पर मोहर लगावे कि यह पत्र सब को मानना चाहिए। (५) युवराज और उसके बाद पुरोहित भी यह लिख दे कि यह अवश्य माननीय है। लेख पत्र पर दोनों लिखे। (६) ऐसे लेख पर सब, अपने नाम की मोहर लगा दें। तत्पश्चात् राजा भी अपने हस्ताक्षर से लिखे कि हमने भी इसे स्वीकृत किया है। (७) कार्याधिक्य से यदि राजा न लिख सके तो युवराज आदि उसे देख लें और राजा उस पर स्वीकृति दे दे। (८) मन्त्रिगण भी जो अपने अधिकार से पत्र लिखें उस पर अपनी मोहर लगायें। यदि राजा न देख सके तो भी राजा ने देख लिया है, ऐसी मोहर प्रत्येक पत्र पर हो। (९) बही खाते में बाँयी ओर पहले आमदनी लिखें, फिर दाँयी ओर खर्च लिखना चाहिए। (१०) ऊपर लिखी रकमों का जोड़ नीचे पंक्ति में लगाया जाए। यह तभी होगा जब अधिक देशव्यापी द्रव्य और न्यून देशव्यापी द्रव्य एक कोटि में मान लिए गए हों। (११) जिसका बहुत स्थानों से सम्बन्ध हो वह व्यापक और जो न्यूनदेशवृत्ति होता है, वह व्याप्य माना गया है। अवयव (अंग) को व्याप्य और अवयवी (अंगी) को व्यापक कहते हैं। (१२) जो सजातीय (लोहा-लोहा, पीतल-पीतल आदि) पदार्थ हों, उनके समूह का एक स्थान पर उल्लेख करते हुए जो वस्तु जिस क्रम से प्राप्त हुई है, उसी क्रम से लिखें, आगे पीछे न करें। (१३) कितनी आय, कितना व्यय, कितना अभी शेष—इसका पता 'विशिष्ट संज्ञक' पत्र से लगता है।

अंक गणना : सेवकों को वेतन और उनका काम

(१) गुंजा, मासा, कर्ष, पदार्थ और प्रस्थ क्रमशः दस गुने होते हैं, अर्थात्, दस गुना का एक मासा, दस मासों का एक कर्ष होता है। पाँच प्रस्थ का एक आढक, आठ आढक का एक अर्मण और बीस अर्मण की एक खारिका मानी गई है। प्रत्येक देश में इन तोलों में कुछ भिन्नता भी रहती है। (२) पाँच अँगुल गहरा और चार अँगुल चौड़ा पात्र प्रस्थपाद होता है। (३) ऊपर जो अंक हो, उसके नीचे अंक लिखते जाओ। एक दहाई बढ़ाते जाओ तो परार्द्ध संख्या बढ़ती जायगी। (४) व्यवहार योग्य परार्द्ध को समझकर यहीं संख्या को रोक दिया गया है। (५) एक, दश, शत, सहस्र, दश सहस्र, लक्ष, दस लक्ष, करोड़, अरब, अब्ज, खरब, निखर्व, पद्म, शंख, अविध, मध्य, अन्त, परार्द्ध संज्ञक संख्या होती है। (६) काल की गणना तीन तरह होती है। एक चन्द्र गणना, दूसरी सौर गणना और तीसरी अमावस्या से होती है। (७) वृत्ति दान में सौर मास से, ब्याज वृद्धि में चन्द्र गणना से, और दैनिक मजदूरी की गणना अमावस्या से होनी चाहिए। (८) कार्य के मान, काल के मान और कार्य और काल के मान से मजदूरी तीन तरह की होती है। (९) इस पार को तुम वहाँ ले चलो, यह रकम मिलेगी—यह कार्य माना भृति। तुम्हें प्रति वर्ष या प्रति मास इतना वेतन मिलेगा,– यह काल माना भृति। इतने काल में इतना कार्य करने पर इतनी वृत्ति मिलेगी – इस तरह के ठहराव के साथ कार्य काल मिता भृति मानी गयी है। (१०) इस भृति (वेतन) देने में जालसाजी व देर नहीं करनी चाहिए। आवश्यकीय वस्तु संचालन योग्य भृति मध्यम, अन्न-वस्त्र आदि से पूरे घर की पूर्ति हो— यह उत्तम और जिससे केवल एक का ही पेट भरे—वह अधम भृति (वृत्ति) कही गई है। (११) दी हुई भृति से ही अपने पोषण करने योग्य परिवार का पोषण होता है। जो सेवक जिस वृत्ति के योग्य है राजा उसे अवश्य उतनी ही दे। इसी में राजा प्रजा दोनों का हित है। (१२) जिन सेवकों को राजा न्यून वृत्ति देता है, वह उन्हें एक प्रकार का शत्रु बना लेता है। इससे राजा की बड़ी हानि होती है। (१३) भोजन और आच्छादन का जिससे निर्वाह चल सके, राजा शूद्र को इतनी पर्याप्त वृत्ति प्रदान करे। जो मांस भक्षकों का अधिक पोषक होता है, वह अवश्य पाप का भागी होता है। (१४) सेवकों को घर का काम करने के लिए दिन में एक प्रहर की छुट्टी दे, रात को तीन प्रहर की छुट्टी दे। (१५) यदि सेवक दिन मात्र का है तो उसे आधे पहर की छुट्टी दे। (१५) सेवकों को त्यौहारों की छुट्टी अवश्य दे और श्राद्ध की छुट्टी भी अवश्य दे।

सेवकों के प्रति शिष्ट और उदार व्यवहार

(१६) यदि सेवक साल भर बीमार रहा हो तो तीन मास का वेतन दे, यदि वह पाँच वर्ष से अधिक पुराना हो तो उसे कुछ कम करके वेतन दे। (१७) यदि एक वर्ष से अधिक बीमार रहा हो तो छः मास का वेतन दे। (१८) यदि कोई भृत्य गुणी हो तो उसे रोगी होने की अवस्था में भी आधा वेतन देता रहे। (१९) एक वर्ष

में राजा अपने सेवकों को आधे मास का अतिरिक्त वेतन दे। (२०) चालीस वर्ष से सेवा करने वाले भृत्य से सेवा न लेकर उसके भरण-पोषण के लिए यावज्जीवन आधा वेतन देता रहे। जब तक उसका बालक असमर्थ हो, तब तक उस वृद्ध के वेतन का चौथाई भाग बालक को मिलता रहे। (२१) यदि बालक न हो और भार्या सदाचारिणी तो तथा उसकी कन्या हो तो राजा अपने मंगल के ध्यान से उन्हें मूल वेतन का भी आठवाँ भाग प्रति वर्ष दे। (२२) श्रेष्ठ, परिश्रमी और अधिक कार्य करने वाले सेवक को राजा पुरस्कार रूप में वेतन का अष्टमाँश दे। यदि स्वामी के कार्य में नष्ट हो जाए तो उसका वेतन उसके पुत्र को दे। (२३) जब पुत्र युवा हो जाए तो उसकी योग्यता के अनुसार उसका वेतन निश्चित किया जाए। राज वाणी की कठोरता, न्यून वेतन इत्यादि द्वारा सेवक को शिक्षा देता रहे पर उसका अपमान न करे। अपमान से सेवक शत्रु बन जाता है। (२४) वेतन के दान से परिपुष्ट, मान से ऊँचे किए गए, कोमल वाणी से शान्त किए भृत्य कभी अपने स्वामी को नहीं छोड़ते (२५) उत्तम सेवकों को राजा क्षमा, प्रणिपात, मान, अभ्युत्थान, सत्कार, ज्ञान, आदर, शम, प्रेम, समीपवास, अपना अर्द्ध आसन प्रदान, सम्पूर्ण आसन दान, स्तुति, उपकार कीर्तन आदि से प्रसन्न करता रहे। (२६) जिस सेवक को जिस काम में लगाए, उसे उस कार्य के लिए मुद्रा सहित पत्र प्रदान करे। यह मुद्रा लोहा, ताम्र, शीशा और चाँदी, स्वर्ण रत्न आदि से बनाई जाती है। दूर ही से ज्ञान हो जाने के निमित्त अपने राज चिह्न से युक्त विशिष्ट वस्त्र या मुकुट प्रदान करे। (२७) अपने उच्च अधिकारियों का वाद्य या वाहन के भेद ये पृथक्-पृथक् आदरित करे। अपने विशिष्ट अधिकार राजा किसी को प्रदान न करे।

(२८) जो राजा न तो उपकार मानता हो, न सेवा से प्रसन्न होता हो, काम के समय याद नहीं करता, बोलता हुआ भी शंका करने लगता है, क्रुद्ध हो मर्मस्थल को आहत कर देता हो—ऐसे राजा को सेवक दूर से ही त्याग दे।

३. धर्म और लौकिक आचार का पालन

(१) धर्म के बिना सुख नहीं। अतः प्रत्येक मनुष्य धर्म की ओर प्रवृत्त रहे। धर्म, अर्थ और काम से शून्य जो कार्य हो उसे कभी न करे। (२) प्रत्येक काम को धर्म के मध्यम मार्ग में लगाता रहे। स्नान आदि द्वारा अपने शरीर को शुद्ध रखे। (३) वेग से कोई कार्य न करे। उत्तम मित्रों की भक्ति पूर्वक सेवा करे और अन्यों से दूर ही रहे। (४) सम्पत्ति और विपत्ति में हर्ष शोक न मानकर एकचित्त रहे। समय के अनुसार मनुष्य हितकारी, स्वल्प, विवादहीन और सुन्दर वचन बोले। (५) कोई भी मनुष्य अकेला सुखी नहीं रह सकता। सब पर विश्वास करना और सबके प्रति शंकित रहना—दोनों प्रकार से मनुष्य सुखी नहीं रह सकता। (६) दूसरे मनुष्य के अभिप्राय को जानने वाला और उसके प्रसन्न होने के ढंग को जानने वाला पर—आराधन से पंडित कहाता है। (७) मनुष्य न तो इन्द्रियों को पीड़ित करे और न इनसे

अति प्रेम करे। इन्द्रियाँ उन्मत्त करने वाली हैं और मन को बलपूर्वक पाप में ले जाती हैं। (८) माता, भगिनी, पुत्री आदि के साथ भी अधिक एकान्त में न रहे। किसी स्त्री को उसके सम्बन्ध के अनुसार ही बुलाए। अर्थात् 'सुभगे' 'भगिनी' ऐसा सम्बोधित करे। (६) देह, वाणी और चित्त— इनकी चेष्टाएँ इनमें थकान आने से पूर्व ही बन्द कर दे। ऊँची जाँघ करके देर तक न बैठें और रात में किसी वृक्ष के नीचे न सोए। (१०) देश, कुल, जाति और सद्धर्म— इनमें कभी दोष का अन्वेषण न करे। कितना भी समर्थ कोई पुरुष हो पर लौकिक आचार का वह कभी उल्लंघन न करे। (११) लौकिक और शास्त्र के अनुसार जिसका त्याग करना चाहिए, उसका बुद्धिमान त्याग कर दे। नीति में समान दिखाई देने वाली अनीति का कभी मन से भी चिन्तन न करे।

पाप से बचना : सफलता के साधन

(१) मैं तो सहस्रों अपराध कर चुका, अब इस एक अपराध से मेरा क्या बिगड़ेगा, ऐसा विचार कर कभी पाप की ओर न जाए क्योंकि एक-एक बूँद से घड़ा भरता और तभी वह डूबता है। (२) मेरे रात और दिन किस दुर्दशा में व्यतीत होते हैं—यह देखकर भी परमात्मा का स्मरण करने वाला मनुष्य दुःखी नहीं होता। (३) धर्म का तत्त्व बड़ा गहन है। कोई विरला ही इसका सेवन कर सकता है। विद्वान् सदा श्रुति, स्मृति और शास्त्रोक्त कर्मों का आचरण करे। (४) आग लगाने वाला, विषदाता, शरण लेकर उन्मत्त, धनापहारी, भूमि और स्त्री का अपहरण कर्ता—यह छः प्रकार के आततायी हैं जिनका वध करना उचित ही है। (५) बुद्धिमान् मनुष्य स्त्री, बालक, रोग, दास, पशु, धन, विद्या का अभ्यास और सत्पुरुष सेवा— इनमें एक क्षण की भी ढील न करे। (६) जहाँ माता बचपन में पालन न करे, पिता उचित शिक्षा न दे, राजा धन का अपहरण करता रहे— फिर ऐसे अधर्म की क्या शिकायत करनी? (७) यदि अच्छी तरह सेवा करने पर भी मित्र, स्वजन और राजा कुपित हो जाए, घर को आग या बिजली मार दे, फिर भाग्य के अतिरिक्त किस की शिकायत करनी? (८) उत्तम पुरुषों का वचन न मानकर अभिमान से कोई काम कर लिया, उसका फल विपरीत निकला तो फिर वहाँ क्या शिकायत करनी? (६) माता-पिता, गुरु, स्वामी, भ्राता, पुत्र, मित्र-- इनका विरोध अपने मन में भी एक क्षण के लिए भी न करे। (१०) स्वजन से विरोध, बलवान् से स्पर्द्धा, स्त्री, बालक, वृद्ध और मूर्खों के साथ कभी विवाद न करे। (११) कभी अन्य के धर्म (कार्य क्षेत्र) का सेवन न करे और न किसी के कर्तव्य क्षेत्र के प्रति द्रोह करे। हीन कर्म-गुण वाले पुरुष-स्त्रियों के साथ कभी न बैठें। (१२) कल्याण चाहने वाला पुरुष निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घ सूत्रता -- इन छः दोषों का परित्याग कर दे। यह दोष, निःसन्देह कार्य घातक हैं। (१३) जो मनुष्य कार्य के उपाय का ज्ञाता, उसका संगठन करने और युक्ति का ज्ञाता, तत्त्व ज्ञाता, प्रतिभाशाली, अपने कर्त्तव्य में श्रद्धा रखने वाला, पर-स्त्री से पराङ्मुख, कुशल वक्ता, गहन और तीव्र मतिशील, उत्तम व्याख्याता और बिना चूक बोलने वाला—ऐसा मनुष्य सफलता प्राप्त करता है। (१४) देर तक

सुनने वाला, उसके तत्त्व पर शीघ्र पहुँचने वाला, कार्य को ठीक प्रकार समझ कर ही उसमें हाथ डालने वाला, कामना के वश में न रहने वाला—शीघ्र सफलता को प्राप्त करता है। (१५) पति-पत्नी तथा पिता-पुत्र के कलह में साक्षी न हो, अपने कार्य के मंत्र को गुप्त रखे और कभी शरणागत का त्याग न करे। कभी अश्लील बात न करे और कभी पागल जैसी बात न करे। जिस बात का लोक विरोध करे, उसे त्याग दे। (१६) शत्रु के भी गुण ग्रहण करने चाहिए और गुरु के भी दुर्गुण त्याज्य हैं। बिना गुणों के किसी का उत्कर्ष नहीं और दुर्गुणों के बिना किसी का अपकर्ष नहीं होता। (१७) समय आने पर जो यत्न न करे, यह आलसी कहाता है। उसकी कभी सिद्धि नहीं होती।

मित्र धर्म—अहंकार और दीनता का त्याग

(१) जो काम कोई, अपना आत्मीय सिद्ध नहीं कर सकता, वह अच्छा मित्र सिद्ध कर देता है। मित्र-प्राप्ति के लिए सदा प्रयत्न करना चाहिए। (२) किसी का अत्यन्त विश्वास न करे। जो प्रामाणिक हितेच्छु व्यक्ति हो, उसी का विश्वास करे। (३) किसी मित्र से यदि अपने कार्य के चौंसठवें भाग के हानि हो गई तो उसे क्षमा कर दे। अपने धर्म और नीति के बल से उसके साथ मैत्री रखें। (४) जो अपने पूज्य हों, उन्हें दान, मान और सत्कार से अर्चित करे। उनके सम्मुख कभी उग्रता व कटु भाषण न करे। (५) विद्या, शूरवीरता, धन, कुल, बल, प्रतिष्ठा, इनका कभी अभिमान न करे। विद्या का फल ज्ञान और विनय, ऐश्चर्य का फल यज्ञ और दान, बल का फल सज्जनों की रक्षा, शूरवीरता का फल शत्रुदमन, कुलीनता का फल शम और दम, प्रतिष्ठा का फल सबको अपने सदृश मानना,—यह सब श्रेष्ठ पुरुष प्राप्त करते हैं। (६) विद्या, मंत्र, औषध, स्त्री, रत्न—जहाँ से प्राप्त हो, अभिमान छोड़कर प्राप्त करे। (७) नष्ट हुए को भूल जाए, जो मिल रहा है उसे प्रयत्न से लेवे। बालक और स्त्री को न बहुत ताड़ित करे और न बहुत लाड़-प्यार करे। (८) दो पुरुषों की अपनी बातचीत में बीच में न बोले। घर में आये छोटे पुरुष का भी यथायोग्य सत्कार करे। (९) ऋण, रोग और शत्रु इन्हें कभी शेष न छोड़े। याचक के प्रति भी कटु वचन न बोले। उसका काम कर दे या किसी से करवा दे (१०) दानी, धार्मिक और वीरों की कीर्ति का बड़े प्रयत्न से श्रवण करे और उनकी त्रुटियों पर दृष्टि न डाले। (११) समय पर हितकारी और मिताहारी हो, यज्ञ शेष का भोजन करे, किसी के सम्मुख दीनता न करे, सुख से सोवे और सर्वदा मन, वचन, कर्म से पवित्र रहे। (१२) आहार और मल मूत्र का त्याग एकान्त में करे, सदा उद्यम शील रहे, हल्का व्यायाम करता रहे। (१३) भोजन की कभी निन्दा न करे, प्रसन्नता से ग्रहण करे। भोजन षड्रसपूर्ण और मधुर हो। दीन, अंधे, पंगु और बधिरों की कभी हँसी नहीं करनी चाहिए। असत्कार्य में गुरु की भी बात न माने। (१४) चाहे छोटा भी हो पर जो कार्य सिद्धि का बोधक है, उनका अपमान न करे। (१५) जो मनुष्य अपने कुटुम्ब के भरण-पोषण का प्रयत्न नहीं करता, वह गुणी होता हुआ भी मृतक के तुल्य है।

शास्त्र अध्ययन आवश्यक : दूसरों को वश में करने के उपाय : विवाह सम्बन्ध

(१) जो मनुष्य शास्त्र के अर्थ का चिन्तन करता है वह अहंकारी और धर्मान्ध नहीं होता। जो केवल एक विषय का पंडित है, वह कार्य निर्णय में समर्थ नहीं हो सकता। मनुष्य बहुत शास्त्रों का ज्ञाता हो क्योंकि सांसारिक व्यवहार महान् होता है। इसलिए बुद्धिमान् पुरुष निरालस होकर शास्त्रों का अभ्यास करता रहे। मनुष्य का स्वभाव है कि वह शास्त्र को पढ़कर भी उसके अनुसार ठीक आचरण नहीं कर पाता है। (२) श्रुति स्मृत, पुराणों का ठीक ज्ञान विद्वानों के सहवास से होता है। उत्तम बुद्धि उत्तम पुरुषों के संसर्ग से ही होती है। (३) जो मनुष्य देव, पितर, अतिथि—इन्हें अन्न समर्पित न कर स्वयं खा लेता है, अपनी रसना के स्वाद के लिए भोजन बनाता है, वह नरक गामी होता है। (४) मनुष्य अपने गुरु, बलवान्, रोगी, मृतक, राजा, श्रेष्ठ पुरुष, व्रतशील और यान पर चढ़ने वाले को मार्ग छोड़ दे। (५) गाड़ी से पाँच हाथ, अश्व से दस हाथ, हाथी से सौ हाथ और वृप से दस हाथ की दूरी पर मनुष्य सदा रहे। (६) खाता हुआ मार्ग पर न चले, हँसता हुआ भाषण न करे, नष्ट हुए पदार्थ का शोक न करे, और अपने काम की स्वयं प्रशंसा न करे। (७) जो शंका करता हो उसके समीप न ठहरे, नीच की सेवा छोड़ दे, छुपकर किसी के वार्तालाप को न सुने। (८) बड़ों की आज्ञा के विना उनके साथ न चले। गुरु, राजा और श्रेष्ठ पुरुप के सम्मुख वेढंगा खड़ा न हो। राजा मेरा मित्र है,यह जानकर अपनी इच्छा से उच्छृंखलता न करे। जो थोड़े पढ़े पर अभिमानी हैं, उनका विरोध अच्छा नहीं है और न ही उन्हें प्रसन्न किया जा सकता है। (९) प्रेम, समीप वास, स्तुति, नमस्कार, सेवा, कुशलता, कारीगरी, व्याख्यान, आदर, सरलता, शौर्य, दान, विद्या, खड़े होना, आगे वढ़-कर स्वागत, मुस्कराहट के साथ भाषण, उपकार, स्वच्छ अन्तःकरण—इनके द्वारा मनुष्य सवको वश में करे। (१०) किसी कूट व्यवहार से किसी के कार्य और वृत्ति का नाश न करे। मन से किसी का अहित चिन्तन न करे। मनुष्य को वही कार्य करना चाहिए जिससे तीनों कालों में सुख की प्राप्ति हो, मरने पर स्वर्ग, जीवन काल में दृढ़ता और शुभ कीर्ति। (११) चिन्तातुर, अधिव्याधि से पीड़ित, व्यभिचारी, चोर, वलवान् से वैर करने वाला, विषयी, धन का लालची, कुत्सित का सहायक, फूटा हुआ मित्र, अमात्य, मूर्ख राजा—यह जागते-जागते रात विताया करते हैं। (१२) आपस के झगड़े में किसी एक का सहायक न वने, जो वहुजन का नेता है उसका संरक्षण करे। राजा और गुरु के सम्मुख उच्च आसन पर न वैठे। जो मनुष्य अपने भविष्य के कार्य को नहीं कहता और पूरा हो जाने पर डींग नहीं मारता, वही उत्तम मनुष्य है। (१३) माता, पुत्रवधू, भ्राता की पत्नी, और सपत्नि के अपराध को यदि अपनी कार्य बताए तो अपने अनुभव के विना सत्य न माने। (१४) वर की आयु, विद्या और रूप अवश्य देखे चाहे उसके पास धन न हो। केवल रूप, वय, या धन देखकर कन्या प्रदान न करे। पहले कुल की परीक्षा करे, फिर विद्या, आयु, शील, धन, वल और देश की भी जाँच करे। फिर कन्या का विवाह करे। (१५) कन्या रूप, माता धन, और पिता

विद्या को चाहता है, वान्धव उत्तम कुल चाहते हैं, और शेप तो केवल खाने-पीने वाले होते हैं। (१६) जिस कन्या के साथ गोत्र या प्रवर न मिले, उससे विवाह करे। कन्या के भ्राता अवश्य हों, कुलीन हों और योनि दोष न हो।

धन और विद्या का संग्रह : धन का बँटवारा : उत्तम ख्याति

(१) प्रत्येक क्षण विद्या और कण-कण का संचय कर धन संग्रह करे। विद्या और धन के अभिलाषी को कभी क्षण और कण की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। (२) अपनी भार्या, पुत्र, मित्र और हितकारी कार्यों के निमित्त धन का उपार्जन करे। जब यह न हों तब धन और जन का क्या उपयोग ? (३) सौ वर्ष तक जीने की आकाँक्षा से मनुष्य धन और विद्या का संचय करे। विद्या धन सबसे श्रेष्ठ है। इसी के द्वारा अन्य धन की प्राप्ति होती है। विद्या धन दान से बढ़ता, बिना वोझ का और न कोई इसे चुरा सकता है। संसार के व्यवहार के लिए तो धन को ही सार माना गया है। इसलिए किसी भी अच्छी वृत्ति से धनी होने की चेष्टा करे। धन को जहाँ रखें, उसका लेख बना कर अवश्य रखे। स्मरण रखने का इसके अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं है। लेख के विना कोई कार्य न करे। मित्र को ऋण रूप में धन बिना ब्याज के दे। (४) धन वृद्धि के निमित्त ऋण दिया जा सकता है पर इसके लिए साक्षी बना ले। ऋण देने का पत्र लिख लेना वड़ा प्रमाण है और ऋण के आने के समय वह वड़ा सुखदायी होता है। बिना पहचाने किसी व्यक्ति को केवल वृद्धि लोभ में धन न दे। आहार और व्यवहार में जो संकोच नहीं करता, वही सुखी रहता है। धन देने के समय मित्रता कारक और वसूल करते समय शत्रुता कारक हो जाता है।

(५) सब कुछ दोबारा हो सकता है पर अपना आत्मा फिर नहीं होता। सब कुछ बलिदान करके भी आत्म रक्षा करे। यदि मनुष्य जीवित रहा तो सैंकड़ों कल्याण देख सकता है। (६) हित चाहने वाला पुरुष अपने युवा पुत्रों में धन का बँटवारा कर दे। इसमें एक भाग अपनी भार्या का भी हो। पिता न रहा हो तो युवा होने पर भ्राता परस्पर बँटवारा कर लें। (७) सहोदर भाईयों का झगड़ा एक-दूसरे के विनाश के लिए होता है। दो स्त्रियाँ एक साथ नहीं रह सकतीं, उनमें खटकते देर नहीं लगती। (८) जो मनुष्य अपने पिता-माता के गुणों से विख्यात होता है वह सर्वोत्तम है। जो अपने पिता और माता के पृथक्-पृथक् गुणों से पृथक् बात में विख्यात है, वह क्रम से उत्तम, मध्यम और अधम माना जाता है। जो माता के गुणों से विख्यात है, वह अधम या नीच है। कन्या, स्त्री, भगिनी के भाग्य से जो विख्यात है वह अधमाधम माना जाता है। (९) जब महाधनी हो जाए तो उसे अच्छी तरह अपने पोष्य वर्ग-का पालन करना चाहिए। इन्हें बिना कुछ दिये, एक दिन भी खाली न जाने देना चाहिए। (१०) यह लोक दान शील मनुष्यों के आश्रय से चलता है, शठों के आश्रय नहीं। दान देने से शत्रु भी मित्र बन जाते हैं, साधारण मनुष्यों की चर्चा ही क्या ?

दान के विविध रूप : अति सदा हानिकारक

(१) देवता, यज्ञ, ब्राह्मण, गौ आदि के निमित्त दिया दान परलोक में हितकारी होता है। इसे 'संविदत्त' कहा जाता है। (२) बन्दी, नट आदि को जो धन दिया जाता है वह पारितोषक कहाता है। यह यश के लिए दिया जाता है। इसे 'श्रीदत्त' कहते हैं। (३) परिपाटि के अनुसार सम्बन्धी, बान्धव आदि को लज्जा से देना पड़ता है। इसे ही 'ह्रीदत्त' कहते हैं। (४) राजा, बलवान् व कार्य सिद्धि के निमित्त अथवा पाप के भय से दिया दान 'भयदत्त' कहाता है। (५) जो धन हिंसा, जूआ, चोरी, व्यभिचार में दिया जाता है वह 'पापदत्त' कहाता है। (६) जिस धन से देव, विद्वान् का आराधन किया जाए, वह सर्वोत्तम दान है। इसमें कभी न्यूनता न करे। बड़ी प्रीति से दे। दान और सरलता से अधिक अन्य कोई बड़ा वशीकरण पृथ्वी पर नहीं है। (७) जो मनुष्य दान से क्षीण होता है, फिर बढ़ने का प्रयत्न करता रहता है, वह एक दिन बढ़ जाता है। चन्द्रिका का दान करता क्षीण चन्द्रमा फिर पूर्णिमा को पूर्ण वृद्धि प्राप्त करता है। प्रीति या द्वेष विचार कर करे। विना विचार करने से उलटा ही परिणाम होता है। (८) अत्यन्त निन्दा या अत्यन्त विवाद किसी से न करे। अत्यन्त हठ बुरा होता है। किसी बात की अधिकता—खेंचतान—न करे। अत्यन्त क्रोध-क्रूरता से लोग बिगड़ जाएँगे। अत्यन्त कंजूसी से निन्दा होगी। कोमल प्रकृति का कोई प्रभाव नहीं मानता। अत्यन्त विवाद करने से अपमान होता है। अत्यन्त दान से दरिद्रता, अत्यन्त लोभ से तिरस्कार, तथा अत्यन्त आग्रह से मनुष्य की मूर्खता प्रकट होती है। (९) थोड़ी सिद्धि के लालच में बड़ी सिद्धि का परित्याग न करे। बहुत व्यय से प्राप्त होने वाली थोड़ी सिद्धि को न करे। बुद्धिमान् मनुष्य अभिमान के कारण या बहुत व्यय के भय से अपनी सत् कीर्ति का त्याग न करे। (१०) आभूषण, राज्य पुरुषार्थ, विद्या और धन-मनुष्य को इतना सुशोभित नहीं करते जितना सौजन्य का आभूषण शोभा देता है।

किसमें क्या गुण हों ? : उत्तम माता-पिता, पत्नी-पुत्र, मित्र

(१) अश्व में वेग, वृषभ में धैर्य, मणि में कान्ति, राजा में क्षमा, वेश्या में हावभाव, गायक में मधुर स्वर, धनवान् में उदारता, सैनिक में शौर्य, गौ में बहुदुग्धता, तपस्वियों में जितेन्द्रियता, विद्वानों में वाक्शक्ति, सभ्यों में पक्षपात का अभाव, साक्षियों में सत्यवादित्व, भृत्यों में अनन्य भक्ति, मंत्रियों में हितकारी वचन कहने की शक्ति, मूर्खों में मौन, स्त्रियों में पातिव्रत्य—यह सब भूषण हैं। इनके विपरीत बड़ा दूषण बन जाता है। (२) एक नायक होने पर ही काम ठीक चलता है। नायक होने या बहुनायक होने पर कोई काम पूरा नहीं होता। हिंसक की उपेक्षा न करे, शक्ति होने पर उसे तत्काल मार दे। (३) चुगली, क्रोध, चोरी, डाह, अतिलोभ, असत्य, कार्य का विनाश और आलस्य—यह दोष गुणियों के गुण को ढककर प्रबल दोष बन जाते हैं। (४) बचपन में माता का, यौवन में भार्या का और वृद्धावस्था में पुत्र और धन का नष्ट होना महा-पाप माना गया है। धनवानों का सन्तान हीन, निर्धनों का मूर्ख, स्त्रियों का नपुंसक

पति यह सुख के न होकर अभीष्ट नाशक होते हैं। (५) मूर्ख पुत्र, विधवा कन्या, क्रोधी भार्या, दरिद्रता, नीच की सेवा, नित्य अटन—यह छः बातें सुख के लिए नहीं होतीं। (६) आशा के चक्कर में फँसा मनुष्य ब्रह्माण्ड के सारे पदार्थों को प्राप्त कर भी सन्तुष्ट नहीं होता। आशा का त्याग करने वाला स्वल्प से भी सन्तुष्ट हो जाता है। आशाबद्ध व्यक्ति अकार्य करता, कराता और करने वालों का अनुमोदन करता है। (७) जो पुत्र पिता का आज्ञा-पालक, सेवा में निरालस, छायावत् सहगामी, आय के लिए प्रयत्नशील, विद्या कुशल—वह सुपुत्र हैं। (८) पति प्रिया, गृह कार्य में कुशल, पुत्रवती, सुशील, सुयौवना भार्या पति को प्यारी होती है। (९) पुत्र का अपराध क्षमा करने वाली, लालन-पालन करने वाली, माता ही प्रीति-जननी मानी गई है। (१०) पुत्र को विद्या पढ़ाने में प्रवृत्त, भरण-पोषण के लिए प्रयत्नशील, पुत्र को सदा उत्तम शिक्षा देने वाला, ऋणहीन पिता ही प्रशंसनीय है।(११) सदा सहायक, विपरीत न करने वाला, सत्य, हितकारी वक्ता, सदा मिलने-जुलने वाला, लेन-देन में सदा सहायक—वही मित्र कहाता है। (१२) कृषि उत्तम, जिसमें सिंचाई से अन्न उत्पन्न होता हो। वैश्य वृत्ति मध्यम, शूद्र वृत्ति अधम। याचना करना अधमाधम वृत्ति। यदि राजा धर्मशील हो तो सेवा वृत्ति भी उत्तम मानी गई है।

सुख के साधन : व्यवहार का ज्ञान

(१) सर्प पकड़ने वाला जिस तरह सर्प को विल से निकाल लेता है, इसी प्रकार मंत्री अपने मंत्र-वल से राजा को अपने आधीन कर लेता है। राजा को बुद्धिमान् मनुष्यों से वड़ा भय रहता है। बुद्धिमान् में ब्रह्म तेज और राजा में क्षात्र तेज विद्यमान रहता है। (२) बुद्धिमान् मनुष्य कितनी भी दूरी पर हो, उसे सर्वदा पास ही समझना चाहिए। बुद्धिमान्, राजा को बुद्धि के पाश में बाँध कर खींच लेता है और पर्याप्त झटके लगाता है। (४) प्रथम निर्धन होकर फिर धनवान होना अच्छा है। प्रथम पैदल चलकर फिर सवारी पर चढ़ने का आनन्द आता है। प्रथम धनवान् होकर फिर निर्धन होना दुःखदायक होता है। (५) सन्तान हीन होना अच्छा पर सन्तान होकर उसका मरते रहना अच्छा नहीं। दुष्ट वाहन से पैदल चलना अच्छा और विरोध की अपेक्षा उदासीनता श्रेष्ठ हैं। (६) सारी पृथ्वी को ढाँप लेने की अपेक्षा अपने पैर में जूता पहनना अच्छा। ज्ञान भी चिनगारी से दग्ध होने की अपेक्षा अज्ञानता ही उत्तम है। (७) हस्ती, अश्व, वृष, बालक स्त्री और शुक—इनका जैसा शिक्षक होता है, उनमें संसर्ग के कारण वैसे ही गुण आ जाते हैं। (८) सुन्दर भार्या, श्रेष्ठ सन्तान, उत्तम विद्या, उत्तम गृह, उत्तम धर्मोपार्जित धन, मित्र, उत्तम दास दासी, नीरोग देह, उत्तम राजा—यह दस पदार्थ जिसे मिल जाएँ वही सुखी है, अन्यथा नहीं। (९) अत्यन्त यात्रा, भोजन न मिलना, अति मैथुन, अति परिश्रम—यह सब शीघ्र बुढ़ापे के कारण होते हैं। अभ्यास के बिना विद्या और कलाओं में जंग लग जाता है। (१०) स्तुति से तो देवता भी झट प्रसन्न हो जाते हैं, फिर मनुष्य का कहना ही क्या ? इसलिए कोई मनुष्य प्रत्यक्ष दुर्गुणों के कहने में समर्थ नहीं हो सकता। अपने दुर्गुणों को लोक और शास्त्र से स्वयं

विचारे। अपने दुर्गुणों के श्रवण से प्रसन्न हो, कुपित न होवे। दुर्गुणों का त्याग करे। गुणों के श्रवण से उदासीन रहे, फूल न जाए। (११) जो अपने दुर्गुणों को मानता और देखता है, वही साधु पुरुष है। साधु पुरुष थोड़े उपकार को भी महान् मानते हैं। दुष्ट पुरुष किसी के बड़े उपकार को भी सरसों से भी छोटा समझता है। (१२) अपने पूर्व मित्र से विरोध होने पर भी उसका उपकार करे और उस के दोषों को छुपाने का, चुपके-चुपके, प्रयत्न करता रहे। (१३) आपत् काल में किसी के विरुद्ध सत्य भी न कहे क्योंकि उस समय विरोधी से झगड़ने की शक्ति नहीं होती। इस समय अड़ जाने से दुःख ही प्राप्त होगा। (१४) स्वामी निर्धन सेवक का धन आपत् काल में भी न ग्रहण करे। अपने बच्चों को दंड देवे पर दूसरे के बच्चों को अपराध करने पर भी दण्ड न दे (१५) परतंत्रता में परम दुःख और स्वतंत्रता में परम सुख है। जो मनुष्य अपने घर में स्वतंत्रता से रहता है, वह नित्य सुख प्राप्त करता है। (१६) नवीन और प्राचीन व्यवहारों को जानने वालों के कार्यों को बुद्धि के साथ देखे। कितना ही अनुभव हो व्यवहार प्रति क्षण नया होकर ही सम्मुख आता है। इस संसार में व्यवहार को कोई पूरी तरह खोलकर नहीं बता सकता है। इसका ज्ञान तो प्रमाणों और आप्तों के उपदेश से होता है।

४. राजा की आन्तरिक और बाह्य नीति

मित्र, शत्रु, उदासीन : राजा के लिए नीति का प्रयोग

(१) किसी वस्तु पर अधिकार के प्रश्न को लेकर दो व्यक्तियों का आपस में झगड़ना वैर कहाता है। दोनों एक-दूसरे के अभीष्ट का नाश करने में लगे रहते हैं। (२) भाइयों में पिता की सम्पत्ति पर अधिकार करने के प्रश्न पर वैर पैदा होता है। जो द्वेष करता है व जिससे द्वेष किया जाता है, वे परस्पर एक-दूसरे के शत्रु हो जाते हैं। राजा का कोई मित्र नहीं होता और न राजा ही किसी का मित्र हो सकता है। जो दो राजा आपस में मित्र बन जाते हैं, वह मित्रता, प्रायः बनावटी होती है। कोई स्वभाव से ही मित्र और कोई सर्वदा शत्रु ही रहते हैं। (३) विद्या, शौर्य, चातुर्य, बल और धैर्य—यह सहज मित्र होते हैं। बुद्धिमान् तो इन मित्रों पर ही अधिक विश्वास करते हैं।

(४) राजा के अत्यन्त समीपवर्ती राजा शत्रु, उसके समीपवर्ती उदासीन और उससे आगे का मित्र होता है क्योंकि उसे डर होने के कारण चढ़ाई करने का सुभीता नहीं होता है। हीन बल वाले भी इसी तरह शत्रु, उदासीन और मित्र बन जाते हैं। (५) जो हीन बल मित्र हो, उसे कुछ बढ़ावे और अपने से अधिक बल वाले मित्र को कुछ बलहीन करता रहे। शत्रुओं में फूट डाल कर उन्हें पीड़ा पहुँचाए या उन्हें हीन बल करता रहे। इन शत्रुओं को सामादि उपायों से नष्ट ही कर देना चाहिए। मित्र हो या शत्रु, उन्हें यथायोग्य उपायों से अपने वश में करना चाहिए।

(६) एक समान स्वभाव, एक समान आयु, एक सदृश विद्या, एक जैसी आदत और एक जैसा जिनका आचार होता है, उनमें मित्रता हो जाती है। यदि यह लोग

नम्र हों तो साथ रहने से इनमें बहुत कुछ मित्रता हो जाती है। (७) तुम्हारे समान मेरा कोई मित्र नहीं, ऐसा व्यवहार साम, मेरा सब कुछ तुम्हारा ही है, ऐसा वचन दान, मित्र के सम्मुख अन्य मित्र के गुणों का वर्णन करे, और यदि, तुम इसी तरह दुरंगी चाल चलते रहे तो मैं मित्रता न रखूँगा —यह दण्ड --इन चार उपायों का प्रयोग करे। (८) जो स्वयं कोई प्रिय कार्य न करे और अन्य द्वारा की गई हानि की ओर भी दृष्टि न डाले, वह चाहे उदासीन भी क्यों न हो, संधि कर लेने पर शत्रु बन बैठता है। (९) परस्पर एक-दूसरे के अनिष्ट की चेष्टा न करते हुए, एक-दूसरे की सहायता का आश्वासन शत्रु के प्रति साम कहा गया है। (१०) कुछ कर देकर वा छोटे-मोटे गाँव देकर एक वर्ष तक प्रबल शत्रु को शान्त और सन्तुष्ट कर देना दान कहाता है। (११) शत्रु के साधनों को निर्बल बताते हुए प्रबल का आश्रय लेना और दुर्बल राजा को उठाना—यह शत्रु के भदेन (फूट डालना) की नीति मानी गई है। (१२) दस्युओं द्वारा शत्रु को पीड़ा पहुँचाना, उसे धन धान्य से क्षीण करना, उसके दोषों को देखना, सेना इकट्ठी कर युद्ध का भय दिखाना, युद्ध होने पर डट कर युद्ध करना, शत्रु को हर तरह भय-भीत करना—इत्यादि उपाय दण्ड कहाते हैं। इन उपायों के क्रिया के अनुसार कई भेद हैं।

(१३) सर्वश्रेष्ठ उपाय साम, उसके बाद दान और शत्रु को भयभीत करने के लिए और प्राण रक्षा के लिए दण्ड—तीसरा उपाय है। प्रबल शत्रु के प्रति साम, दान का प्रयोग, जो शत्रु अपने से कुछ अधिक हो, उसके प्रति साम और भेद का बर्ताव, तथा भेद और दण्ड का प्रयोग समान शत्रु के साथ और अत्यन्त निर्बल के प्रति दण्ड का प्रयोग ही समुचित माना गया है।

दण्ड की आवश्यकता : पहले राजा स्वयं संयमी हो

(१) अपनी प्रजा को कभी भयभीत न करे और न उसे दण्ड से ही वश में लाए। राजा को बड़े प्रयत्न से साम और दान से ही उसे वश में करना चाहिए। (२) प्रजा के साथ दण्ड और भेद का व्यवहार विनाशक होता है। प्रजा अत्यन्त निर्बल व अत्यन्त बलवान् न हो सके, इस प्रकार प्रजा की रक्षा करना राजा का कर्त्तव्य है। (३) यह दण्ड देने का कार्य राजा के अधीन है क्योंकि वह शक्तिशाली होता है। फट-कारना, अपमान करना, नष्ट करना, बाँध लेना, ताड़ना देना, द्रव्य हरण, पुर से निकाल देना, दाग लगाना, उल्टा क्षौर करा गधे पर चढ़ाना, अंग छेद और वध भी करा देना—यह सब दण्ड के प्रकार हैं। प्रजा इस दण्ड के भय से ही धर्म पर स्थिर रहती है। क्रूर पुरुष इस दण्ड के भय से ढीले पड़ जाते और दुष्ट भी अपनी दुष्टता छोड़ देते हैं। अन्य भी त्रास मानने लगते हैं। इसलिए धर्म की रक्षा के निमित्त राजा को दण्डधारी होना चाहिए। (४) जो गुरु भी मदोद्धत हो कार्य-अकार्य को भूल जाए और कुपथगामी हो जाए तो राजा उसे भी दण्ड दे। (५) दण्ड नीति से सारे उपक्रम सिद्ध होते हैं। दण्ड ही सब धर्मों का एकमात्र रक्षक माना गया है।

(५) वेद द्वारा विहित दुष्ट की हिंसा अहिंसा ही है। दण्डनीय को दण्ड न देने,

दण्ड के अयोग्य को दण्ड देने तथा अधिक दण्ड देने से गुणीजन राजा का परित्याग कर देते हैं। राजा स्वयं भी पाप का भागी होता है। समय पर थोड़े दान से भी जैसे महान् फल की प्राप्ति होती है, इसी तरह दण्ड के व्यवहार से राजा को पुण्य मिलता है। (६) धर्म और अधर्म का व्यवस्थापक होने से राजा को युग का प्रवर्तक कहा गया है। प्रजा वही काम करती है जिससे राजा प्रसन्न होता है। (७) जहाँ राजा पुण्यात्मा होता है, वहाँ प्रजा धर्म निष्ठ और जहाँ राजा महापापी हो, वहाँ प्रजाजन भी अधर्मी हो जाते हैं। वहाँ राष्ट्र का ह्रास, शत्रु की वृद्धि और धन का क्षय, अकाल आदि संकट आते हैं। सुरापान, व्यभिचार और अत्यन्त क्रोधवान्—राजा के यह विशेष त्याज्य दुर्गुण हैं। (८) राजा काम, क्रोध, लोभ को छोड़ दण्ड धारी हो। राजा भीतर से मृदु, बाहर से कठोर हो प्रजा को दण्ड दे। जो राजा अपने और प्रजा के दोष देखता है, वही राजा उत्तम है।

(९) राजा सबसे पूर्व अपना, फिर अमात्य, भृत्य और प्रजा का नियमन करे। कायिक, वाचिक, मानसिक और संग दोष से होने वाले चार प्रकार के अपराध हैं। कराये जाने अथवा जानने पर अनुमोदन करना -इस प्रकार इन चारों के दो भेद और हो जाते हैं। अपराधों का एक बार, बार-बार, अभ्यास पूर्वक और स्वभाव से करना यह चार भेद और माने गये हैं।

दण्ड के योग्य और दण्ड की मात्राएँ

(१) यदि उत्तम मनुष्य द्वारा साधारण अपराध हुआ हो तो उसका प्रथम दण्ड—उसी से पूछना कि तुम्हारे साथ क्या न्याय किया जाए? यह प्रश्न ही उसके लिए पर्याप्त अनादर है। इसके बाद उसे फिर अपराध करने पर दुगुणा-तिगुणा दण्ड दिया जाए। (२) यदि मनुष्य मध्यम अपराध करे, तो प्रथम धिक्कार, फिर साहस संज्ञक दण्ड और अभ्यास होने पर दुगुना-तिगुना दण्ड बढ़ाए। (३) यदि उत्तम पुरुष उत्तम दण्ड के अपराध करे तो उसे पहले – प्रथम साहस दण्ड, फिर अपराध करने पर मध्यम दण्ड और फिर भी अपराध करने पर दुगुना और इसके भी बाद उसे कैद का दण्ड देना चाहिए। (४) मध्यम पुरुष को पहले धिक्कार, फिर आधा, फिर पूर्ण दण्ड, पुनः अपराध करने पर दुगुना, तिगुना, फिर कैद और फिर नीच कर्म करने पर बाध्य किया जाए। मध्यम साहस करने पर मध्यम पुरुष को पूर्वोक्त से आधा या सारा दण्ड दिया जाए। (५) यदि अधम पुरुष मध्यम साहस (अपराध) करे तो उसे पहले प्रथम साहस का दण्ड, फिर दुगुना या तिगुना होता चला जाए। (६) मध्यम पुरुष यदि उत्तम साहस के योग्य अपराध करे तो उसे पहले मध्यम साहस का दण्ड, फिर पूर्वोक्त दण्ड, फिर भी अपराध करने पर दुगुना-तिगुना दण्ड, इसके बाद आजीवन कारागार का दण्ड दिया जा सकता है। (७) अधम पुरुष को प्रथम अपराध पर पूर्वोक्त दण्ड, फिर कैद और उससे नित्य सड़क की सफाई कराई जाए। (८) अधम पुरुष उत्तम दण्ड का अपराध करे तो पहले मध्यम साहस का दण्ड, फिर पूर्वोक्त, फिर दुगुना-तिगुना, फिर भी आजीवन कैद और केवल नीच कर्म कराया जाएँ। (९) धन के

मद में अपराध करने पर पहले धन का चतुर्थ भाग छीन ले, फिर अपराध करने पर आधा, फिर सारा इसके वाद कैद में डाल देना चाहिए।

(१०) सहायकों के अभिमान, विद्या मद और बल के दर्प से पाप करने वाले को कैद में डालकर बेंत लगवाने चाहिए। (११) भार्या, पुत्र, भगिनी, शिष्य, दास, बहिन, छोटा भाई अपराध करे तो पतली रस्सी या बाँस की पतली छड़ी से मारा जाए। यह मार पीठ पर पड़े, मुख व मस्तक पर नहीं। इसके विपरीत प्रहार करने पर उसे चोर के समान दण्ड दिया जाए।

(१२) अपराधी को एक मास, तीन मास, छः मास या एक वर्ष तक की कैद और नीच कर्म का दण्ड अथवा आजीवन नीच कर्म कराने का दण्ड दिया जा सकता है। पर किसी को फाँसी नहीं दी जाए। किसी भी प्राणी की हिंसा अच्छी नहीं—ऐसा श्रुति कहती है। (१३) राजा लोभ वश धन दण्ड देकर प्रजा को पीड़ित न करे। यदि पिता आदि अपराधी हों और असहाय हों तो इन अपराधियों के लिए दण्ड व्यवस्था नहीं है। जो राजा क्षमाशील होता है, वह प्रजा का अनुरंजन कर सकता है। (१४) सदाचारी माता, पिता, भार्या को छोड़ जो विषयासक्त है, राजा उसे बेड़ियों से बाँध सन्मार्ग पर लाए। राजा उस मनुष्य की आमदनी में से आधा धन उसके माता-पिता को प्रयत्नपूर्वक दिलाता रहे।

राजा की आर्थिक नीति—कोष, प्रजा और सेना

(१) राजा जिस किसी तरह भी धन का संग्रह करे और उससे राष्ट्र की रक्षा, सेना संग्रह और यज्ञादि क्रियाओं का सम्पादन करे। भोग-विलास के लिए संगृहीत कोष दुःख का कारण बन जाता है। (२) जिसने अन्याय से कोष का संग्रह किया, वह पाप का भागी होता है। जो धन सुपात्र से ग्रहण किया-जाए और सुपात्र को दिया जाए वही वढ़ता है। अधर्म से संग्रह कर जो भोग में लगाता है वह अपात्र है। अपात्र का सारा धन यदि राजा छीन ले, तो भी कोई दोष उसे नहीं लगता। (३) जो अधर्मशील राजा है, उसका भी धन सब तरह से छीन लेना उचित है। छल, बल प्रयोग, दस्यु वृत्ति—किसी भी तरह दुष्ट शत्रु के राष्ट्र से धन ले लेना चाहिए। (४) जिस राजा ने नीति बल का परित्याग कर, अपनी प्रजा का पीड़न कर धन संग्रह किया है उसका राज्य एक दिन शत्रु के वश में चला जाता है। (५) दण्ड, पृथ्वी, कर और महसूल बढ़ाकर कोष न भरे। तीर्थ या देव स्थानों को, आपत्काल छोड़कर कभी इन से कर न ले। (६) जब राजा दुष्ट शत्रु के विनाश के निमित्त सेना संग्रह करे, उस समय विशेष दण्ड, शुल्क आदि बढ़ाकर प्रजा से धन संग्रह कर सकता है। (७) जब राजा पर कोई आपत्ति आए तो उस समय वह धनवानों से ब्याज पर धन ले सकता है। आपत्ति से छुटकारा होने पर, उस धन को ब्याज सहित चुका दे। (८) यदि आपत्काल को छोड़ कर राजा कर बढ़ा देता है, या प्रजा के धन का शोषण करता है, तो प्रजा, राज्य कोष और राजा नष्ट हो जाते हैं।

(९) दण्ड, भूमिका कर, महसूल के बिना कोष से ही बीस वर्ष तक सेना का

संरक्षण हो सके, राजा इतना ही कोप बढ़ाए, कोप ही तो प्रजा के रक्षण में समर्थ होता है। कोष सेना के आधार पर और सेना कोप के आधार पर मानी गई है। (१०) सेना के संरक्षण से कोप और राष्ट्र की वृद्धि तथा शत्रु का क्षय होता है। प्रजा के संरक्षण से कोष और राष्ट्र की वृद्धि और शत्रु क्षय से स्वर्ग की प्राप्ति होती है। (११) राजा अपनी प्रजा की रक्षा कर, शत्रु को करदायी बना, उसके धन से अपने कोप को भरता है, वह राजा उत्तम, जो वैश्य वृत्ति वाला वह मध्यम, और जो सेवा, दण्ड, तीर्थ, देव स्थान आदि पर कर लगा कोप संग्रह करता है, वह अधम कहाता है। (१२) जिस धन से बारह वर्ष तक परिवार का संचालन हो वह धन नीच, जिससे सोलह वर्ष तक निर्वाह हो वह मध्यम और जिससे तीस वर्ष तक कुटुम्ब का भरण-पोपण हो वह उत्तम धन कहाता है।

व्यापार की विधि : धान्य संग्रह : रसादि की रक्षा

(१) व्यापारी आधे धन से व्यापार, और आधा राजा के पास सुरक्षित आपत्-काल के लिए रखे। आधे मूलधन से व्यापारी व्यापार करे। कोई भी व्यापारी केवल ब्याज की रकम से व्यापारी नहीं बन सकता। (२) जब माल के दाम चढ़ जाते हैं तब व्यापारी माल बेचता और घटने पर खरीदता है। वैश्य लोग इस तरह अपने आधे धन को हाथ न लगाते हुए राजा के पास सुरक्षित रखते हैं। (३) राजा और प्रजा के पास धन न रहने से प्रजा की पीड़ा बढ़ जाती है और राज-परिवार को दग्ध कर देती है। तीन वर्ष तक काम दे सकने योग्य धान्य का संग्रह करना चाहिए जो दुर्भिक्ष, युद्ध आदि के लिए रखा रहे। प्रजा और राजा का इसी में हित है। अधिक समृद्धिशाली राजा अन्न का संग्रह अधिक भी करते हैं। (४) निःसार न हुए धान्य का उपभोग करे, जितना व्यय हो, उतना ही राजा नवीन धान्य खरीद ले। यह खरीद प्रति वर्ष करे। धान्य की तरह औषधि, धातु, तृण, काष्ठादि का भी संग्रह करे। संगृहीत धन-धान्य की प्रयत्न के साथ रक्षा करे। जो धन कमाना तो जानता हो पर रक्षा करनी नहीं जानता, उससे अधिक कौन मूर्ख हो सकता है। कृपण की तरह राजा धन की रक्षा करे। (५) राजा परीक्षकों से परीक्षा कराके रत्नादि की रक्षा करे।

(६) मोती तोलने की तीन रत्ती चार कृष्णलकों की होती है। चौबीस रत्तियों का एक रत्नटंक, चार टंक का एक तोला होता है। आठ रत्ती का एक माशा और दस माशे का एक सुवर्ण (मोहर) होता है। पाँच सुवर्णों का मूल्य चाँदी के अस्सी रुपये होते हैं। (७) हीरों को छोड़ अन्य छोटे रत्नों का मूल्य संख्या से होता है। अत्यन्त गुण वाले मोती का मूल्य तोल से रत्तियों द्वारा होता है।

पशुओं का मूल्य

(१) जिस गौ के उत्तम सींग, उत्तम वर्ण, सीधी तरह और बहुत दूध देने वाली हो, जिसका बछड़ा सुन्दर हो, तरुणी हो, छोटी या बड़ी—उसका मूल्य अधिक होता है। बछड़े द्वारा दूध पी जाने के बाद जिस गौ का एक सेर दूध बचा रहे उसका मूल्य

एक पल चाँदी (चार रुपया) होता है। (२) गौ से आधा मूल्य, दो रुपया— बकरी का और बकरी से आधा मूल्य —एक रुपया —भेड़ का होता है। जो बहुत हठ और लड़ने वाला हो, उस मेढ़े का मूल्य एक पल (चार रुपया) होता है। (३) उत्तम, पुष्ट गौ का मूल्य दस या आठ पल (बत्तीस या चालीस रुपया) चाँदी होती है। मेषी और भेड़ का भी उत्तम मोल एक पल (चार रुपया) माना गया है। (४) गौ के बराबर या गौ से ड्योढा भैंस का मूल्य माना गया है। जिस बैल के अच्छे सींग, वर्ण, बलवान्, बोझा ले जाने में समर्थ और शीघ्रगामी हो, आठ ताल ऊँचा हो- ऐसे बैल का मूल्य साठ रुपया माना गया है। उत्तम भैंसे का मूल्य भी सात या आठ पल (सत्ताइस या बत्तीस रुपया) माना गया है। (५) उत्तम गज और अश्व का मूल्य दो, तीन या चार सहस्र रुपया या पल है। भैंस के बराबर ऊँट का तीस रुपया के लगभग उत्तम मोल माना गया है। (६) जो घोड़ा एक दिन में सौ योजन चल सके, वह उत्तम होता है। उसका मूल्य पाँच सौ स्वर्ण मुद्रा होता है। (७) तीस योजन चलने वाला ऊँट उत्तम माना गया है। उसका मूल्य सौ पल (चार सौ रुपया) होता है।

शुल्क और कर लगाने के विविध रूप

(१) बेचने और खरीदने वालों को जो राजभाग देना पड़ता है वह शुल्क (महसूल चुंगी) कहलाता है। शुल्क के स्थान बाजारों के स्थान या गाँव के बाहर की चौकी होती है। एक वस्तु का एक बार ही राज्य शुल्क लेना चाहिए। (२) राजा छल पूर्वक बार-बार किसी वस्तु का शुल्क ग्रहण न करे। बेचने या खरीदने वाले से वस्तु का बत्तीसवाँ भाग (रुपये पर दो पैसे) ग्रहण करे अथवा मूलधन को छोड़कर लाभ में से बीसवाँ या सोलहवाँ भाग ग्रहण करे। जिसे घाटा रह गया हो या मूलधन से भी कम दाम से वस्तु बिकी हो, उससे शुल्क न ले। लाभ के अनुसार ही शुल्क ले। राजा किसान से इस तरह अपना कर ग्रहण करे जिससे वह रुष्ट न हो। (३) राजा का कर आदि सारे व्यय चुका कर जिस खेती से दुगुना लाभ हो, वह श्रेष्ठ होता है। इससे न्यून लाभ दुःख का कारण बन जाता है। (४) तड़ाग, बावड़ी, कूप की सिंचाई से जहाँ अन्न हो, या मेघ के जल तथा नदी की सिंचाई से अन्न पैदा हो—राजा क्रमशः इनसे तीसरा, चौथा और आधा अंश ग्रहण करे। कंकर व बंजर भूमि से आय का छठा भाग कर के रूप में ग्रहण करे। (५) जिस भूमि से राजा को सौ रुपया भर चाँदी की आमदनी हो, वहाँ से पैदावार का बीसवाँ भाग छोड़ दे। यही क्रम स्वर्ण और चाँदी में जानना चाहिए। ताम्र की उत्पत्ति में तीसरा अंश छोड़ दे। लोहा, वंग और सीसे की उत्पत्ति में चौथा अंश छोड़ा जाता है। (६) रत्नों की उत्पत्ति और लवण आदि की उत्पत्ति में खान का खर्च काटकर आधा छोड़ना चाहिए। अधिक लाभ होने पर तीसरा, पाँचवाँ, सातवाँ या दसवाँ—जैसा समुचित हो, कर लिया जा सकता है। तृण-काष्ठ लाने या पैदा करने वालों से मूल्य का बीसवाँ भाग ले। (७) बकरी, भेड़, भैंस और अश्वों की वृद्धि में से आठवाँ भाग ग्रहण करे। भैंस, बकरी, भेड़ और गौ के दूध में से तेरहवाँ भाग कर स्वरूप ले। (८) राजा, कारीगर, शिल्पी आदि से पन्द्रह दिन में एक दिन मुफ्त काम करवा

ले। तडाग, बावड़ी, नहर या इसी प्रकार की नवीन भूमि की खुदाई करने वालों से—जब तक उनके खर्च से दुगुनी आमदनी न हो—उनसे कोई कर न ले। (६) प्रत्येक किसान को कर ग्रहण की राजा की मुहर लगी रसीद दी जाए। ग्राम की भूमि का कर निश्चित कर एक चौधरी वहाँ नियुक्त कर दे जो कर संग्रह कर राज्य कोष में पहुँचा दे। इस चौधरी का कोई जामिन भी होना चाहिए। राजा अपने भाग में से छठा भाग इन ग्रामपतियों को दे। (१०) कुटुम्ब के उपयोग के लिए गौ-दुग्ध, अन्न, फल आदि पर कर न ले और अपने उपभोग के लिए अन्न-वस्त्र खरीदने वाले पर भी कोई कर न ले। (११) व्यापारी और ब्याज लेने वाले से राजा लाभ का बत्तीसवाँ अंश ले। घर बनाने की भूमि का कर भी खेत की भूमि के समान ही हो। (१२) बाजार के व्यापारियों पर दूकानों का कर (टैक्स) लगाया जाए और मार्ग की सफाई के लिए मार्ग पर चलने वालों पर टैक्स लगाया जाए। राजा इस प्रकार कर ग्रहण कर प्रजा की दासवत् रक्षा करे।

५. राष्ट्र का स्वरूप और वर्णाश्रम धर्म

चारों वर्ण खेती करें : विद्या और कला

(१) जितनी भूमि जिस राजा के आधीन होती है, उतना प्रदेश राष्ट्र कहाता है। सर्वगुण सम्पन्नता की दृष्टि से राजा कुवेर से सैंकड़ों गुणा अधिक है। यह पद तप से ही प्राप्त होता है। जगत् राजा के आश्रय ही होता है और सारी प्रजा राजा की आज्ञा से आचरण करती है। राजा ही राष्ट्र के पुण्य और पाप का फलभोगी है। जो राजा धर्म की प्रयत्नपूर्वक रक्षा और स्थापना करता है, वही कीर्ति और लक्ष्मी को प्राप्त करता है। (२) जरायुज, अंडज, स्वेदज, उद्भिज —चार प्रकार की जीवों की जाति मानी गई है।

(३) ब्राह्मण के यज्ञ, अध्ययन और दान—यह कर्म हैं। प्रतिग्रह, अध्यापन और यज्ञ कराना—यह जीविका के निमित्त ब्राह्मण के विशिष्ट कर्म हैं। (४) सज्जन-रक्षा, दुष्ट नाश अपने कर का ग्रहण—यह क्षत्रिय के कर्म हैं। खेती, गौ रक्षा, वाणिज्य —यह वैश्य के और दान तथा सेवा शूद्र के कर्म हैं। अनेक क्रियाओं के भेद से सबके भरण-पोषण की वृत्ति अनिन्दित मानी गई है। (५) खेती की भूमि के भेद से मनु आदि ऋषियों ने चारों वर्णों के लिए कृषि का विधान किया है। ब्राह्मण सोलह बैल और अन्य वर्ण के बारह बैल रख सकते हैं। अन्त्यज दो बैल रख सकता है। यदि भूमि कठोर हो तो बैल बढ़ाये जा सकते हैं। ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य के लिए भिक्षा वृत्ति का निषेध है। जो कलाओं सहित सब विद्याओं को पढ़ा नहीं है, वह केवल जाति से गुरु होने का अधिकारी नहीं है। (६) विद्या और कला अनन्त हैं, इनकी संख्या नहीं हो सकती। मुख्य रूप से विद्या बत्तीस और कला चौंसठ होती हैं। (७) जिस कर्म का वाणी द्वारा सम्पादन किया जाए, वह विद्या कहाती है और जिसे गूंगा भी कर ले वह कला (हाथ का काम) होती है।

(८) ऋक्, यजु, साम, अथर्व—चार वेद, आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्व वेद और तन्त्र—यह चार उपवेद, शिक्षा, व्याकरण, कल्प, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द—यह छः वेदाँग, मीमांसा, न्याय, वैशेषिक, साँख्य, वेदान्त और योग, इतिहास, पुराण, स्मृति, नास्तिकों के मत, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, शिल्पशास्त्र, अलंकारशास्त्र, काव्य-शास्त्र, देश भाषा, अवसार की उक्ति, यवन-मत, देश आदि के धर्म यह बत्तीस सब विद्या कहाती हैं। (९) भिन्न-भिन्न कारीगरी से कलाओं के भेद हो जाते हैं। जिस-जिस कला (कारीगरी) का आश्रय लेकर लोग चल पड़े, वही आजकल जाति कहलाने लगी।

(१०) ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास—यह चार आश्रम हैं। ब्राह्मण को चारों आश्रमों का और क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र को तीन आश्रमों का अधिकार है। इन्हें संन्यास का अधिकार नहीं है। (११) ब्रह्मचारी विद्या समाप्त कर गृहस्थी बने। अपनी इन्द्रियों की विजय के लिए वानप्रस्थ और मोक्ष साधन के निमित्त संन्यासी होवे। (१२) जप, तप, तीर्थ सेवा संन्यास और मन्त्र साधन को जो शास्त्र आज्ञा के विरुद्ध करता है, राजा उसे दण्ड दे। (१३) यदि राजा उपेक्षा करे और दण्ड द्वारा शिक्षा न दे तो कुल दुष्कुल हो जाएँ और दुष्कुल कुलीनता की ढींग मारने लगें।

वृक्ष-लता-जलाशय

(१) राजा उत्तम वृक्षों को बीस हाथ, मध्यम वृक्षों को पन्द्रह हाथ और सामान्य वृक्षों को दस हाथ और छोटे वृक्षों को पाँच हाथ की दूरी पर लगवाए। बकरी, भेड़, गौ के गोबर (खाद) तथा जल से इनकी पुष्टि करे। अन्य भी अच्छे, उत्तम पुष्प वाले, सुन्दर वृक्ष गाँव के चारों ओर लगवाए। (२) जो खदिर आदि काँटे वाले वृक्ष होते हैं, वह आरण्यक कहाते हैं। उन्हें वन में लगवाए। साथ ही सुन्दर लताएँ गाँव के उद्यानों में और वन के योग्य लताएँ वन में आरोपित करनी चाहिए। (३) कूप, बावड़ी, पुष्करणी (तलाई), तड़ाग आदि जलाशय सबके लिए सुलभ हों। जलाशय की गहराई से दुगुनी, तिगुनी, फैलाव वाली सीढ़ियाँ इनके चारों ओर होनी चाहिए। (४) कूप आदि जलाशय राष्ट्र में अनेक हों जिनमें विपुल जल भरा रहे। नदियों के पुल दृढ़ और बाँध मनोहर बनवाने चाहिए। (५) नदियों को पार करने के लिए नौकादि जलयान तैयार रहें। गाँव के मध्य चौराहे पर देवमन्दिर हों।

राजा की न्याय-व्यवस्था

(१) व्यवहार (मुकदमे) देखकर दुष्टों का निग्रह राजा करे। प्रजा के अभीष्ट को पूरा करना न्याय और पालन कहाता है। (२) शत्रु को अपने अनिष्ट करने योग्य न रहने देने को शत्रु नाश कहते हैं। पापाचारों की निवृत्ति को ही दुष्ट निग्रह माना जाता है। (३) साधु-असाधु का विचार कर राजा अपनी प्रजा को धर्म में सुरक्षित रखे, जिससे अर्थ की सिद्धि हो, वह व्यवहार कहाता है। (४) प्राड्विवाक (वकील) अमात्य, ब्राह्मण और पुरोहित सहित राजा अपनी बुद्धि को निश्चल कर, क्रोध-लोभ

से रहित हो क्रम से मुकदमों को देखे। अकेला किसी बात पर विचार न करे और वादी-प्रतिवादी दोनों की युक्ति-प्रत्युक्ति को अच्छी तरह राजा सुने। (५) राजा व राज्य अधिकारी कभी गुप-चुप अभियोगों का निर्णय न करें। राग, द्वेष, लोभ, भय और एकान्त में वादी-प्रतिवादी के वचन सुनना---पक्षपात के यह पाँच कारण माने गए हैं। अपने पुरवासियों की रक्षा न करने वाला और भोगविलास में लिप्त राजा नरक-गामी होता है। इसलिए राजा को शास्त्र के अनुसार चलना चाहिए। (६) जो राजा स्वयं निर्णय करने में असमर्थ हो, वह उस समय वेद पारगामी, ब्राह्मण को इस निर्णय के काम पर लगा दे। यह ब्राह्मण जितेन्द्रिय, कुलीन, पक्षपात हीन, क्रोध रहित, स्थिर बुद्धि, परलोक का भय मानने वाला, धर्मात्मा और उद्योगी होना चाहिए। (७) यदि ऐसा ब्राह्मण न मिले तो क्षत्रिय को इस काम में लगाए अथवा धर्म शास्त्रज्ञ वैश्य को नियुक्त करे पर शूद्र को यह स्थान न दे। (८) मुकदमों के कानून जानने वाले, विद्वान् और धर्मात्मा आलस्यहीन व्यक्तियों को सभ्य (निर्णायक) बनाए। इसमें किसी जाति का पक्षपात न करे। (९) यदि द्विजाति अपने आश्रम में रहते हुए अपने काम के विषय में झगड़ें तो राजा इनके निर्णय में अपने हित की इच्छा से कभी अन्याय न करे। तपस्वियों के कार्य तो विद्वान् ब्राह्मणों से ही करवा देवे। (१०) राजा अपने से उत्तम पुरुषों को उपदेश न दे और गुरु, आचार्य और तपस्वियों के प्रति सदा विनम्र रहे। (११) मुकदमों के निर्णायक लोकनीति, वेद और धर्म के ज्ञाता तीन, पाँच या सात संख्या में होने चाहिए।

(१२) जिस सभा में उत्तम ब्राह्मण उपदेष्टा होकर बैठें, वह सभा यज्ञ के सदृश मानी गई है। उस सभा में समझदार वैश्य श्रोता हो। (१३) सभा में धर्म का जानने वाला—बिना बुलाए भी अपनी सम्मति प्रकट कर सकता है। शास्त्र के अनुसार बोलने वाला देवी वाणी में बोलता है। (१४) मनुष्य या तो सभा में न जाए और जाए तो अयथार्थ न बोले। जो असत्य सुनकर चुप रहे या सत्य के विरुद्ध बोले, वह पापी होता है। (१५) राजा उत्तम कुलों के पंच व प्रमुखों को जिन्हें वह जानता हो, उन्हें गाँव के झगड़े निपटाने पर लगाए। यह व्यक्ति चोरी और डाके के अभियोगों को छोड़ प्रजा के अन्य मुकदमों का निर्णय करे।

(१६) कुल श्रेणि और गण से अधिक ऊँचे योग्य सभ्य (मुंसिफ) माने गए हैं। इनसे ऊँचे अध्यक्ष (मैजिस्ट्रेट) और सबसे ऊँचा धर्म-अधर्म का नियोजक राजा होता है। (१७) राजा अधिकारी, सभ्य, स्मृति कराने वाला गणक (हिसाब कर्ता), लेखक, सुवर्ण, अग्नि, जल और राजपुरुष—यह दश राजा के निर्णय करने के अंग हैं। इनकी सभा में बैठे राजा न्याय-अन्याय करने वाली ऐसी सभा यज्ञ-मंडप समझनी चाहिए। (१८) अध्यक्ष राजा की आशा को पढ़कर सुनाए। राजा आज्ञा प्रदान करे। सभ्य (अधिकारी) उस आज्ञा के रूप और कार्य की पड़ताल करें। स्मृति नामक अधिकारी जप, दम, दान आदि का वक्ता होता है। शपथ दिलाने वाला तप्त सुवर्ण और अडिक होता है। भूखे-प्यासे के लिए जल रखा जाता है। गणक (खजांची) द्रव्य की गणना और

सब विवरण लिखे। गणक और लेखक ऐसे हों जो शब्द और लिपि के तत्त्वज्ञ, हिसाब में कुशल और ईमानदार हों, अनेक भाषाओं के ज्ञाता हों।

राजा प्रतिदिन धर्मशास्त्र पढ़े : अपराधियों को दण्ड

(१९) जिस स्थान पर धर्मशास्त्र के अनुसार राजनीति का कार्य हो, उसे धर्माधिकरण कहते हैं। (२०) राजा प्रतिदिन देश की रीति, शास्त्र मर्यादा, तथा अन्य साधनों के साथ कुल धर्म, राष्ट्र धर्म, जाति धर्म और श्रेणि धर्मों सहित अपने धर्म का पालन करने वाला हो। इनका पालन न करने से प्रजा असन्तुष्ट हो जाती है। राजा प्रातः धर्मशास्त्र का अवलोकन और मध्याह्न प्रजा के विवादों को निपटाए। (२१) किसी मनुष्य की मृत्यु, चोरी, डाका व अन्य इसी प्रकार का अपराध हो तो उसके लिए समय का कोई नियम नहीं, उसका विवेचन होना चाहिए। (२२) राजा कभी राग, द्वेष, लोभ, क्रोध के वश हो प्रार्थी व अभियुक्त द्वारा न कही गई बात को अपनी बुद्धि से न उठावे। यदि कोई छल-कपट अपराध अथवा राजा की पदवी के अयोग्य कोई बात निकले तो तत्काल उसे पकड़ ले। इसके आवेदन की आवश्यकता नहीं। (२३) जो राजा के समीप आकर विविध प्रकार के अनुचित कार्य करे व प्रजा को पीड़ा दे, उन्हें तत्काल दण्ड दे। (२४) राजा की आज्ञा का उल्लंघन, स्त्री का वध, वर्ण संकरता, पर-स्त्री गमन, चोरी, व्यभिचार द्वारा गर्भ धारण, पूज्य के प्रति कठोर भाषण, कठोर दण्ड और गर्भपात—यह दस अपराध माने गए हैं। राजा इनके अपराधियों को दण्ड देवे। (२५) अन्न चोरी से काटने वाला, अन्न विधातक, आग लगाने वाला, राजा का द्रोही, राजमुद्रा का भंग करने वाला, राजा के मंत्र का भेदक, कैदी के बलात् छुड़ाने वाला, बिना अधिकार व स्वामी बने किसी की वस्तु को बेच देने वाला, दान और किसी के भाग (अंश) और दण्ड का लोपक, राजा द्वारा की गई घोषणा को मिथ्या करने वाला, लावारिस माल का हड़प करने वाला, राजा के भाग पर अधिकार जमाने वाला, अपराधी को छिपाने वाला, उद्धत, क्रूर, भाषण कर्ता, उद्धत वेषधारी, क्रोधी, राजा के साथ एक आसन पर बैठने को इच्छुक, अभिमानी—इन बाईस अपराधों का वादी दण्ड का भागी होता है।

राजा द्वारा अभियोग निर्णय की पद्धति

(१) राजा के सम्मुख प्रार्थी की प्रार्थना आवेदन और जो प्राड्विवाक (राजा के प्रतिनिधि या वकील) आदि से कहा जाए वह भाषा (बयान) कहाती है। (२) राजा सभ्यों सहित पूर्व पक्ष का ठीक विचार कर वादी के बयान पर अँगूठे का निशान लगा, फिर राजा की मोहर लगवा ले। वादी का यह बयान एक प्रकार की गवाही है। (३) राजा ग्रहण करने योग्य और अग्राह्य विवाद को भली प्रकार विचार, वादी को अपना पक्ष कहने का पूरा समय दे। इसके बाद वादी को बोलने से रोक दे। (४) इसके बाद राजा की आज्ञा से प्रतिवादी को बुलाया जाए। यदि प्रतिवादी बहाना करके देर लगाए अथवा न आए, तो उसे दण्ड देना चाहिए। जिस पर अभियोग प्रामाणित हो व संदेह हो, उसे

ही मुद्रांकित पत्र व सिपाही द्वारा बुलाया जाए। (५) असमर्थ, बालक, वृद्ध, आपद ग्रस्त, राजकार्य में संलग्न, प्रमत्त, दुःखी भृत्य को राजा न बुलाए। इसी प्रकार दुर्बल पक्ष वाली युवती, कुलीन और प्रसूतिका, उत्तम वर्ण की कन्या और जाति की मुख्य स्त्री को भी राजा कचहरी में न बुलाए। उनके घर जाकर अभियोग के बारे में पूछताछ कर ली जाए। इसी प्रकार अन्य अनिवार्य कार्यों में लगे व्यक्तियों को नहीं बुलाना चाहिए। असमर्थ, सज्जन पुरुष हों, उन्हें सवारी में राजा बुलाए। जो संन्यासी हों, उन्हें अत्यन्त आवश्यकता होने पर ही बुलाए और उनके साथ ऐसा कोई व्यवहार न करे जिससे वह कुपित हो जाए। (६) अर्थी या प्रत्यार्थी, अभियोग के नियम जानने वाले किसी पुरुष को अपना प्रतिनिधि बना सकता है। रोगी, वृद्ध, बालक इत्यादि के पूर्व पक्ष व उत्तर पक्ष उनका नियुक्त पुरुष (मुख्तार) उपस्थित कर सकता है। इस मुख्तार को मुकदमे की आय का सोलहवाँ भाग दिलाया जाए, अधिक नहीं। यदि लोभ से कुछ छल-कपट करे तो राजा उसे दण्ड दे। भ्राता-पिता, पुत्र या अन्य सम्बन्धी मुख्तार न हो। (७) किसी कठोर अपराध करने, गाली देने, झूठी गवाही देने, राजद्रोह व डाका—इन अपराधों में यदि अपराधी अदालत में न आए तो राजा अभियोग के अनुसार उसे दण्ड दे और बलपूर्वक पकड़वा कर अदालत में मँगवाए। इसके बाद इस अपराधी की ज़मानत किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति की ली जाए। इसके बाद दोनों पक्षों की अपने सम्मुख युक्ति सुनकर राजा अभियोग का निर्णय करे।

(८) अभियोग के कई पक्ष होते हैं, जैसे (क) कारणों से निश्चित, सिद्ध करने योग्य, लोक सिद्ध (ख) हीनता व अधिकता युक्त दूषित कथन (ग) अर्थहीन पक्ष, निष्प्रयोजन (घ) कभी देखा व सुना न गया हो, जैसे गूँगे ने गाली दी—अप्रसिद्ध (ङ) निराबाध, जैसे अपने घर में कोई उच्च स्वर से पूछ रहा हो (च) असाध्य,—जैसे वन्ध्या गर्भधारण क्यों नहीं करती (छ) अपनी बात कहकर उसके विपरीत कहना—इत्यादि सब पक्षों की पूर्ण बात सुनकर ही राजा अपना निर्णय दे।

निर्णय लिखने की विधि और अभियोग के चार पाद

(१) वादी-प्रतिवादी के सम्मुख ही राजा निर्णय लिखे। इसमें कोई अंश संदिग्ध व त्रुटिपूर्ण न हों। (२) पूर्व पक्ष का यदि प्रतिवादी ठीक-ठीक उत्तर न दे सके तो प्रतिवादी पर डिगरी कर साम, दान, भेद, दण्ड—किसी भी प्रकार वादी का धन दिलवाना चाहिए। (३) प्रतिवादी के उत्तर चार प्रकार के माने गए हैं। (क) सत्य उत्तर अथवा प्रतिपत्ति (ख) मिथ्या उत्तर (ग) वादी की शिकायत को प्रतिवादी मानता हुआ भी अन्य कारण बताए—अत्यवस्कन्दन उत्तर कहाता है (घ) वादी के अभियोग पर उत्तर देना—जवाबदावा, प्राङ्न्याय कहा जाता है। (४) जो अधिकारी वादी प्रतिवादी के पक्षों का ठीक प्रकार विवेचन न कर सके, वह अधिकारी चोर के समान दण्डनीय है। (५) इस प्रकार किसी अभियोग के चार पाद हैं। (क) पूर्व पक्ष (ख) उत्तर पक्ष (ग) क्रियापाद—तहकीकात (घ) निर्णय-फैसला। (६) राजा मिथ्या मुकदमे खड़ा करने वाले को उसके मुकदमे के अनुसार दण्ड दे। मिथ्या साक्षी को दुगुना और साक्षी

को बहकाने वाले को भी दुगुना दण्ड दे। (७) राजकीय और लौकिक—दो प्रकार का लेख होता है। इनमें साक्षी या बिना साक्षी—दोनों प्रकार की प्रामाणिकता होती है, देश-काल के अनुसार। भोग (कब्जा), दान, क्रिया, आधान (धरोहर), संवित् (करार), दास और ऋण—यह सात बातें लौकिक लेख में होती हैं। शासन, ज्ञापन और निर्णय—यह तीन बातें राजकीय लेख में होती हैं।

साक्षियों के सम्बन्ध में नियम

(१) विवाद के सम्बन्ध में जानने वाला साक्षी होता है। कृत-अकृत—भेद से साक्षी दो प्रकार का होता है, अर्थात् वादी का पेश किया हुआ और दूसरा स्वयं राजा द्वारा बुलाया गया। (२) साक्षी की वाणी एक सदृश हो, उसमें कोई भिन्नता नहीं हो। जिसकी बुद्धि, स्मृतिशक्ति और श्रवणशक्ति ठीक हो वह, दीर्घकाल के बाद भी साक्षी रह सकता है। जो प्रत्यक्ष बात कहे, वही उत्तम साक्षी है। वादी-प्रतिवादी दोनों का माना हुआ एक भी धर्मात्मा साक्षी पर्याप्त होता है। स्त्रियों के झगड़े में स्त्री साक्षी होनी चाहिए। (३) वादी-प्रतिवादी के सम्मुख साक्षी ले। पीछे गवाही लेना निरर्थक है। यदि साक्षी बराबर हो तो गुणवान् साक्षियों की बात माने। जब साक्षी अपना बयान समाप्त कर दे तो फिर उससे बार-बार पूछना अनुचित है। साक्षियों को बुलाकर उनसे शपथ पूर्वक गवाही लेवे। (४) जो साक्षी सत्य गवाही देता है, वह उत्तम लोकों को प्राप्त करता है। किसी भी वर्ण का साक्षी क्यों न हो, उसे सर्वदा सत्य ही बोलना चाहिए। मनुष्य का अपना आत्मा ही साक्षी है और अपना आत्मा ही उत्तम गति देने वाला है। इसलिए मनुष्य अभी मिथ्या न बोले। पापी यह समझता है कि मैं जो मिथ्या साक्षी दे रहा हूँ वह कोई नहीं जानता पर यह धोखा है। उसका आत्मा सब कुछ जानता है। मिथ्या साक्षी देने वाला जिसके विरुद्ध साक्षी दे रहा है, उसके सौ जन्म के पापों का अधिकारी हो जाता है। (५) लेख और साक्षी दोनों ही न मिलें तो भोग (कब्जे) के अनुसार राजा निर्णय करे। यदि किसी का कब्जा न हो तो लेख और साक्षियों के अनुसार विचार करे। राजा लोक और शास्त्र की मर्यादा का भी निर्णय देते समय ध्यान रखे।

(६) जिसकी भूमि दूसरे मनुष्य ने बीस वर्ष तक भोगी हो और वह इस अवधि में कुछ न बोले तो उसे वह भूमि नहीं मिल सकती। (७) धरोहर, ग्राम की सीमा, बालक का धन, व्याज के लिए रखा धन और स्त्री का धन, राजा का, वेदपाठी का धन—इन पर यदि किसी का अधिकार भी हो गया है तो भी वह पूर्व स्वामी का रहेगा। यदि पूर्व स्वामी इसकी सर्वथा उपेक्षा कर दे, समय भी बहुत गुजर जाए, तब पूर्व धनी उसे नहीं प्राप्त कर सकेगा।

साक्षियों द्वारा शपथ

(१) यदि लेख आदि साधन न मिलें और वादी धन हड़प करना चाहे तब पूर्व काल की गुप्त तहकीकात, युक्ति प्रयोग और तीसरी शपथ—इन तीन विधियों से

निर्णय करे। (२) दान, प्रज्ञापन (समझाना) फोड़ना, लोभ देना और किसी प्रकार से भी उसके चित्त को अपनी ओर खींचना—इससे गुप्त रहस्य निकाला जा सकता है। (३) यदि इससे भी काम न चले तब दिव्य शपथों का प्रयोग करे। अग्नि, विष, तुला, जल, धर्म, अधर्म, चावल चाबना तथा शपथ—यह बातें दिव्य निर्णय में मुनियों ने स्वीकार की हैं। (४) जिन मनुष्यों पर राजा का सन्देह हो अथवा चोर-लुटेरों ने जिनका नाम बताया हो, अथवा जो अपनी शुद्धि प्रकट करना चाहते हों, उनको दिव्य शपथ देनी चाहिए। इसमें विरोधी के शिर कम्पन की आवश्यकता नहीं है। महापातकों के लिए ही दिव्य शपथ है, साधारण विवादों के लिए नहीं। (५) विवाह समारोह, घूत आदि के मुकदमों में साक्षी मात्र पर फैसला किया जा सकता है, दिव्य शपथ और लेख की कोई आवश्यकता नहीं। (६) प्रमाण, हेतु, आचरण, शपथ, राजा की आज्ञा और वादी की स्वीकृति—इस तरह लेख और युक्ति को मिलाकर आठ तरह के निर्णय के साधन माने गए हैं। (७) जहाँ इनमें से कोई प्रमाण न हो, वहाँ राजा की आज्ञा ही प्रमाण माननी चाहिए। (८) यदि जाँच पड़ताल व साक्षी और कर्मचारियों में कोई दूषण पाया जाए तो उस मामले की फिर पड़ताल होनी चाहिए। राजा पुन: विचार कर सकता है। (९) अमात्य या प्राड्विवाक से कार्य विगड़ जाए तो राजा कार्य ठीक कर उन दोनों पर एक सहस्र रुपये का जुर्माना कर दे। बिना दण्ड के कोई मनुष्य अपने मार्ग पर नहीं चलता। (१०) जो राजा काम-क्रोध छोड़कर धर्म पूर्वक विवादों को निपटाता है, प्रजा उसके पीछे वैसे ही चलती है जैसी नदी समुद्र की ओर।

सम्पत्ति का बँटवारा

(१) पुत्र के वृद्ध होने पर भी वह अपने जीवित माता-पिता की सम्पत्ति का स्वतन्त्र अधिकारी नहीं बन सकता। सबसे बड़ा अधिकारी पिता, उसके अभाव में माता, और उसके बाद बड़ा भाई होता है। (२) अपनी सौतेली माताओं से पुत्र माता की तरह व्यवहार करे। अपने समान इन माताओं का एक-एक भाग निकाले। प्रजा अस्वतन्त्र है, राजा स्वतन्त्र है। (३) शिष्य अस्वतन्त्र और आचार्य को स्वतन्त्र कहा गया है। (४) कारोबार करने वाला पुत्र क्रय-विक्रय करने में पिता की आज्ञा का प्रतीक्षक नहीं माना गया है। पुत्र आदि ऐसे कार्यों में स्वतन्त्र होते हैं। (५) शिक्षा, दान और लेन-देन में यह सब स्वतन्त्र हैं। मणि, मुक्ता और प्रवालों का एक मात्र स्वामी पिता माना गया है। (६) समूची स्थावर सम्पत्ति का स्वामी केवल पिता या पितामह नहीं हैं। वे उसे वेच नहीं सकते। भार्या, पुत्र, और दास, स्वामी के जीवित रहने पर किसी भी पदार्थ के स्वामी नहीं होते। (७) स्वामी अपने धन के भाग में से पुत्रों और स्त्री का समान भाग नियत करे। अपने से आधा भाग कन्या का और उससे आधा भाग कन्या के पुत्र, दौहित्र का है। स्वामी के मर जाने पर पुत्र अपने-अपने भाग को बाँट लें। माता को पुत्र चौथाई अंश और भगिनी को माता से आधा भाग देवे। (८) भगिनी से आधा अंश भानजे का है। शेष का मालिक पुत्र है। पुत्र के अभाव में पत्नी और पत्नी के अभाव में पुत्री अधिकारिणी होती है। (९) पिता के धन को छोड़कर पुत्र ने अपने उद्योग

से जो धन कमाया हो, उसका वही स्वामी है। वह धन बाँटा नहीं जा सकता है। (१०) संकट, चोर, राजा आदि विपत्ति में जो धन की रक्षा कर दे, उस रक्षा करने वाले को दसवाँ भाग मिलना चाहिए। (११) राजा की आज्ञा से शत्रु के राज्य में चोरी करने वाले, उस धन में से राजा का छठा भाग निकालकर शेष धन चोर बराबर भाग में बाँट लें। (१२) धरोहर के और दास द्वारा रखे गए धन तथा अन्य इस प्रकार के धन को संकट काल में भी नहीं बाँटना चाहिए। (१३) जो चोरों से माल लेता है और गुपचुप सस्ता माल खरीद लेता है, राजा उस पुरुष को चोर की तरह ही दण्ड देवे।

बिक्री-कर की दर : महाजन से गरीबों की रक्षा

(१) राजा बिकने के माल पर सोलहवाँ या बत्तीसवाँ अंश अपना नियत करे, इससे अधिक नहीं, यह भी देश काल और मण्डी के व्यय को देख कर लगाए। (२) व्यापारी, लाभ की रकम छोड़कर अपनी आधी पूँजी से व्यापार करे ताकि घाटा होने पर दूसरे का धन चुकाया जा सके। यदि ऋणदाता ने मूलधन से दुगुना ब्याज खा लिया हो तो राजा ऋणदाता को मूलधन ही कर्ज लेने वाले से दिलवाए। (३) धनी लोग चक्रवृद्धि आदि ब्याज के फेर से प्रजा का धन लूट लेते हैं। इससे राजा धनिकों से गरीब प्रजा को बचाए। यदि ऋण देने वाला समर्थ है और ऋणदाता का धन नहीं चुकाता है तो राजा साम, दण्ड, कुर्की आदि से कर्जदार से धनिक का ऋण दिलवाए। (४) यदि वादी के पास प्रतिवादी का कोई लेख, ऋण के बावत हो और वह नष्ट हो गया हो और उसकी सूचना राजा को दे दी गई हो तो राजा साक्षी लेकर उस धनिक को कर्जदार से रकम दिलवाए। (५) जो कर्जदार न देना चाहे और धनिक उससे छीन लाए या दिए हुए को कर्जदार फिर लौटा लेना चाहे तो धर्मात्मा राजा दोनों व्यक्तियों को दण्ड दे। (६) धोखा व छल से बेचने वाले वाणिक् को राजा चोर के समान दण्ड दे।

(७) काम और गुणों को देखकर कारीगर की मजदूरी नियत की जाए। खेती, पाँचवें, चौथे, तीसरे या आधे हिस्से पर करवाई जा सकती है। प्रतिदिन का भी यही हिसाब है। (८) जो कारीगर धातुओं में मिलावट करे, उस पर मूल्य से दुगुना दण्ड हो। संसार के व्यवहार के अनन्त मार्ग हैं। उन सबका कथन कौन कर सकता है?

६. राष्ट्र रक्षा के साधन

दुर्ग पाँच प्रकार के

(१) गड्ढे-खाई, काँटे, और पाषाणों से जिस मार्ग को दुर्गम बना दिया गया हो, वह 'ऐरिण दुर्ग' कहाता है। जिसके चारों ओर बड़ी खाई हो वह 'पारिख दुर्ग' कहाता है। (२) ईंट, पत्थर, मिट्टी से जिसकी भित्ति बनी हों, वह 'पारिध दुर्ग' और जिसके चारों ओर बड़े कांटेदार वृक्ष हों वह 'वन दुर्ग' कहाता है। (३) जिस दुर्ग के आसपास जल न हो, रेतीले टीले हों, वह 'धन्व दुर्ग' और जिसके चारों ओर जल भरा हो, उसे 'जल दुर्ग' कहते हैं। (४) जिसके पीछे जल हो और पर्वत पर बनाया गया

हो वह 'गिरि दुर्ग' और वीरों की रचना से जो दुर्भेद्य हो, उसे 'सैन्य दुर्ग' कहते हैं। (५) जिस दुर्ग में अनुकूल शूरवीर निवास करते हों, वह 'सहाय दुर्ग' होता है। सब दुर्गों में सर्वश्रेष्ठ 'सैन्य दुर्ग' है, शेष सब इसके सहायक और आपत्काल के लिए ही हैं।

(६) दुर्ग में स्थित एक अस्त्रधारी अकेला सैकड़ों से लड़ सकता है। सौ योद्धा दुर्ग के प्राकार से सहस्रों से लड़ सकते हैं। इसलिए दुर्ग आवश्यक है। राजा अपने दुर्गों को युद्ध सामग्री से परिपुष्ट रखे। उसमें धान्य शूरवीर, अस्त्र कोष—इन सबका पूर्ण संग्रह हो। दुर्गों की अनुकूलता से विजय मिलती है।

सैन्य सेना के विविध रूप : अस्त्र-शस्त्र, पशु इत्यादि की संख्या

(१) शस्त्र-अस्त्र से सुसज्जित मनुष्य-समूह का नाम सेना है। इसके पैदल और सवार सेना के रूप में दो भेद हैं। इनके फिर तीन भेद हैं—दैवी, आसुरी और मानवी। (२) सेना के बिना राज्य नहीं चल सकता है। शारीरिक, आत्मिक और सैन्य बल और चौथा अस्त्रबल, पाँचवाँ बुद्धिबल, छठा आयुबल। राजा में इन छः बलों का मेल होना चाहिए, तभी वह जीत सकता है। (३) सेना का बल एक अपना और दूसरा मित्र-सेना का बल होता है। यह सेना बल भी दो प्रकार का—प्राचीन अपना मूल बल और दूसरा नवीन भरती किया गया। इसमें शिक्षित और अशिक्षित दो भेद और हैं। (४) मित्र-सेना वह जो स्नेह से कार्य-सिद्धि के लिए आए। जो अपनी वृत्ति (वेतन) से पाली गई हो, वह स्वीय सेना होती है। जो युद्ध के लिए उत्साहित हो वह सारभूत होना और जो टालना चाहती हो वह असार सेना होती है। अपने अधिकारी के साथ आने वाली सेनी गुल्मी भूत और बिना स्वामी के सेना अगुल्मक होती है। (५) शारीरिक बल और उत्तम भोजन आदि से बाहुयुद्ध के लिए सेना पुष्ट करे। शिकार और शस्त्राश्च के अभ्यास से राजा शूरवीरों की सेना बढ़ाए।

(६) अश्वारोही सेना से चौगुनी पैदल सेना होनी चाहिए। चौथा अंश बैल, आठवाँ अंश खच्चर, चौथाई अंश गज और ऊँट और गजों से आधे रथ होने चाहिएँ। रथों से दुगुने बड़े तोपखाने हों। सेना में अधिक पैदल, मध्यम संख्या में अश्वारोही और हाथी बहुत कम होने चाहिए। छोटी बन्दूक से संयुक्त तीन सौ पैदल सैनिकों की टुकड़ी हो। अस्सी अश्वारोही एक रथ, दो बड़े तोपखाने, दस ऊँट, दो हाथी, दो बैलगाड़ी, सोलह बैल, छः लेखक और तीन मंत्री—इस प्रकार सेना की एक टुकड़ी हो। (७) सेना इतनी हो जिसका साल भर में एक लाख रुपये खर्च हो। सामान और खाने-पीने का खर्च प्रतिमास डेढ़ हजार रुपये हो। लेखन के काम में दो सौ रुपये मासिक और मंत्रियों के व्यय में तीन सौ रुपये मासिक व्यय हो। स्त्री-पुत्रों के लिए तीन सौ रुपया मासिक, विद्वानों के लिए दो सौ रुपये मासिक, घुड़सवार, अश्व और पैदल सैनिकों के लिए राजा चार हजार रुपये निश्चित करे। गज, ऊँट, और वृष पर चलने वाली बन्दूक और तोपों के लिए चार सौ रुपये मासिक और शेष कोष में सुरक्षित रहे। (८) सैनिक मनुष्य भी ताड़ना आदि के दण्ड से वश में होते हैं, वे धन दण्ड से वश में नहीं आते।

(९) शत्रु कितना भी छोटा क्यों न हो, उसके ऊपर थोड़ी सेना लेकर चढ़ाई

नहीं करनी चाहिए। बुद्धिमान् राजा बड़ी सेना के द्वारा ही शत्रु भी जीत सकता है। (१०) थोड़ी भी सेना हो पर वह सुशिक्षित हो तो शत्रु को जीतने से समर्थ हो सकता है। (११) जो राजा भृत्यों को कटु वचन कहता रहता है, वेतन कम देता है, भयातुर रखता है, विदेश में भेजता रहता और सेना से अधिक परिश्रम लेता है, उसकी सेना शत्रु से अवश्य मिल जाती है। (१२) सेना में फूट पड़ जाने से विजय नहीं मिल सकती। बुद्धिमान् राजा शत्रु-सेना में फूट करवाता रहे और अपना स्वार्थ सिद्ध करता रहे। (१३) अतिप्रबल, प्रबल, समबल व हीनबल—कैसा भी शत्रु क्यों न हो उसे सेवा-नमस्कार, दान-मान, युद्ध-मित्रता इत्यादि उपायों और भेद नीति से अवश्य वश में किया जा सकता है।

अस्त्र-शस्त्रों के स्वरूप : युद्ध का उत्तम काल और प्रदेश

(१) राजा जब तक बलवान है तभी तक उसकी नीति सफल होती है और तभी तक उसके कई मित्र होते हैं। जलती हुई आग का ही पवन मित्र होता है, दुर्बल दीपक को वह बुझा देता है। (२) शत्रु द्वारा परित्यक्त सेना को अपनी सेना के पास न रखे। इसे पृथक् रखे अथवा इसे ही सर्वप्रथम युद्ध में भेजे। (३) अपनी मित्र-सेना को अपने समीप, पीछे व इधर-उधर रखे। (४) अस्त्र वह है जो मंत्र, यंत्र, अग्नि से चलाया जाए। जो हाथ से चलाया जाए—खड्ग कुन्त आदि—वह शस्त्र कहाता है। अस्त्र नालिक और याँत्रिक भेद से दो तरह के माने गए हैं। जिस स्थान पर याँत्रिक अस्त्र का प्रयोग न करना हो, वहाँ नालिक अस्त्रों का प्रयोग करना चाहिए। विजय के निमित्त राजा अस्त्र-शस्त्रों को सर्वदा, सुसज्जित रखे। (५) छोटी, पैनी, बड़ी धार और आकार के भेद से शस्त्र-अस्त्रों के अनेक नाम हैं। नालिक नामक अस्त्र बृहत् और क्षुद्र भेद से दो प्रकार का होता है। (६) जिस प्रकार धनुष पर चढ़ाया हुआ बाण अपने लक्ष्य को बींध दे, उसी तरह का दो हाथ का बाण धनुष पर चढ़ाया जाए। (७) आठ कोने की मोटे हत्थे की छाती के बराबर गदा होती है। अपने बराबर का पट्टा होता है, हाथ के रखने के भाग में दो तरफ मुख होते हैं (८) कुछ टेढ़ा, एक तेज धार का, चार अंगुल चौड़ा, क्षुर के समान तीक्ष्ण, नाभी तक पहुँचा, मुट्ठी में दृढ़ता से पकड़ा जा सके, चन्द्रमा के समान चमकीला खड्ग होता है। दस हाथ के दण्ड में लगा आगे फलदार कील से युक्त भाला और चार हाथ लम्बे दण्ड वाला, छुरे समान तीक्ष्ण प्रासशस्त्र होता है। (९) छः हाथ की परिधि वाला चक्र होता है। जिसके पत्ते गेहूँ के समान मोटे लोहे के बने हों वह कवच और जो मणक की रक्षा करे वह शिरस्त्राण होता है जो शरीर के ऊपरी भाग पर पहना जाता है।

(१०) जिस राजा के पास बहुत युद्ध सामग्री हो जो सन्धि आदि षड् गुणों को जानता हो, जिसके पास बहुत अस्त्र-शस्त्र हों, वही राजा शत्रु से युद्ध की इच्छा करे। इसके विपरीत राजा दुःख भोगेगा और राज्य से भ्रष्ट हो जाएगा। (११) युद्ध के लिए शरद, हेमन्त पर शिशिर काल उत्तम हैं। वसन्त ऋतु का मध्यम और ग्रीष्म अधमकाल है। वर्षा-ऋतु में कभी युद्ध नहीं करना चाहिए। यह समय सन्धि करने का होता है।

(१२) जिस प्रदेश में अपनी सेना को कवायद (व्यायाम) और व्यूह-रचना की और शत्रु को यह प्राप्त न हो सके वह प्रदेश युद्ध के उत्तम होता है। (१३) जहाँ अपने और शत्रु के लिए एक सदृश भूमि सुलभ हो, उसे मध्यम और जहाँ शत्रु सेना को पुष्कल भूमि प्राप्त हो और अपनी सेना को कवायद व्यूह-रचना के लिए स्थान न मिले—वह अधम प्रदेश माना गया है। (१४) जिस सेना को पुत्र की भाँति पाला हो, दान से बढ़ाया हो, युद्ध सामग्री से सुसम्पन्न हो, वह सेना शीघ्र विजय करने में समर्थ होती है।

छः प्रकार के मंत्र : सेना के व्यूह के भेद

(१) संधि, विग्रह, यान, आसन, समाश्रय और द्वैधीयाव—मंत्र के यह छः गुण माने गए हैं। (२) बलवान् राजा, वलवानू शत्रुओं से जिन क्रियाओं से मित्र वन जाए, वह संधि कहाती है।

(३) जिस कर्म द्वारा दबाया हुआ शत्रु अपने आधीन हो जाए, वह विग्रह कहाता है। (४) शत्रु नाश के निमित्त, अपने विजय के लिए किया गया आक्रमण यान कहाता है। जिस स्थान पर बैठने से अपनी रक्षा और शत्रु का नाश संभव हो, उस जगह बैठने को आसन कहते हैं। (५) जिन मित्रों से सुरक्षित होकर दुर्बल राजा भी बलवान् हो जाता है, वह आश्रय माना गया है। अपनी सेना को शत्रु और मित्र—दोनों के स्थानों पर नियुक्त करना द्वैधी भाव कहा गया है।

(६) संधि तो अनार्य राजा से भी कर लेनी चाहिए। इस तरह संधि करने से अन्य शत्रु राजा को उखाड़ नहीं सकते हैं। (७) यदि राजा को सब ओर से भय खड़ा हो गया हो, तो वहुत से शत्रुओं के दबाने पर बुद्धिमान् राजा, समयानुसार, वलवान् राजा के साथ संधि कर अपनी रक्षा करें। बुद्धिमान् राजा संधि करके भी किसी का विश्वास नहीं करता। (८) जिस शत्रु राजा की सेना और उसके मित्र निर्बल हो गए हों, दुर्ग में बन्द बैठा हो, दो शत्रुओं से घिरा हो, जिसके मंत्री और सेना में फूट पड़ गई हो, ऐसे शत्रु को घेर वश में कर ले। इसीका नाम युद्ध है। इसके विपरीत दशा कलह कहाती है।

(९) जब कोई राजा युद्ध का कारण वनाकर शत्रु पर चढ़ाई कर दे तो राजनीति के विद्वान् इस यान को विगृह्य यान कहते हैं। अपने पीछे रहने वाले शत्रु से संधि करके अन्य शत्रु पर चढ़ाई करना, सन्धाय गमन कहा जाता है। इससे विजय की आशा अधिक होती है। (१०) जव एक राजा अपने निपुण और शूरवीर सामन्तों के साथ मिल शत्रु पर चढ़ाई करता है, उसे संभूय गमन कहते हैं। किसी प्रसंगवश अन्यत्र जाते हुए अन्य राजा पर चढ़ाई करने को प्रसंगयान कहते हैं। (११) विगड़ते शत्रु पर बलवान् राजा की चढ़ाई उपेक्ष्ययान कहाती है।

(१२) सामने से शत्रु के भय की आशंका होने पर मकरव्यूह, अथवा दोनों पक्ष प्रबल हों तब श्येनव्यूह, या पैनी धारा वाले सूची व्यूह, पीछे से भय हो तो शकटव्यूह, दोनों पार्श्वों से भय हो तो, वज्रव्यूह, और यदि सब ओर से भय हो तो सर्वतो भद्र व

चक्रव्यूह व कालव्यूह बनाए। व्यूह रचना में घुड़सवार, गजारोही और पैदल सैनिकों को संकेतों के अनुसार यथा स्थान खड़ा करे। संकेतों के अनुसार ही शस्त्र-अस्त्र का संचालन व सेना का आगे-पीछे, दो-तीन, चार पंक्ति बद्ध हो चलना, आगे-पीछे इकट्ठा होना व एक साथ तथा पृथक् रूप से चलना इत्यादि क्रियाएँ कराई जाएँ।

(१३) राजा चिरकाल के लिए बड़े प्रयत्न से शत्रुपोषक सब सामग्री की पहुँच रोक दे।

उपाय और उद्योग का अवलम्बन : क्षत्रिय का परम धर्म—रणभूमि में ही मृत्यु

(१) उत्तम उपाय, उत्तम मंत्रणा और उद्योग से ही साधारण जन के कार्य सिद्ध होते हैं। राजा के लिए तो यह साधन विशेष आवश्यक हैं। (२) कठिन लोहा भी उपाय से पिघल जाता है। पानी आग को बुझा देता है पर उपाय से आग सारे पानी को सुखा डालती है। (३) मदोन्मत्त हाथी को भी उपाय से वश में किया जाता है। इन उपायों में भेद और आश्रय सर्वोत्तम माने गए हैं। (४) जो क्षत्रिय चिल्लाता, रोता शय्या पर मरता है, उसके लिए यह महान् पाप होता है। क्षत्रिय का घर में नहीं, रण में मरना ही श्रेयस्कर माना गया है। रणभूमि में क्षत-विक्षत होकर ही मरना ही क्षत्रिय के लिए स्वर्गप्रद है। (४) युद्धभूमि में मृत्यु को प्राप्त हुए क्षत्रिय के लिए कभी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। वह सब पापों से छूट पवित्र हो जाता है। (५) मुनिगण लम्बे तप से जिस पद को पाते हैं, युद्ध में मृत क्षत्रिय शीघ्र ही उसी पद को प्राप्त करता है। शूर-वीरता से अधिक श्रेष्ठ गुण त्रिलोकी में कोई नहीं है। शूरवीर से कायर दास होते हैं। (६) दो पुरुष ही इस सूर्यमण्डल के भेदन करने वाले होते हैं, एक तो योग युक्त संन्यासी और दूसरा शूरवीर जो रण में सम्मुख मरता है। (७) जो नीच पुरुष जीवन की अभिलाषा से युद्ध से पीछे हट जाता है, वह जीवित भी मृतक है। वह सारे राष्ट्र का पाप भोगने वाला होता है। (८) जिस दुराचारी क्षत्रिय का ब्राह्मण युद्ध करके व बिना युद्ध के भी नाश कर दें, तो उसे इस वध का पाप नहीं लगता। (९) जब क्षत्रिय वंश दुर्बल हो जाए और दुष्ट लोग प्रजा को पीड़ा पहुँचाएँ, तब ब्राह्मण मिल कर उन दुष्टों का नाश कर दे—यही उनका निश्चित धर्म है।

(१०) विविध प्रकार के कष्ट, व्यसन, दुःख, महामारी, भूख-प्यास, सोती-जागती, अग्निकांड में फँसी, इधर-उधर घूमती, दृष्टि—आँधी से परेशान शत्रु-सेना को राजा मार दे और अपनी सेना की रक्षा करता रहे। धर्म-युद्ध या कूट-युद्ध—किसी भी तरह शत्रु को मार गिराना ही मुख्य कर्त्तव्य राजा का है। (११) वृद्ध और बालक को नहीं मारना चाहिए। स्त्री पर भी हाथ नहीं उठाना चाहिए। शस्त्र आदि से सुसज्जित पर ही आक्रमण करना चाहिए।

(१२) यह सब नियम, धर्म युद्ध के लिए ही हैं। कूट युद्ध में इन नियमों का पालन नहीं होता। बलवान् शत्रु के विनाश का उपाय कूट युद्ध से अधिक कोई नहीं है। (१३) जिस योद्धा ने वीर कर्म दिखाया हो, उसे दान से सन्तुष्ट करे। ऐसे वीर को पारितोषक और अधिकार यथायोग्य देना चाहिए। (१४) विजय के बाद तूर्य आदि

बाजों और मंगलघोषों के साथ अपने प्रदेश में प्रवेश करे। (१५) शत्रु की प्रजा को अपने आधीन कर उस सारी प्रजा का पुत्रवत् पालन करे। पुराने मंत्रिमंडल के स्थान पर नया मन्त्रिमण्डल नियुक्त करे।

सैनिकों के लिए नियम : शत्रु राष्ट्र के सेवकों से व्यवहार

(१) गाँव के निवासी और सैनिकों का परस्पर व्यवहार नहीं होना चाहिए—लेन-देन न हो। सैनिकों की आवश्यकता के लिए सेना में ही पृथक् बाजार हो। एक वर्ष से अधिक सेना को एक स्थान पर न रहने दे। (२) पुरोहित राजा को अच्छे-बुरे कर्म का बोध कराता रहे। आठवें दिन सैनिकों को उनके नियमों की शिक्षा देते रहना चाहिए। शत्रु सेना या अन्य जनों के साथ सैनिक बातचीत न करें। (३) राजा की आज्ञा बिना कोई सैनिक गाँव में प्रवेश न करे और अधिकारियों के अपराधों की कभी चर्चा न करे। सैनिक लोग अपने अस्त्र-शस्त्र और वस्त्रों को उज्ज्वल रखें। (४) सैनिक की जाति आकृति, अवस्था, जन्मस्थान, ग्रामवाण, नौकरी का समय, मासिक या वार्षिक वृत्ति, दी गई व देने योग्य वृत्ति—इत्यादि सबका हिसाब राजा अपने पास रखे। (५)वेतन के अन्तर्गत कितने पारितोषक मिले—यह भी लिखे पारितोषक चुकाने की रसीद उसे बना दे। (६) गुणवान् सेवक भी यदि ऐय्याश हो जाए तो उनका परित्याग कर दे। अन्त:पुर में विश्वस्त व्यक्तियों को ही नियुक्त करे। धन आदि के व्यय में भी विश्वस्त भृत्यों को नियुक्त करे। (७) जिन गुणवान् सेवकों को शत्रु ने निकाल दिया हो, उन्हें राजा दान-मान के साथ अपने पास रखे। (८) शत्रु भृत्यों के नष्ट होने पर उनके पुत्रों को आधी और स्त्रियों को चौथाई वृत्ति देना उचित है। जिस राजा का राज्य जीता गया है, उसके पुत्र उत्तम रीति से सहयोगी होकर रहें तो उन्हें चौथाई भाग का स्वामी बना दे। (९) इस शत्रु के संचित कोष को अपने कोष में मिला ले पर इस धन के आधे धन का ब्याज पूर्व राजा के पुत्र को तब तक दे जब तक मूलधन से दुगुनी रकम हो जाए। इससे अधिक न दे।

(१०) रात-दिन के पहरे के लिए आठ, दस, या बारह पहरेदार जो विश्वस हो, उन्हें पड़ताल करके रखे। (११) पहरेदारों के सामने ही ताला आदि लगाया जाए। इसी प्रकार के ताला लगे कोठे में स्वर्ण आदि रखे जाएँ।

राजा स्वयं नियम पालक हो : युवराज को पूर्ण अधिकार नहीं

(१) जब राजा अपने निश्चित नियमों का पालन करता है, उसमें आलस्य नहीं करता तभी वह पूज्य होता है और इसी में उसका गौरव है। (२) धर्म, नीति से विहीन राजा निर्बल ही होता है। धर्म और नीति के बल से सम्पन्न राजा अपराधियों को दण्ड दे सकता है। (३) जो राजा प्रजा के धर्मों की रक्षा करता है, वही राजा श्रेष्ठ होता है। धर्म-अधर्म की प्रवृत्ति में राजा ही कारण है। राजा का पद सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

(४) शत्रु के नाश में ऐसी सेना नियुक्त न करे जो शत्रु के राष्ट्र में कभी रह चुकी हो। परस्पर द्वेष करने वाले सैनिकों को सेना में न रखें। (५) प्रजा की पुष्टि जो राजा के धन से होती है वह धनिकों के धन से कदापि नहीं हो सकती। (६) राज्य रूपी वृक्ष का मूल राजा, मंत्री आदि स्कन्ध, सेनापति शाखा, सेना पत्ते और फूल पुण्य-भूमि के भाग फल और भूमि बीज होती है। (७) राजा अपने समान वेश-भूषा वाले वीरों को सर्वदा साथ रखे। अपने पास कोई विशेष चिह्न रखे। समय पर अन्य वीर का रूप धारण कर शत्रु के घेरे से बाहर निकल जावे। (८) राजा अपने जीवन में ही सब विभागों का अधिकारी पुत्र को न बना दे। सद्गुणी पुत्र भी इससे अभिमान में आकर पिता के विरुद्ध हो जाता है। (९) युवराज के राजा बन जाने पर मंत्री आदि उसकी उचित आज्ञा का ही पालन करें, अनुचित का नहीं। (१०) राजा, धूर्त्त, ठगों की तरह अन्यों का धन अपहरण न करें। जिस काम में धर्म और धन न हो, वह निरर्थक ही समझना चाहिए।

(११) पुरुष धन का दास है, धन किसी का दास नहीं है। इसलिए मनुष्य रात दिन धन कमाने में लगा रहे। धन से धर्म, काम और मोक्ष—सब मिल जाते हैं। (१२) राजा पर विपत्ति आने पर सब सेवकगण यह सोचें कि जिसके राज्य में, सुख भोगा, यदि उसके दुःख में हम दुःखी न होंगे तो हम पर कृतघ्नता का दोष लगेगा। इसलिए बिना वेतन लिए भी सेवकगण स्वामी का साथ न छोड़ें। (१३) स्वामी भी वही श्रेष्ठ माना जाता है जो सेवकों के निमित्त अपने प्राण त्याग दे। (१४) राष्ट्र की रक्षा के लिए स्वामी और सेवकों का एकमत होना आवश्यक है।

उत्तम नीति का रूप : राजकर्मचारियों के लिए घर

(१५) नीतिमान् की उत्तम नीति वही है जिससे अपना कल्याण हो। जो मनुष्य अपनी रक्षा की युक्ति का विचार न करे, वह पशु से भी अधिक मूर्ख है। देश काल और पुरुष के अनुसार ही अनेक प्रकार की युक्ति और नीति का निश्चय किया जाता है। (१६) राज्य के प्रत्येक पदार्थ पर राजा की मोहर लगाई जाए जिससे कभी धोखा न हो सके। (१७) सेवक उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार के होते हैं। स्वामी में अनुरक्त उत्तम, वेतन के कारण अच्छी सेवा करे वह मध्यम और जो अपने स्वामी से पुष्ट होने पर भी अन्य स्वामी से मेल लगाता है, वह अधम होता है।

(१८) बचपन और युवावस्था ही का प्रारम्भ किए कार्य की सफलता के योग्य समय हैं। यह समझ लेना चाहिए कि बुढ़ापे में कुछ नहीं होगा। (१९) मनुष्य उसी काम को प्रारम्भ करे जिसकी समाप्ति सुख से हो सके। एक समय में बहुत सारे कार्यों का प्रारम्भ सुखदायक नहीं होता। (२०) प्रारम्भ किए गए कार्य की समाप्ति तक दूसरा अन्य कार्य हाथ में न ले। इसके विरुद्ध पहला और पिछला—दोनों काम बिगड़ जाते हैं। (२१) ईर्ष्या, लोभ, मद, प्रीति, क्रोध, भीति और साहस, इन सात कारणों से कोई भी कार्य बिगड़ जाता है।

(२२) राजा अपने सेवकों और कर्मचारियों को घर बनाने के लिए भूमि दे। बत्तीस हाथ लम्बी और सोलह हाथ चौड़ी भूमि उत्तम लोगों को, इससे आधी मध्यम और अधम लोगों को दे। यह भूमि कुटुम्ब के परिणाम की होनी चाहिए। अधिकारी-गणों को गाँव से बाहर राजा कोठी बनाकर दे। (२३) सेना के जो अधिकारी समृद्ध हो जाएँ, राजा उनसे यथायोग्य कर का ग्रहण करे—कम से कम तीसवाँ भाग हो। इनके धन की भी राजा अपने कोष की तरह रक्षा करे। (२४) जब धनवान् ऋणी मनुष्य मूलधन से चौगुना धन ब्याज में ले चुका हो तो फिर ऋणी को धनी मनुष्य के लिए कुछ भी नहीं देना चाहिए। यही धर्मव्यवस्था है।

विदुर नीति

धृतराष्ट्र बड़ा अशान्त था। कारण, संजय ने उसे बताया कि कल सभा के बीच युधिष्ठिर उसकी निन्दा का प्रस्ताव उपस्थित करेगा। धर्म युक्त और कल्याण कारक मार्ग को जानने के लिए धृतराष्ट्र ने विदुर को बुला भेजा। विदुर ने आकर स्पष्ट शब्दों में कहा कि "राजन्! तुमने धर्मात्मा युधिष्ठिर और पाण्डवों को वन में भेज बड़ा अन्याय किया है।" इसके बाद उसने धृतराष्ट्र के सम्मुख उसके विशेष आग्रह पर नीति के उपदेश प्रारम्भ किए—

पण्डित—विद्वान् के लक्षण

आत्मज्ञान, उत्साह से कार्य का प्रारम्भ, तितिक्षा, धर्म तत्परता और धन का लोभ जिसे न गिरा सके, वह पण्डित है। जो उत्तम कर्मों का सेवन करता है और विभिन्न निन्दित कर्मों का त्याग करता है नास्तिक नहीं किन्तु श्रद्धालु है, वह पण्डित है। क्रोध, हर्ष, घमंड रहित, लज्जाशील, संकट में न घबराना, मनमानी करने की प्रवृत्ति जिसमें न हो, वह पण्डित कहाता है, जिसके भावी कार्यक्रम को और मंत्रणा को शत्रु नहीं जान पाते प्रत्युत इसके कार्य को ही जानते हैं वह पण्डित कहाता है। शीत, उष्ण, भय, प्रीति, समृद्धि, असमृद्धि जिसके कार्यक्रम में विघ्न नहीं डाल सकते, वही पण्डित है। जिसकी सांसारिक बुद्धि धर्म और अर्थ का अनुगमन करती है और जो विषय वासना का त्याग करके लक्ष्य की ओर जाता है वही पण्डित है। पण्डित बुद्धि के व्यक्ति यथाशक्ति करना चाहते हैं और यथाशक्ति ही करते हैं और किसी की अवज्ञा नहीं करते हैं। जो शीघ्र बूझ लेता है, चिर तक सुनता है और जानकर वासना रहित हो अर्थ का सेवन करता है, बिना पूछे पराए कार्य में हस्तक्षेप नहीं करता, यह पण्डित की मुख्य पहचान है। प्राप्त न हो सकने वाले पदार्थ की पण्डित नर इच्छा नहीं करते और न ही नष्ट पदार्थ के लिए शोक करते और न ही आपत्तियों में घबराते हैं। जो निश्चय के साथ आरम्भ करता है और कार्यों को बीच में ही नहीं छोड़ देता, जिसका समय कभी भी व्यर्थ नहीं जाता और जो जितेन्द्रिय है, वही पण्डित

कहाता है। हे भरत श्रेष्ठ ! पण्डितजन आर्य कर्मों में प्रसन्न होते हैं। ऐश्वर्य वाले कर्मों को करते हैं, हितकारी से ईर्ष्या नहीं करते हैं। अपने सम्मान में जो हर्ष नहीं करता और अपने अपमान में दुःखी नहीं होता, समुद्र की भाँति जो अक्षोभ्य है, वह पण्डित कहाता है। सब भूतों के तत्त्वों को जानने वाला, सब कर्मों की युक्ति तथा मनुष्यों के विविध उपायों को जानने वाला मनुष्य पण्डित कहाता है। जिसकी वाणी ठीक प्रकार चलती है, जिसका कथन आकर्षक है, जो सूझ-बूझ वाला और प्रतिभाशाली है और जो शास्त्र के अभिप्राय को शीघ्र कह सकता है, वही पण्डित कहाता है। जिसका श्रुत-अध्ययन ज्ञान बुद्धि के अनुसार और जिसकी बुद्धि श्रुत, अर्थात् शास्त्र के अनुसार, आर्य मर्यादाओं का उल्लंघन न करने वाला—ऐसा मनुष्य पण्डित संज्ञा पाता है। जो महान् धन, विद्या, अथवा ऐश्वर्य को प्राप्त करके भी निरभिमानी होकर विचरता है, वही पण्डित कहाता है।

मूढ-मूर्ख के लक्षण

अपठित होता हुआ भी अभियानी, दरिद्र होता हुआ भी बड़े मनोरथों वाला, कर्म के बिना धन प्राप्ति का अभिलाषी, अपने कार्य को छोड़कर जो विरोधी के कार्य को करने लगता है और जो मित्र के कार्य में मिथ्या व्यवहार करता है, वह मूढ कहाता है। न चाहने योग्यों की जो चाहना करे और चाहने योग्यों को जो त्यागे और जो बल-वान् से द्वेष करे, जो शत्रु को मित्र समझे और मित्र से द्वेष करे और उसका घात करे और दुष्ट कर्म को प्रारम्भ करता है उसे मूढ चेता कहते हैं। जो अपने भावी कार्यों का वृथा सर्वत्र प्रसार करता है, सर्वत्र सन्देह भी करता है, शीघ्र कार्य में विलम्ब करता है, वह मूढ है। जो जीवित पितर—माता-पिता-वृद्ध आदि—को श्रद्धापूर्वक देता नहीं, सन्ध्या-वन्दन अग्नि होत्रादि कर्म नहीं करता और जिसे स्नेही मित्र नहीं मिलता—उसे मूढ चेता कहते हैं। बिना बुलाये जो दूसरे के घर में जाता है, पूछे बिना जो बहुत बोलता है, अविश्वास पर विश्वास करता है वह नराधम मूढ है। स्वयं जैसा व्यवहार करता हुआ दूसरे पर उस दोष का आक्षेप करता है और जो असमर्थ होता हुआ क्रोध करता है, वह मनुष्य मूढतम है। अपने बल को न जानकर और छल द्वारा अलभ्य पदार्थ को यत्न के बिना चाहने वाला मनुष्य इस जगत् में मूढ कहलाता है। जो न सिखाने योग्य की शिक्षा देता और राजा हो दरिद्र की उपासना करता है, जो कंजूस अदाता का सेवन करता है, उसे मूढ कहा जाता है। जो भृत्यों, आश्रितों को बाँटे बिना अकेला ही उत्तम पदार्थ का भोग करता है और जो अकेला ही सुन्दर वस्त्र पहनता है उससे बढ़कर नृशंस कौन हो सकता है ?

संख्याओं द्वारा नीति का ज्ञान

एक संख्या द्वारा नीति शिक्षा

एक ही पाप करता है किन्तु फल सब (महाजन) को भोगना पड़ता है। उस पाप कर्म से होने वाले फल से भोक्ता तो छूट जाते हैं किन्तु उस पाप का कर्ता दोष से लिप्त

होता है। धनुर्धारी द्वारा चलाया गया तीर एक को भी मार सके या न मार सके किन्तु बुद्धिमान् से प्रयुक्त की गई बुद्धि राजा समेत राष्ट्र को मार सकती है। एक बुद्धि के द्वारा दो, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का निश्चय कर मित्र, उदासीन इन तीन को साम, दान, दण्ड, भेद—इन चार द्वारा वश में करना चाहिए। पाँच ज्ञानेन्द्रियों को वश में करके छ: का, अर्थात् सन्धि, विग्रह, यान आसन, द्वैधीभाव, तथा समाश्रय का स्वरूप जाने और सात का अर्थात्, स्त्री, जुआ, शिकार, मद्यपान, वाणी की कठोरता, अति कठोर दण्ड तथा अर्थ दूषण—इनका त्याग कर सुखी हो। विष का रस एक को मारता है। शस्त्र से भी एक का घात होता है किन्तु मंत्र विप्लव-मंत्र भेद अथवा विचार शक्ति द्वारा राष्ट्र और प्रजा सहित राजा का नाश हो जाता है। अकेला स्वादु वस्तु को न खाए, अकेला अर्थों—धनादि का विचार न करे—अर्थात् अन्यों के परामर्श से करे, मार्ग में अकेला न जाए, सोए हुओं में अकेला न जागे। वह एक और अद्वितीय है जिसे हे राजन्! आप नहीं समझ रहे। वह सत्य है जो स्वर्ग की सीढ़ि है जिस प्रकार समुद्र को पार करने के लिए नौका। क्षमा करने वालों का एक ही दोष है दूसरा नहीं। वह दोष यह है कि क्षमावान् को लोग असमर्थ मानते हैं। किन्तु, वस्तुत:, यह दोष नहीं है क्यों कि क्षमा परम बल है। सचमुच दुर्वलों का यह गुण है और बलवानों का यह भूषण है। क्षमा संसार में वशीकरण है, क्षमा द्वारा क्या यह सिद्ध नहीं हो सकता? जिसके हाथ में शान्ति-क्षमा रूपी खड्ग ही है, दुर्जन उसका क्या बिगाड़ेगा? जहाँ तिनका न हो वहाँ डाली हुई आग स्वयं ही बुझ जाती है। क्षमा रहित मनुष्य अपने आपको तथा शत्रु को दोष से मुक्त कर सकता है, अर्थात्, अपने तथा शत्रु के मरण तक का कारण बन सकता है। एक धर्म ही परमकल्याण प्रद है। क्षमा ही अकेली उत्तम शान्ति है। अकेली विद्या ही परमतृप्ति है। अकेली अहिंसा सुखदात्री है।

दो की संख्या द्वारा नीति शिक्षा

जैसे सर्प बिल में रहने वालों को निगल जाता है, वैसे यह भूमि इन दो को निगल जाती है, एक आक्रामक का विरोध न करने वाला राजा को, दूसरा प्रवास न करने वाले ब्राह्मण को। दो कर्म करता हुआ मनुष्य इस संसार में शोभा पाता है—एक कुछ भी कठोर न बोलता हुआ और दूसरा किसी प्रकार असज्जनों का सत्कार न करता हुआ। हे पुरुष व्याघ्र! यह दो दूसरे के सिखाए कार्य करते हैं - एक कामुक को चाहने वाली स्त्रियाँ और दूसरा अनेकों द्वारा पूजे जाने वाले को पूजने वाले लोग। दोनों भेड़िया ध्रसान की तरह नकल करते हैं। शरीर को सर्वथा सुखा देने वाले दो तीखे हैं—एक निर्धन होकर ऊँचे मनोरथ, दूसरा असमर्थ होकर क्रोध करना। यह दो अपनी मर्यादा से विपरीत कर्म करने वाले शोभा नहीं पाते एक कार्य न करने वाला गृहस्थ दूसरा कार्य तत्पर संन्यासी। हे राजन्! यह दो पुरुष स्वर्ग से भी ऊपर सदा आनन्दित रहते हैं—एक समर्थ होता हुआ भी क्षमा युक्त दूसरा दरिद्र होता हुआ भी उत्तमदाता। धर्म से प्राप्त धन के दो अनुचित उपयोग जानने चाहिए एक अपात्र को दान देना दूसरा पात्र को न देना। इन दो को गले में दृढ़ पत्थर बाँधकर जल में

डुबो देना चाहिए—एकदान न करने वाले धनिक को दूसरा तप-परिश्रम न करने वाले दरिद्र को। हे पुरुष व्याघ्र! यह दो सूर्यमण्डल का भेद करने वाले हैं—कए योग युक्त संन्यासी दूसरा रण क्षेत्र में सम्मुख मारा गया वीर।

तीन की संख्या द्वारा शिक्षा

हे भारत श्रेष्ठ! मनुष्यों के लिए तीन अपाय (हानिकारक) साधन हैं—एक सबसे निकृष्ट-कामी व्यक्तियों से मेल, दूसरा मध्यम-सकाम कर्म और सबसे अन्तिम अपाय-(हानिकारक)-संसार का लोभ। हे राजन्! मनुष्य तीन प्रकार के होते हैं। उत्तम, मध्यम और अधम। उन्हें तीन प्रकार के कर्मों में यथायोग्य लगाए। हे राजन्! पत्नी सेवक और पुत्र—यह तीन अधन होते हैं। जो कुछ धन वे प्राप्त करते हैं, वह उसका होता है जिसके वे हैं। अर्थात् राजकर्मचारी जो धन अर्जन करता है, वह राज्य का होता है। पत्नी का पति से और पुत्र का पिता से धन विभक्त नहीं हो सकता। इसलिए यह दोनों अधन हैं। पराए धन को छीनना, पर-स्त्री से व्यभिचार और मित्र का परित्याग—यह तीन दोष विनाशक हैं। काम, क्रोध, और लोभ—यह तीनों दुःखप्रद गति को देने वाले हैं। तीनों का मनुष्य त्याग करें। उत्तम पदार्थ का दान, राज्य और पुत्र जन्म, इन तीनों के समान एक कार्य है, वह मित्र को संकट से छुड़ाना। पूर्व के भक्त, वर्तमान में सेवक तथा—मैं तेरा हूँ --इन तीन प्रकार के वाक्य बोलने वाले शरणागत को विपत्ति में भी अपने से अलग न छोड़ें, सदा उनकी रक्षा करे।

चार की संख्या द्वारा शिक्षा

पण्डित जन महाबली राजा के लिए चार परित्याज्य बतलाते हैं। इनमें मंत्रणा न करे, राजा इसका ध्यान रखे (१) मूर्ख (२) दीर्घ सूत्री-आलसी (३) शीघ्र जोश में आ जाने वाला (४) भाट। हे तात! गृहस्थ में यह चार सदा रहें (१) वृद्ध सम्बन्धी, (२) संकट ग्रस्त दुःखी कुलीन (३) दरिद्र मित्र (४) निःसन्तान बहिन। हे महाराज! जिज्ञासा करने पर देवराज बृहस्पति ने चार तत्काल फलदायक बताए हैं (१) सदा परहित में संलग्न देवों का संकल्प (२) बुद्धिमानों का तेज (३) विद्वानों का विनय और (४) पापियों का नाश। चार निर्भय करने वाले कर्म विधि विरुद्ध किए जाकर भय प्रदान करते हैं (१) विधि युक्त अग्निहोत्र, (२) शास्त्रीय मौन (३) विधिपूर्वक अध्ययन (४) विधि प्रमाण अनुसार यज्ञ।

पाँच की संख्या द्वारा शिक्षा

पिता, माता, अग्नि (अग्निहोत्र), आत्मा (परमात्मा सहित) और गुरु—-इन पाँच अग्नियों का मनुष्य यत्न से सेवन करे। देव, पितर, मनुष्य, संन्यासी और अतिथि इन पाँच का सत्कार करता हुआ मनुष्य इस संसार में सुख प्राप्त करता है। जहाँ-जहाँ तू जाएगा, यह पाँच तेरे पीछे जाएँगे (१) मित्र (२) शत्रु (३) मध्यस्थ (४) आश्रय-

दाता और (५) आश्रित । पाँच इन्द्रियों वाले मनुष्य की यदि एक भी इन्द्रिय संयम में न रहे तो उसमें से इसकी बुद्धि ऐसे झरती है जैसे किसी पात्र से जल ।

छः की संख्या द्वारा शिक्षा

कल्याण की अभिलाषा करने वाले मनुष्य को इस संसार में निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, आलस्य और दीर्घसूत्रता—यह छः दोष त्यागने चाहिएँ । संसार में टूटी नौका के समान मनुष्य इन छः को छोड़ दे (१) न पढ़ाने वाले आचार्य को (२) अपठित ऋत्विक् को (३) रक्षा न करने वाले राजा को (४) कटु बोलने वाली पत्नी को (५) ग्राम में रहने के अभिलाषी ग्वाले को अर्थात् गौ आदि पशु चराने वाले को वन में जाना चाहिए । (६) वनवास की इच्छा करने वाले भाई को । सत्य, दान चुस्ती (फुरती) अनसूया (परनिन्दा) व ईर्ष्या न करना । क्षमा और धृति—इन छः गुणों से युक्त मनुष्य को कभी न त्यागे । हे राजन् ! संसार के यह छः सुख हैं (१) धन की आय (२) नित्य आरोग्य रहना (३) प्रिय पत्नी (४) मधुर भाषिणी पत्नी (५) आज्ञाकारी पुत्र तथा (६) अर्थकारी विद्या । संसार के यह छः अन्य सुख हैं (१) आरोग्य (२) ऋण-ग्रस्त न होना (३) प्रवास में सदा न रहना (४) श्रेष्ठ पुरुषों का सत्संग (५) स्वाधीन आजीविका (६) निर्भयता । चित्त में नित्य बसने वाले इन छः विषयों पर जो मनुष्य आधिपत्य कर लेता है वह विजितेन्द्रिय हो पापों से युक्त नहीं हो सकता । यह छः हैं (१) काम (२) क्रोध (३) शोक (४) मोह (५) मद (६) अभिमान । अथवा मन सहित पाँचों ज्ञानिन्द्रियाँ । ये छः इन छः पर निर्वाह करते हैं, सातवाँ नहीं मिलता (१) चोर प्रमादी पर (२) चिकित्सक रोगियों पर (३) स्त्रियाँ कामियों पर (४) याजक यजमानों पर (५) राजा झगड़ा करने वालों पर (६) पण्डित मूर्खों पर । एक मुहूर्त्त भर न देखने पर (असावधानता से) यह छः नष्ट हो जाते हैं (१) गौए (२) सेवा (३) खेती (४) स्त्री (५) विद्या (६) अधार्मिक की संगति । यह छः नित्य पूर्व उपकारी का तिरस्कार करते हैं (१) शिक्षा प्राप्ति कर शिष्य आचार्य का (२) विवाह होने पर पुत्र माता का (३) कामना पूर्ण होने पर कामी नारी का (४) प्रयोजन सिद्ध होने पर सफल जन प्रयोजक का (५) सागर पार कर चुकने पर यात्री नौका का (६) आरोग्य होने पर रोगी चिकित्सक का । ईर्ष्यालु, घृणा करने वाला, असन्तोषी, क्रोधी, नित्य शंका करने वाला, दूसरे के भाग्य पर जीने वाला—यह छः नित्य दुःखी रहते हैं ।

सात की संख्या द्वारा शिक्षा

राजा को यह सात दुःखदायी व्यसन सदा त्यागने चाहिए जिनसे पक्की जड़ वाले भी राजा विनष्ट हो जाते हैं (१) स्त्रियाँ (२) जुआ (३) शिकार (४) मद्यपान (५) कठोर वाणी (६) बहुत कठोर दण्ड (७) अर्थ दूषण ।

आठ की संख्या द्वारा शिक्षा

मनुष्य के पतन के आठ निमित्त हैं (१) ब्राह्मणों (विद्वानों) से वैर करने की

पहल (२) फि.र, ब्राह्मण जिसका विरोध करते हैं (३) ब्राह्मणों की धन हीनता (४) ब्राह्मणों की हत्या की चेष्टा (५) ब्राह्मणों की निन्दा से प्रसन्न होना (६) ब्राह्मणों की प्रशंसा को पसन्द न करना (७) धर्म कार्यों में ब्राह्मणों की उपेक्षा (८) ब्राह्मणों द्वारा याचना करने पर कुढना। हे भारत ! यह आठ हर्ष के साधन हैं (१) मित्रों के साथ मेल (२) महान् धनागम (३) पुत्र का आलिंगन (४) मैथुन में वीर्यपत (५) प्रियों के साथ यथा समय आलाप (६) अपने वर्ग वालों में समुन्नति (७) अभीष्ट पदार्थों की प्राप्ति (८) जन समाज में सम्मान। आठ गुण पुरुष को चमकाते हैं। (१) प्रज्ञा-बुद्धि (२) कुलीनता. (३) इन्द्रिय निग्रह (४) शास्त्रज्ञान (५) धीरता (६) मितभाषिता (७) यथाशक्ति दान (८) कृतज्ञता।

नौ की संख्या द्वारा शिक्षा

जो विद्वान् नौ द्वार वाले, तीन खम्भों वाले, पाँच साक्षियों वाले, जीवात्मा से अधिष्ठित इसे सदन को जानता है, वह श्रेष्ठ ज्ञानी है। नौ द्वार हैं—दो आँख, दो नासिका, दो कान, एक मुख, दो मलमूत्र के स्थान। तीन खम्भे हैं, सत्त्व, रग, तम। पाँच साक्षी—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध।

दस की संख्या द्वारा शिक्षा

हे धृतराष्ट्र ! यह दस मनुष्य धर्म को नहीं जानते (१) मन्त्र—नशे में धूत्त (२) प्रमन्त—असावधान (३) उन्मत्त—पागल (४) श्रान्त—थका हुआ (५) क्रुद्ध (६) भूखा (७) शीघ्रकारी (८) लोभी (९) भयभीत (१०) कामी।

उत्तम मनुष्य की पहचान

जो राजा काम क्रोध का त्याग कर देता है और जो धन को पात्र में देता है, जो सामान्य विशेष की पहचान करने वाला, शास्त्रज्ञ तथा शीघ्रकारी है, सब उसे आदर से मानते हैं। जो मनुष्यों को विश्वास दिलाना जानता है, और प्रसिद्ध अपराधियों को दण्ड दे सकता है, जो दण्ड की मात्रा तथा क्षमा भी जानता है, ऐसे राजा को लक्ष्मी प्रीति करती है। जो किसी दुर्बल का अपमान नहीं करता, सावधानता से शत्रु से व्यवहार करता है, बलवानों के साथ झगड़े को पसन्द नहीं करता और समय पर विक्रम प्रकट करता है—वह धीर है। आपत्ति को प्राप्त कर जो कभी दुःखी नहीं होता, प्रमाद रहित उद्योग को चाहता है—कार्य वहन समर्थ महात्मा समय पर दुःख भी सह लेता है, ऐसा जो धुरन्धर है, वह शत्रुओं को जीत लेता है। जो मनुष्य घर से बाहर निरर्थक प्रवास, पापियों से मेल जोल, पर-स्त्री गमन, दम्भ, चोरी, चुगली, मद्यपान का सेवन नहीं करता वह सदा सुखी रहता है। उत्तम मनुष्य जोश से धर्म, अर्थ, काम इस त्रिवर्ग का प्रारम्भ करता है। पूछने पर पथार्थ बतला देता है, थोड़ी सी बात के लिए झगड़ा पसन्द नहीं करता और यथेष्ट आदर न मिलने पर क्रोध नहीं करता है। जो ईर्ष्या नहीं करता किन्तु अनुकम्पा करता है, दुर्बल होकर प्रति-

कूलता नहीं करता, बढ़-चढ़ कर बातें नहीं करता और विवाद को सहन करता है, वह मनुष्य सर्वत्र प्रशंसा पाता है। जो कभी किसी के साथ बेढँग से पेश नहीं आता, न ही दूसरों के आगे अपने पौरुष की प्रशंसा करता है, असावधान होकर भी कटु वचन नहीं कहता, लोग सदा ऐसे व्यक्ति को प्रेम करते हैं। जो शान्त हुए वैर को भड़काता नहीं है, न घमण्ड करता है, अपने को हीन नहीं समझता है, दुर्गति में भी अकार्य नहीं करता, उसे आर्य पुरुष परम आर्यशील मानते हैं। जो अपने सुख में बहुत हर्ष नहीं करता, न ही दूसरों के दुःख में प्रसन्न होता है और देकर जो बाद में पछताता नहीं है, वह सत्पुरुष आर्यशील कहाता है। जो देशाचार, समय, संकेत तथा जाति धर्मों का पालन करता है, जो छोटी-बड़ी बात का जानकार है—ऐसा मनुष्य जहाँ कहीं भी जाए, वह सदा महाजनों पर राज्य करता, अर्थात् आदर पाता है।

सिद्धि प्राप्त करने के साधन

जो बुद्धिमान्, दम्भ, मोह, अविद्या, मत्सर (किसी के उत्कर्ष को देख कर जलना) पापाचार, राजा का वैर, चुगली, समुदाय से वैर, मत्त, उन्मत्त और दुर्जनों के साथ वाद को त्यागता है—वह प्रधान अर्थात् बड़ा है। दान, होम, देव सम्बन्धी कार्य, मंगलाचार, विविध प्रायश्चित्त तथा लोकहित कार्य—इन्हें जो नित्य करता है, देवता भी(ईश्वर प्रेरित शक्तियाँ) उसकी उन्नति को सिद्ध करती हैं। जो समानों के साथ विवाह करता है, हीनों के साथ नहीं, समानों के साथ मैत्री व्यवहार बातचीत करता है, गुणों में विशिष्ट व्यक्तियों को आगे रखता है, उस ज्ञानी की नीतियाँ ही उत्तम नीतियाँ हैं। जो आश्रितों में बाँट कर अल्प खाता है, बहुत कार्य करके भी थोड़ा सोता है, माँगने पर जो शत्रुओं को भी देता है, ऐसे आत्मवान् पर अनर्थ आक्रमण नहीं करते हैं। जिसके किसी कर्म करने की इच्छा को कर्म के बिगड़ जाने पर भी दूसरे कुछ नहीं जानते, उसकी मन्त्रणा के गुप्त और सम्यक् अनुष्ठित होने पर उसकी तनिक भी बात प्रकट नहीं होती। जो सब भूतों की शान्ति में संलग्न है, सच्चा, कोमल, दूसरों का मान करने वाला तथा शुद्ध भावों वाला है, वह अपने ज्ञातियों में महामणि की भाँति बड़ा माना जाता है। जो मनुष्य निरन्तर स्वयं अपनी भूल जानकर लज्जित होता है, वह सर्व संसार का गुरु हो सकता है। वह अनन्त तेज युक्त उत्तम मन समाहित, सूर्य की भाँति तेज से चमकता है।

विदुर कहता है हे राजन्! पाँडो नाम के वन में मृत राजा पाँडु के पाँचों पुत्र पाँच इन्द्रों के तुल्य हैं। आपने ही इन बालकों को पाला-पोसा तथा बड़ा किया है। हे अम्बिका के पुत्र धृतराष्ट्र! ये तेरा आदेश भी पालते हैं। अतः इन्हें उचित राज्य देकर आप अपने पुत्रों साथ मुदित होकर सुखी हो। इस अवस्था में हे राजन्! कोई दैव व कोई मनुष्य आप पर किसी प्रकार की शंका नहीं कर सकता है।

(अध्याय—२)

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर! पाप की आशंका तथा पाप के परिणाम को

देखकर मेरा चित्त व्याकुल हो रहा है, तुम मुझे बुद्धिपूर्वक यथावत् हितकर उपदेश करो और युधिष्ठिर का अभिप्राय बताओ।

विदुर ने कहा, बिना पूछे भी जो शुभ व अशुभ है, द्वेष करने योग्य हो अथवा प्रिय हो, वह तिरस्कार न चाहते हुए बता देना चाहिए। इसलिए हे राजन्! कुरु वंश के लिए हितकारी, कल्याणकारी तथा धर्मयुक्त वचन कहता हूँ, उसे तू सुन।

उत्तम राज्य का लक्ष्य और उसके साधन

हे भारत! छल से युक्त तथा पीछे दुःख देने वाले कार्य यदि तात्कालिक सिद्धि दें, तो भी उनमें अपना मन नहीं लगाना चाहिए। और युक्ति से किया गया और उपाय युक्त जो कार्य सिद्ध न हो, तब भी बुद्धिमान् अपने मन को खिन्न न करे। प्रयोजन की सिद्धि के लिए जो कार्य करना हो वह प्रयोजन का निश्चय करके ही करे, शीघ्रता व वेग से न करे। प्रयोजन और कर्मों का परिणाम जानकर ही बुद्धिमान् मनुष्य उद्योग करे व न करे। जो स्थान (दुर्ग आदि विषयक), वृद्धि क्षय, कोष, राज्य व्यवस्था, और जनपद के सम्बन्ध में निश्चित साधन नहीं जानता, वह राज्य का स्वामी नहीं रह सकता। जो इन साधनों को जानता और धर्म-अर्थ के ज्ञान में युक्त है, वही राज्य प्राप्त कर सकता है। 'राज्य प्राप्त हो गया है,' इसी अभिमान में आकर अनुचित व्यवहार नहीं करना चाहिए क्योंकि जिस प्रकार बुढ़ापा सुन्दर रूप को नष्ट कर देता है, इसी प्रकार उच्छृंखलता राज्य का नाश कर देती है। लोभ में फँसी मछली लोहे के कुंडे के साथ लगे भोजन को देख उसे निगल जाती है पर उसके अनुबन्ध—पीछे के परिणाम—को नहीं देखती। जैसे भ्रमर पुष्पों को हानि न पहुँचाता हुआ केवल रस ग्रहण कर लेता है, ऐसे ही राजा जनता को क्लेश दिए बिना धन का ग्रहण करे। माली की भाँति उद्यान में से फूल तो चुन ले पर, अँगारे बनाने वाले की तरह वृक्ष की जड़ न काटे। किसी कर्म को करने से मेरा क्या लाभ होगा और न करने से क्या हानि होगी—यह सोचकर ही मनुष्य कर्म करे व न करे। कई कार्य सदा अकर्त्तव्य होते हैं और जिनके लिए पुरुषार्थ व्यर्थ हो, वह भी अकर्त्तव्य होते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य महाफल देने वाले कर्मों को शीघ्र प्रारम्भ कर देता है, उनमें विलम्ब नहीं करता।

राज्य कैसे नष्ट हो जाता है?

जिसकी कृपा निष्फल हो, जिसका क्रोध निरर्थक हो, प्रजा उस राजा को नहीं चाहती, जिस प्रकार स्त्री नपुंसक पति को नहीं चाहती। जो सबको ऋजुता से देखता है, उस चुप बैठे रहने वाले की ही सब प्रजाएँ प्रेम करती हैं। आँख, मन, वाणी और कर्म—जो इन चार उपायों से लोक को प्रसन्न रखता है, तब लोक भी उसे प्रसन्न रखता है और उसकी अनुकूलता में प्रसन्न होता है। जैसे शिकारी से पशु डरते हैं, ऐसे ही जिससे सब प्राणी डरते हैं, वह चक्रवर्ती राज्य प्राप्त करके भी नष्ट हो जाता है। अपने पुरुषार्थ से बाप-दादे के राज्य को प्राप्त करके भी राजा अनीति से उसे ऐसे

ही नष्ट कर देता है, जैसे बादल को वायु बखेर देता है। पूर्व के श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा आचरित धर्म का पालन करने वाले राजा की धनधान्य से पूर्ण पृथ्वी ऐश्वर्य युक्त होकर बढ़ती है। धर्म का त्याग कर अधर्म का आचरण करने वाले राजा की भूमि ऐसे सिकुड़ती है, जैसे अग्नि में डाला हुआ चमड़ा। अतः कर्म से राज्य प्राप्त करे और धर्म से उसकी रक्षा करे क्योंकि धर्म मूलक लक्ष्मी को प्राप्त कर कभी उससे परित्यक्त नहीं होता। पर राष्ट्र के विनाश के लिए जो दान किया जाता है, वही दान स्वराष्ट्र के रक्षण के लिए भी करना चाहिए। बालक से भी सार ग्रहण करना चाहिए जैसे पत्थर से सोना लिया जाता है। जहाँ-तहाँ से उत्तम वचनों को ग्रहण करते रहना चाहिए। गौ गंध से जानती है, ब्राह्मण वेद से ज्ञान प्राप्त करता है, राजा गुप्तचरों द्वारा और सामान्यजन दो आँखों से देखता है। जो लकड़ी तपाये बिना झुक जाती है, उसे नहीं तपाते, जो स्वयं झुकी हुई होती है, उसे भी नहीं तपाते। इसी प्रकार बुद्धिमान् बलवान् के प्रति स्वयं झुक जाता है। जो बलवान् के सामने झुकता है वह मानो इन्द्र के आगे झुकता है। पशुओं के रक्षक बादल होते हैं। क्योंकि वर्षा होने से पशुओं को हरी घास का चारा मिल जाता है। राजाओं के सहायक मन्त्री और स्त्रियों के सहायक पति तथा ब्राह्मणों के सहायक वेद होते हैं।

इन्द्रियों का संयम आवश्यक

धर्म की रक्षा सत्य से, विद्या की रक्षा अभ्यास से, सुन्दरता की रक्षा सफाई से, काल की रक्षा सदाचार से, धन-धान्य की रक्षा नाप-तोल से, घोड़ों की रक्षा पाद-बन्धन से, गौओं की रक्षा देखभाल से और स्त्री की रक्षा मलिन वस्त्रों से होती है। उत्तम कुल में उत्पन्न होने से ही कोई चरित्रवान् नहीं बन जाता, नीच कुल में उत्पन्न भी चरित्र से विशिष्टता को प्राप्त करता है। जो पराये धन में, रूप में, बल में, सुख-सौभाग्य और सत्कार में ईर्ष्या करता है, उसके रोग अनन्त हैं। विद्यामद, धन मद और तीसरा देश व कुल मद—यह अहंकारियों के लिए घातक होते हैं किन्तु सज्जनों के लिए संयम का साधन बन जाते हैं। मद्यपान आदि से मद होता है पर ऐश्वर्य मद सबसे निकृष्ट है। इससे गिरे बिना वह नहीं समझ पाता है। आत्मज्ञानी पुरुषों की गति सत्पुरुष हैं, सन्तों की गति सत्पुरुष ही होते हैं, असत्पुरुषों की गति भी सत्पुरुष ही हैं, किन्तु असत्पुरुष कभी सत्पुरुषों की गति नहीं होते। उत्तम वस्त्र-धारी सभा को जीत लेता है, बल की आशा से गौओं वाला जीत लेता है, यान वाला मार्ग को, पर शील वाला सब को जीत लेता है। संसार में शील ही पुरुष के लिए मुख्य है, जिसका शील नष्ट हो उसके जीने से, बन्धु से और धन से कोई लाभ नहीं है। धनी पुरुषों का भोजन मांस प्रधान, मध्य लोगों का गोरस प्रधान और दरिद्रों का तैल प्रधान होता है। किन्तु दरिद्र ही सदा स्वादु भोजन करते हैं क्योंकि भूख से ही भोजन में स्वाद आता है जो धनियों के लिए दुर्लभ है। श्रीमानों को प्रायः खाने का सामर्थ नहीं होता। राजन्! दरिद्रों को तो काष्ठ भी पच जाते हैं। अधमों के लिए अभाव भय है, मध्यमों के लिए मृत्यु भय, और उत्तम मनुष्यों के लिए अपमान भयप्रद होता

है। इन्द्रियों के विषय में फंसा हुआ, और अनिगृहीत इन्द्रियों से यह लोक ऐसा आक्रान्त होता है जैसे ग्रहों द्वारा नक्षत्र आक्रान्त किए जाते हैं। जिस मनुष्य का आत्मा इन्द्रियों के स्वाभाविक पंचवर्ग—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध के आधीन रहता है, उसकी आपत्तियाँ ऐसी बढ़ती हैं जैसे शुक्ल पक्ष में तारापति चन्द्र। यह लक्ष्मी उन्हें ही सदा प्राप्त होती है जो जितेन्द्रिय हैं, आत्मा विजयी हैं, दुष्टों के प्रति दण्ड धारण करने वाले हैं, परीक्षा के साथ कार्य करने वाले और धैर्य शील हैं।

आत्मा की वरीयता

हे राजन् ! यह शरीर पुरुष का रथ है, आत्मा इसका संचालक है, इन्द्रियाँ घोड़े हैं। प्रमाद रहित चतुर उनसे इसी प्रकार सुख प्राप्त करता है जैसे बुद्धिमान् रथी नियन्त्रित घोड़ों द्वारा सुख प्राप्त करता है। वश में न की हुई यह इन्द्रियाँ प्राणान्त करने वाली होती हैं जैसे बेकाबू घोड़े कुसारधि को मार्ग से गिरा देते में। मूर्ख मनुष्य अर्थ-सुख साधनों से अनर्थ-दु:ख—प्राप्त करता हुआ और अनर्थ-चोरी आदि से—अर्थ-धन—की प्राप्ति मानता हुआ इन्द्रियों से पराजित हो महादु:ख को सुख मानता है। जो मनुष्य धर्म तथा अर्थ का त्याग करके इन्द्रियों के आधीन हो जाता है, वह शीघ्र लक्ष्मी, धन एवं परिवार से विमुक्त हो जाता है। मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों को संयत करके आत्मा द्वारा अपने आत्मा को खोजे, क्योंकि अपना आत्मा ही अपना बन्धु एवं अपना आत्मा ही अपना शत्रु है। जिसने आत्मा के द्वारा आत्मा को जीता है, उसका आत्मा ही अपने आत्मा का बन्धु है।

वाणी का सदुपयोग आवश्यक

जो राजा अपने को जीते बिना अमात्यों को जीतना चाहता है, अथवा अमात्यों को जीते बिना शत्रुओं को जीतना चाहता है, वह विवश हो पराजित होता है। आत्मा अपने आपको, जो शत्रु रूप से, प्रथम जीत लेता है, इसके पश्चात् अमात्यों एवं शत्रुओं को जीतना चाहता है, वह निष्फल क्रम की इच्छा नहीं करता। सूक्ष्म छिद्र वाले जाल के भीतर फंसे बड़ी मछलियों के समान काम तथा क्रोध, हे राजन् ! बुद्धि का लोप कर देते हैं। धर्म तथा अर्थ का विचार करके जो मनुष्य विजय के साधनों का संग्रह करता है, वह निरन्तर सुख को प्राप्त होता है। बड़े-बड़े राजा—रावणादि—अपने राज विलासों में फँस, इन्द्रियों के अधीन होने से मारे जाते देखे गए हैं। पापियों का त्याग न करने से पाप रहितों को भी उनके संग से समान दण्ड मिलता है, जैसे सूखे के साथ गीला भी जल जाता है। अत: पापियों से मेल न करे। अनुसूया, सरलता, शुद्धि, सन्तोष प्रियवादिता, इन्द्रियजप, सत्य तथा सहिष्णुता—यह गुण दुष्टों के नहीं होते। आत्मज्ञान, सहिष्णुता, तितिक्षा, धर्म में तत्परता, संयतवाणी तथा दान—ये गुण नीचों में नहीं होते। मूर्खजन रुक्षभाषण और निन्दा के द्वारा ज्ञानियों को पीड़ा देते हैं। कठोर वचनादि से वक्ता को पाप लगता है और उनका सहने वाला निर्दोष रहता है। हिंसा दुष्टों का बल है, अपराधी को दण्ड देना राजाओं का बल है, पति सेवा स्त्रियों का बल है,

और क्षमा गुणियों का बल है। हे राजन् ! वाणी का संयम सबसे अधिक दुष्कर माना जाता है। सार्थक तथा नवीन बहुत नहीं बोला जा सकता। सुभाषित वाणी नाना प्रकार के कल्याण को प्राप्त कराती है। हे राजन् ! दुर्भाषित वाणी अनर्थ का हेतु बनती है। वाण का घाव भर जाता है। कुल्हाड़े से कटा वृक्ष फिर उग आता है किन्तु वाणी से कठोर, वीभत्स, बोला गया घाव शीघ्र नहीं भरता है। फलदार वाण, गोली, लोहे का अस्त्र—शरीर से यह निकल सकते हैं पर वाणी का काँटा नहीं निकाला जा सकता क्योंकि वह हृदय में चुभा होता है। वाणी रूपवाण मुख से निकलते हैं जिनसे प्रताडित हो मनुष्य दिन-रात दुखी रहता है, शत्रु के मनों में जो न गिरे, ऐसे वाणों को दूसरों के प्रति ज्ञानी न छोड़े।

कौरव दुर्मति के चक्कर में

दैवी शक्तियाँ जिसे पराजित करना चाहती हैं, उसकी बुद्धि को हर लेती हैं, इससे वह न कहने योग्य बातें कहने लगता है। बुद्धि के विकृत होने और विनाश में उपस्थित होने पर नीति प्रतीत होने वाली अनीति हृदय से दूर नहीं होती। इस विपरीत बुद्धि ने हे राजन् ! तेरे पुत्रों को घेर रखा है। पाण्डवों के प्रति विरोधभाव के कारण आप इसे समझ नहीं पा रहे। हे धृतराष्ट्र ! भाग्यशाली, धर्म तथा अर्थ का ज्ञाता, तेज और बुद्धि सम्पन्न युधिष्ठिर, दया, अहिंसा दानादि गुणों के कारण तेरे सभी पुत्रों से अधिक योग्य है किन्तु तेरे प्रति आदर रखने के कारण अनेक क्लेशों को सह रहा है।

(अध्याय—३)

धृतराष्ट्र ने कहा—हे महाबुद्धे! मैं तुम्हारे धर्मार्थ युक्त वचन और सुनना चाहता हूँ। अभी मेरी तृप्ति नहीं हुई है। तब विदुर ने कहना प्रारम्भ किया—

कल्याण मार्ग के साधन

हे राजन् ! सब तीर्थों में स्नान और सब प्राणियों पर दया—दोनों ही तुल्य हैं अथवा दया दोनों में श्रेष्ठ है। तुम युधिष्ठिर आदि पुत्रों पर दया करो। उत्तम कीर्ति से ही स्वर्ग मिलता है। जब तक संसार में मनुष्य की पुण्य कीर्ति गायी जाती है, तब तक वह स्वर्ग में प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। हे राजन् ! भूमि के लिए तुझे झूठ बोलना उचित नहीं है। पुत्र के लिए मिथ्या बोलता हुआ कहीं तू पुत्रों और मंत्रियों सहित नाश को प्राप्त न हो जाए। दैवी शक्तियाँ व लोकोपकारी उत्तम पुरुष चरवाहे की भाँति हाथ में दण्ड लेकर रक्षा नहीं करते हैं। जिसकी रक्षा करना चाहते हैं, उसे बुद्धि से संयुक्त कर देते हैं। जैसे-जैसे मनुष्य कल्याण में मन लगाता है, वैसे-वैसे उसके सब कार्य सिद्ध होते हैं—इसमें संशय नहीं है। मायावी के प्रति माया व ठगी से व्यवहार करने वाले को वेद भी पाप से मुक्त नहीं करते हैं। जिस प्रकार पक्ष पैदा होने पर पक्षी घौंसले को छोड़ देते हैं, वैसे ही अन्त समय में वेद पापी का त्याग कर देते हैं। मद्यपान,

कलह, समुदाय से वैर, पति-पत्नी की जुदाई, नातेदारों की फूट, राजा से द्वेष, स्त्री-पुरुष का झगड़ा, और अत्यन्त दुष्ट मार्ग—यह सब त्याज्य हैं।"

ब्रह्म हत्या के पापी

समुद्र के व्यापारी, जो पहले चोर रहा हो, पाँसों में धूर्त्त, चिकित्सक, शत्रु, मित्र तथा नट—इन सात को साक्ष्य में प्रमाण न माने। प्रमाण पूर्वक अग्निहोत्र तथा मानपूर्वक मौन, प्रमाण से अध्ययन और परिमाण युक्त यज्ञ,—यह चारों निर्भय करने वाले हैं किन्तु विधि विरुद्ध करने पर यह भयप्रद हो जाते हैं। दूसरों का घर जलाने वाला, विषदाता, व्यभिचार से जीविका चलाने वाला, मद्य बेचने वाला, आयुध बनानेवाला, चुगली करने वाला, मित्र द्रोही, परस्त्री गामी, भ्रूणघाती, गुरु की स्त्री से व्यभिचार करने वाला, मद्यपान करने वाला द्विज, अत्यन्त कठोर, वेदनिन्दक पात्र-अपात्र का विचार किए बिना यज्ञ कराने वाला, व्रत रहित, संस्कार भ्रष्ट, पाप भोगी, समर्थ होता हुआ, "मेरी रक्षा करो"—ऐसा कहने पर भी हिंसा करे, अर्थात्, शरणागत घाती—यह सब ब्रह्म हत्यारे के समान माने जाते हैं। अन्धकार में जिनको की आग से भी रूपवान् पदार्थ जान लिए जाते हैं। सदाचार से भला मनुष्य तथा व्यवहर से सज्जन, भय में शूर, अर्थ संकट में धीर, कठोर आपत्तियों में मित्र तथा शत्रु पहचाने जाते हैं। बुढ़ापा रूप को, आशा धैर्य को, मृत्यु प्राणों को, असूया धर्माचरण को, कोध शोभा को, दुष्टों की संगति शील को, काम का वेग लज्जा को और अभिमान सब कुछ को हर लेता है। लक्ष्मी, शोभा मांगल्य से उत्पन्न होती है, प्रौढ़ता से बढ़ती है, दक्षता से जड़ जमाती है और मितव्ययता व संयम से ठिकाना करती है।

उत्तम गुणों का स्वरूप

बुद्धि, कुलीनता, दम, अध्ययन, पराक्रम, मितभाषण, यथाशक्ति दान, कृतज्ञता—यह आठ गुण पुरुष को चमकाते हैं। हे राजन्! इन महातेजस्वी गुणों को एक गुण बलात् आश्रित करता है जब राजा इन आठ गुणों वाले मनुष्य को सत्कृत करता है। यह राजकृत सत्कार इन सब गुणों को चमकाता है। हे राजन्! यह आठ गुण जगत् में सुख प्राप्ति के साधन हैं। इनमें से चार तो सज्जन पुरुषों के पीछे चलते हैं और चार का सज्जन अनुगमन करते हैं। यज्ञ, दान, अध्ययन, तथा तप—यह चार तो सज्जनों के पीछे चलते हैं, उनसे नित्य संलग्न हैं। दम, सत्य, आर्जव और दया—इन चार का सज्जन अनुगमन करते हैं। यज्ञ, वेदाध्यपन, दान, तप, सत्य, क्षमा, दया और अलोभ—यह धर्म का आठ प्रकार का मार्ग है। इनमें पहला चतुर्वर्ग—यज्ञ अध्यपन, दान और तप—दम्भ के लिए भी सेवन किया जाता है। अगला चतुवर्ग अर्थात् सत्य क्षमा, दया, अलोभ दुष्टों में नहीं रह सकता है। वह सभा नहीं जिसमें वृद्ध नहीं हैं, वह वृद्ध नहीं जो धर्म का कथन नहीं करते और वह धर्म नहीं जिसमें सत्य नहीं है और वह सत्य नहीं जो छल से रहित नहीं है। सत्य, सुन्दरता, (विनय भाव), अध्ययन

कर्त्तव्य ज्ञान, कुलीनता, शील, बल, धन, शूरता और युक्ति युक्त बात करना—यह दस स्वर्ग के साधन हैं।

सुख प्राप्ति के साधन

पाप करने वाला कलंकित प्रसिद्धि वाला होकर पाप के फल को ही प्राप्त करता है। पुण्य करने वाला पुण्य कीर्ति वाला होकर पुण्य के फल को प्राप्त होता है। अतः पवित्र मनुष्य पाप न करे। बार-बार किया गया पाप बुद्धि नष्ट कर देता है, नष्ट बुद्धि नित्य पाप ही करता है। बार-बार किया गया पुण्य बुद्धि को बढ़ाता है। बढ़ी हुई बुद्धि वाला मनुष्य नित्य पुण्य ही करता है और पवित्र कीर्ति युक्त हो पुण्य स्थान को प्राप्त करता है। अतः मनुष्य अत्यन्त सावधान हो पुण्य का निरन्तर सेवन करे। पर निन्दक, दूसरों के मर्म स्थलों पर चोट करने वाला, निष्ठुर, वैरी, शठ, पापकारी, यह सब शीघ्र ही महान् कष्ट को प्राप्त करते हैं। पर निन्दा न करने वाला, बुद्धिमान्, सदा उत्तम आचरण करने वाला, महासंकट को प्राप्त नहीं होता और सर्वत्र शोभा प्राप्त करता है। बुद्धिमानों से बुद्धि प्राप्त करने वाला पंडित है। बुद्धिमान् मनुष्य धर्म तथा अर्थ को प्राप्त कर सदा सुख बढ़ा सकता है। दिन में ही वह कार्य मनुष्य कर ले जिससे रात्रि में सुख से सो सके। आठ महीनों में वह कर ले जिससे वर्ष में सुख से रह सके। पहली आयु में वह कार्य करे जिससे बुढ़ापे में सुखी रहे। जीवन भर वह करे जिससे मर कर सुख से रहे। पचा हुआ भोजन प्रशंसा योग्य है—वृद्धा पत्नी प्रशंसा योग्य है, युद्ध विजयी शूर प्रशंसनीय होता है तथा जीवन्मुक्त तपस्वी की प्रशंसा की जाती है। अधर्म द्वारा प्राप्त धन से जो छिद्र ढका जाता है, वह नंगा हो जाता है, उससे दूसरा छिद्र फटता है। आत्मवानों का नियन्ता गुरु है, दुष्टों का नियन्ता राजा है, गुप्त पापियों का नियन्ता सर्वव्यापक यम परमात्मा है। ऋषियों, नदियों, महात्माओं के कुलों तथा स्त्रियों के दुराचरण का कारण—मूल स्थान—खोजने का यत्न नहीं करना चाहिए। हे राजन्! विद्वानों की पूजा में संलग्न, दाता, सम्बन्धियों के प्रति सरल व्यवहार करने वाला, और शीलवान् क्षत्रिय, चिरकाल तक पृथ्वी की रक्षा करते हैं। सुनहरी फूलों वाली पृथ्वी से तीन मनुष्य पुष्प चुन सकते हैं—शूर, विद्वान् और जो सेवा करना जानता है। हे भारत! बुद्धि से सिद्ध होने वाले कर्म श्रेष्ठ होते हैं, भुज बल से सिद्ध होने वाले मध्यम, भाग-दौड़ अथवा लुक-छिपकर किये जाने वाले कर्म अधम तथा जिनसे सिर पर संकट आ पड़े—वह नीचतर कर्म होते हैं। दुर्योधन और मूढ शकुनि तथा दुःशासन और कर्ण पर राज्य भार डाल तुम कैसे कल्याण की कामना कर सकते हो? हे भरतर्षभ! सभी गुणों से युक्त पाण्डव आप के प्रति पितृवत् व्यवहार करते हैं, अतः आप भी उनके प्रति पुत्रवत् बर्त्ताव करें।

(अध्याय—४)

महात्मा विदुर हंस अर्थात् संन्यासी द्वारा आत्रेय ऋषि और अन्य साध्य देवों को दिये गये उपदेश का उल्लेख इस अध्याय में करते हैं—

हंस का उपदेश—विदुर के शब्दों में

हंस (संन्यासी) ने कहा—हे देवो ! मैंने बड़ों से वह कर्त्तव्य उपदेश सुना है—धृति, शम, और सत्य धर्म का निरन्तर पालन करने से हृदय की ग्रन्थियां खुल जाती हैं जिससे मनुष्य मित्र और शत्रु से अपने समान वर्ताव करने लगता है। उत्तम मनुष्य गाली खाता हुआ भी गाली न दे क्योंकि सहनशील का मन्यु गाली देने वाले को जला देता है और गाली देने वाले के पुण्य को वह प्राप्त कर लेता है। मनुष्य न गाली देने वाला और नहीं किसी का तिरस्कार करने वाला हो। न ही मित्र द्रोह करे और न नीच का सेवक हो, न ही अभिमानी हो और न ही हीन वृत्त (आत्महीनता) वाला हो, रूखी और कठोर वाणी का त्याग करे। इस जगत् में रूखी वाणी मनुष्यों के मर्म हृदय और प्राणों को जला देती है। अत: धर्म प्रेमी जलाने वाली रूक्षण वाणी का सदा त्याग करे। मर्मघाती, कठोर, रूखे वचनों और वाणी रूपी कंटकों से दूसरों को दुखाने वाले मनुष्य को सबसे अधिक अभागा और मुख में पाप का धारण करने वाला जाने। विरोधी यदि लगातार सूर्य व अग्नि के समान जाज्वल्यमान, अत्यन्त तीखे वचन रूप वाणों से बींधे तो वह बींधा गया ज्ञानी जलाया जा कर भी यह समझे कि यह मेरे कुकर्मों का संचय कर रहा है।

उत्तम मनुष्य के गुण

यदि सज्जन की सेवा करता है अथवा असज्जन की, तपस्वी की अथवा चोर की सेवा करता है, तो वह उन सेव्यों के वश में वैसे ही हो जाता है जैसे वस्त्र रंग के आधीन हो जाता है। किसी के सम्बन्ध में न स्वयं अत्युक्ति करे और न दूसरों से कराए। जो मनुष्य चोट खाकर भी न तो चोट करे और न दूसरों से कराए, और जो पापी को भी नहीं मारना चाहता, ऐसे पुरुष की निष्काम ज्ञानी भी स्पृहा करते हैं। बोलने से न बोलने को अधिक अच्छा माना जाता है, यदि बोला हुआ सत्य है तो वह पहले से अधिक श्रेष्ठ है। यदि सत्य कथन को प्रिय करके कहे तो वह तृतीय अर्थात् अधिक श्रेष्ठ है। यदि सत्य तथा प्रिय वचन को धर्म युक्त करके कहे तो वह चतुर्थ, अर्थात्, सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्य जैसों के साथ उठता-बैठता और मेल-मिलाप करता है, वैसा ही हो जाता है। जहाँ-जहाँ से मनुष्य अपने को बन्धन रहित करता है—वहाँ से निर्लिप्त होता जाता है। सब ओर से बन्धन रहित होने दु:ख का अणुमात्र भी अनुभव नहीं करता है। जो किसी से न हारता है और न दूसरों को जीतना चाहता है, न किसी से वैर करता और न किसी के साथ प्रतिघात करता है, निन्दा और प्रशंसा में एक स्वभाव रखता है, न शोक न हर्ष करता, सबका कल्याण चाहता, किसी के प्रति अकल्याण का विचार नहीं करता, सत्यवादी, कोमल स्वभाव, जितेन्द्रिय है, वह उत्तम पुरुष है। जो झूठी सान्त्वना नहीं देता, प्रतिज्ञा पूर्ण करके देता और दूसरे के छिद्र को जानता है, वह मध्यम पुरुष है। जिसका नियन्त्रण कठिन हो, जो अभागा, सब ओर से निन्दित, क्रोध के आधीन हुआ सरल बने, कृतघ्न, किसी का मित्र न होकर दुरात्मा

हो, अधम पुरुष की यह कलाएँ हैं। दूसरों से अपने विषय में सशंक हुआ जो कल्याण मार्ग पर विश्वास नहीं करता, मित्रों का निराकण करता है, वह अधम पुरुष है। उत्तम का ही संग करे, आपत्ति आने पर मध्यमों का संग कर ले किन्तु अधमों का सेवन न करे जो अपना कल्याण चाहे। धन छल-कपट, नित्य उद्योग, बुद्धि, पौरुष, नौकरी-चाकरी आदि से प्राप्त हो जाता है किन्तु अन्याय से न तो प्रशंसा प्राप्त करता और न ही उत्तम कुलों के सदाचार की मर्यादा को मनुष्य प्राप्त कर सकता है।

श्रेष्ठ महाकुलों का स्वरूप

धृतराष्ट्र ने पूछा—धर्मार्थ में तत्पर निष्कामी ज्ञानी भी जिनकी स्पृहा करते हैं, ऐसे महाकुल कौन होते हैं ?

विदुर ने उत्तर दिया—तप, दम, वेदरूपी धन, यज्ञ, पवित्र विवाह, निरन्तर अन्न दान तथा सदाचार—यह सात गुण जिनमें हैं, वह महाकुल हैं। जिनका चरित्र विचलित नहीं होता, मात-पिता के आज्ञाकारी, चित्त की प्रसन्नता से धर्म का आचरण करते हैं और अपने कुल की विशेष कीर्ति सदा चाहते, मिथ्या का त्याग कर चुके हैं, वह महाकुल है। यज्ञ न करने, कुविवाह, वेद के उच्छेद और धर्म के उल्लंघन से कुल अकुल हो जाते हैं। यज्ञादि के निमित्त अथवा विद्वत्-सेवा के निमित्त प्राप्त द्रव्यत को दूसरे कार्य में लगाने, विद्वान् का धन छीनने और उसका तिरस्कार करने से कुल अकुल हो जाते हैं। हे भारत ! विद्वान् को दबाने और उसकी निन्दा करने, अमानत को न लौटाने से कुल अकुल हो जाते हैं। जो कुल चरित्रहीन हैं, वह गौ, मनुष्य और धन से सम्पन्न होते हुए भी कुल की संज्ञा को प्राप्त नहीं कर सकते। थोड़े धन वाले होते हुए भी, चरित्र से अहीन कुल संज्ञा को प्राप्त करते और महान यश को प्राप्त करते हैं। अतः यत्न पूर्वक चरित्र की रक्षा करे, धन तो आता जाता है। धन से क्षीण होने पर भी वृत्त सम्पन्न मनुष्य अक्षीण है किन्तु चरित्र भ्रष्ट धन सम्पन्न होने पर भी नष्ट है। गौ-पशु, अश्व, खेती तथा धन-धान्य पूर्ण भी वे कुल नहीं फलते-फूलते जो चरित्रहीन हैं।

सत्पुरुष ऐसी कामना किया करते हैं, कि हमारे कुल में कोई वैरी न हो, राजा और मंत्री पर धनापहारी न हो, मित्र द्रोही, दूसरों का तिरस्कार करने वाला, झूठा, पितृ यज्ञ, देवयज्ञ तथा अतिथि यज्ञ करने से पूर्व कोई खाने वाला न हो। जो हमारे विद्वानों का घात करे, जो विद्वानों से द्वेष करे, जो हमारी खेती अन्याय से काट ले वह हमारी समिति में न आ जा सके। आसन, भूमि, जल और चौथी मीठी वाणी—ये सज्जनों के घरों में कभी नष्ट नहीं होते। हे राजन् ! पुण्य कर्मी धर्मियों के उत्तम चरित्र, उत्तम श्रद्धा के द्वारा सत्कार को प्राप्त होते हैं। रथ छोटा होता हुआ भी जिस प्रकार भार उठाने में समर्थ होता है, अन्य वृक्ष भार नहीं उठा सकते, ऐसे ही उद्योगी महाकुलीन व्यक्ति ही समाज का भार उठा सकते हैं, साधारण मनुष्य नहीं। वह मित्र नहीं जिसके कोप से मनुष्य डरे। शंका से सेव्य मनुष्य भी मित्र नहीं होता। जिस मित्र पर पिता की भाँति भरोसा किया जा सके वही मित्र है, अन्य तो मिलने-जुलने वाले ही हैं। किसी प्रकार से भी सम्बन्धी न होता हुआ भी जो मित्र भाव से बर्ताव करे, वही

बन्धु, मित्र, गति तथा उत्तमाश्रय है। चंचल चित्त वाले, वृद्धों की सेवा न करने वाले, अस्थिर बुद्धि वाले मनुष्य के लिए मित्र प्राप्ति अनिश्चित है। चंचल स्वभाव, इन्द्रियों के दास, आत्म-ज्ञान शून्य मनुष्य के साथ उत्तम पुरुष ऐसा व्यवहार करते हैं जैसे हंस सूखे तालाब के साथ। जो बिना कारण क्रुद्ध और बिना कारण प्रसन्न हो सके, चंचल मेघ के समान असत् जनों का यह शील होता है। मित्र से सत्कार पाकर और सफल मनोरथ होकर भी जो मित्रता नहीं निभाते हैं, उन कृतघ्नों के मरने पर कच्चा माँस खाने वाले पक्षी भी उनका माँस नहीं खाते। धन हो व न हो, मित्रों का सत्कार करे ही, क्योंकि प्रार्थना शून्य मनुष्य मित्रों के सार और फोकेपन को नहीं जान पाता।

हर्ष-शोक का त्याग

शोक से रूप नष्ट होता है, शोक से बल, ज्ञान नष्ट होता और शोक से रोग प्राप्त होता है। प्राप्त न होने योग्य वस्तु शोक से तो प्राप्त हो नहीं सकती, हाँ, शरीर तपता है—और शत्रु हँसते हैं। अतः शोक में मन मत लगा। मनुष्य बार-बार मरता, जनमता, बार-बार घटता-बढ़ता है। वह बार-बार दूसरों से माँगता और दूसरे उससे बार-बार माँगते हैं। बार-बार मनुष्य शोक करता व उसके लिए अन्य शोक करते हैं। सुख-दुःख, उत्पत्ति-मृत्यु, लाभ-हानि, जीना-मरना—यह सब बारी-बारी से स्पर्श करते हैं। इसलिए बुद्धिमान् हर्ष-शोक दोनों न करे। यह छः इन्द्रियाँ सचमुच चंचल हैं, इनकी जिस-जिस दिशा में वृद्धि होती है, वहाँ-वहाँ से मनुष्य की बुद्धि नित्य चूने लगती है, जैसे छिद्र वाले घट से जल चूता है।

एकता का बल

धृतराष्ट्र ने कहा—काष्ठ रूपी शरीर में रुकी हुई अग्नि के समान युधिष्ठिर के साथ मैंने मिथ्या व्यवहार किया है, वह युद्ध में मेरे मूर्ख पुत्रों का अवश्य नाश करेगा। इससे मैं बड़ा भयमीत हूँ। हे महामते! तुम मुझे उस पद का ज्ञान बताओ जिससे मैं भय रहित हो जाऊँ। विदुर बोला—

हे राजन्! न तो विद्या, तप के बिना और न ही इन्द्रिय निग्रह के बिना, न ही लोभ त्यागे बिना—तेरे लिए शान्ति का मार्ग है। मनुष्य बुद्धि द्वारा भय दूर करता, तप से महानता प्राप्त करता, गुरु सेवा से ज्ञान तथा योग से शान्ति प्राप्त करता है। मुमुक्षु दान पुण्य के फल का आश्रय न चाहते हुए, वेद पुण्य के फल की भी आकांक्षा न करते हुए राग-द्वेष से विमुक्त हो इस संसार में विचरते हैं। उत्तम अध्ययन, धर्म युद्ध, उत्तम कार्य, उत्तम तप—इनकी समाप्ति पर मनुष्य का सुख बढ़ता है। उत्तम रीति से बिछाए हुए बिछौने पर भी पड़े भेद बुद्धि वाले पुरुष कभी भी निद्रा प्राप्त नहीं कर पाते। भिन्न, परस्पर फूटे हुए मनुष्य कभी भी धर्म का आचरण नहीं कर पाते, न ही वे इस संसार में सुख प्राप्त कर सकते हैं। ऐसे पुरुष गौरव अथवा उत्कृष्ट शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। उन्हें हितकारी वचन अच्छा नहीं लगता, उनका योग क्षेम भी सफल नहीं होता। हे राजन्! ऐसी फूट में पड़े मनुष्यों की अन्तिम गति विनाश के अतिरिक्त

अंन्य कुछ नहीं होती। वहुत सारे छोटे-छोटे समान तन्तु आपस में मिल पुष्ट होकर प्रवल होने के कारण अनेक क्लेशों का मुकाबला कर लेते हैं। यह सज्जनों की उपमा है— एकता में वड़ा वल है। हे धृतराष्ट्र ! कई सम्वन्धी तिनकों की भाँति पृथक्-पृथक् रहते हुए धुँआ ही देते हैं और इकट्ठे ही जल जाते हैं। अकेले स्थान पर उगा, बलवान् दृढ़ मूल वाला महान् वृक्ष भी वायु द्वारा बलात् तने समेत उखाड़ कर क्षण भर में भूमि पर गिरा दिया जाता है, पर जो वृक्ष इकट्ठे और पंक्ति बनाकर दृढ़ मूल किए गए हैं, वे एक-दूसरे के सहारे से अत्यन्त वेगवान् वायु को भी सह लेते हैं। इसी प्रकार गुण युक्त होते हुए भी अकेले मनुष्य को विरोधी उखाड़ देते हैं जैसे वायु अकेले वृक्ष को। एक दूसरे को पुष्ट करने तथा एक-दूसरे के सहारे से सम्वन्धी ऐसे बढ़ते हैं जैसे तालाब में कमल।

आरोग्य का महत्त्व

हे राजन् ! मनुष्य में साधनता और निरोगता के बिना कोई गुण फलता नहीं है क्योंकि रोगी तो मृतक के समान होता है। हे राजन् ! बिना व्याधि के उत्पन्न होने वाले, कड़वे, सिर को पीड़ा देने वाले, पाप के पैदा करने वाले, कठोर, गर्म, क्रोध को पी जाओ, यह सज्जनों का पेय है। असज्जन इसे नहीं पी सकते। रोगी मनुष्य फलों का आदर नहीं करते, न ही विषयों का सार पाते हैं। रोगी सदा दुःखी रहता हुआ धन अथवा सुख—दोनों का उपभोग नहीं कर सकता। वह वल नहीं है जिसके द्वारा दुर्बल का विरोध किया जाए। धर्म सूक्ष्म है, उसका वेग से सेवन करना चाहिए। विनाश शालिनी लक्ष्मी क्रूर स्वभाव वाली है, वही मृदु प्रौढ़ होकर पुत्र-पौत्रों को प्राप्त होती है।

कौरव-पाण्डवों का मेल आवश्यक

हे राजन् ! धृतराष्ट्र के पुत्र पाण्डवों की रक्षा करें और पाण्डु पुत्र तेरे पुत्रों का पालन करें। कुरु वंश के एक सदृश ही मित्र और शत्रु हों। एक लक्षण वाले होकर सुखी और समृद्ध हों। हे राजन् ! तू आज कौरव वंश का स्तम्भभूत है, कुरु कुल तेरे आधीन है। हे तात ! अपने यश की रक्षा करता हुआ तू वनवास से तपाये हुए कुन्ती पुत्रों की अपने बच्चों की तरह रक्षा कर। तू कौरव पाण्डवों का मेल करा दे। राजन् ! भाइयों में आपसी फूट न हो। सब सत्य में स्थित हों। तुम दुर्योधन को सत्य में स्थित करो।

(अध्याय—५)

विदुर ने कहा—हे राज श्रेष्ठ ! मनु ने इन सत्तरह पुरुषों को मुट्ठियों से आकाश पीटने वाला तथा न झुकने वाले इन्द्र धनुष को झुकाने वाला और पकड़ में न आने वाली सूर्य किरणों को पकड़ने वाला बताया है।

सत्तरह प्रकार के निन्दनीय व्यक्ति

(१) जो अजिज्ञासु (अशिष्य) को शिक्षा देता है (२) जो मर्यादा से अधिक

सन्तोष करता है (३) जो अपने स्वार्थ के लिए शत्रु की सेवा करता है (४) जो शत्रु सेवा से और स्त्री रक्षा से भद्र प्राप्त करना चाहता है (५) जो कृपण आदि से माँगता है (६) जो थोड़ा काम करके अपनी प्रशंसा चाहता है (७) जो कुलीन होकर अयोग्य कार्य करता है (८) जो निर्बल हो बलवान् से सदा वैर रखता है (९) अश्रद्धालु को जो विद्या पढ़ाता है (१०) जो न चाहने योग्य की कामना करता है (११) जो श्वसुर अपनी पुत्रवधू से गन्दे उपहास को उचित मानता है (१२) जो पुत्र वधू से निर्भय किया जाकर उससे मान की कामना करता है (१३) जो पराए खेत में बीज बोता है (१४) जो निर्भय रूप से स्त्री की निन्दा करता है (१५) प्राप्त करके जो कहे कि मुझे स्मरण नहीं है (१६) जो देकर अपनी प्रशंसा स्वयं करे (१७) जो असज्जनों की सत्ता को उन्नत करे। इन सबको मृत्यु दूत नरक में ले जाते हैं। जो मनुष्य जैसा व्यवहार करे, उसके प्रति वैसा ही व्यवहार करे, यह धर्म है। ठगी से व्यवहार करने वाले के साथ ठगी का और भला व्यवहार करने वाले के साथ भलाई का व्यवहार करना चाहिए। बुढ़ापा रूप को, अभिलाषा धैर्य को, मृत्यु प्राणों को, असूया धर्माचरण को, काम लज्जा को, अनार्यों का संग चरित्र को, क्रोध शोभा को और अभिमान सब कुछ हर लेता है।

आयु नाश के कारण

धृतराष्ट्र ने पूछा—सभी वेदों में मनुष्य को शतायु कहा गया है, तो किस कारण से मनुष्य इस सम्पूर्ण आयु को प्राप्त नहीं करता।

विदुर ने कहा—हे राजन्! अति अभिमान, अति वादविवाद, त्याग न करना, क्रोध, अपने ही पालन-पोषण की इच्छा और मित्र द्रोह—यह छः तीक्ष्ण तलवारें प्राणियों की आयु को काटती हैं, यही मनुष्यों को मारती हैं, न कि मृत्यु। हे भारत! जो विश्वस्त की स्त्री से व्यभिचार करता है, गुरु-पत्नी से भोग करता, जिसकी स्त्री धर्म घातिका है, जो द्विज होकर भी मद्य पीता है, जो अपने मान्य पुरुषों पर शासन करना चाहता है, द्विजों की आजीविका का विनाशक और उन पर आज्ञा चलाने वाला और जो शरणागत का घातक है—यह सब ब्रह्म हत्यारे के समान हैं—इनसे सम्बन्ध त्याग करता हुआ प्रायश्चित्त करे। बड़ों की बात मानने वाला, नीतिमान्, दानी (उदार), यज्ञ शेष खाने वाला, अहिंसक, अनर्थ न करने वाला, व्याकुल न होने वाला, कृतज्ञ, सत्य जीवन वाला, मृदु, विद्वान्, स्वर्ग—सुख-साधन को प्राप्त करता है। हे राजन्! निरन्तर प्रिय बोलने वाले पुरुष तो बहुत मिलते हैं किन्तु कटु और हितकारी कहने तथा सुनने वाले दुर्लभ हैं। जो प्रिय तथा अप्रिय का विचार छोड़, धर्म का आश्रय लेकर राजा को हितकारी अप्रिय भी कहता है, वही राजा का सच्चा सहायक है। कुल की रक्षा के लिए एक पुरुष का त्याग कर दे, ग्राम के लिए कुल को छोड़ दे, देश के लिए ग्राम को छोड़ दे और आत्मा के लिए पृथ्वी को छोड़ दे। आपत्ति के लिए धन बचाए, धन व्यय करके भी स्त्री की रक्षा करे और धन तथा स्त्री का विनाश करके भी आत्मा की रक्षा करे। यह जुआ खेलना पुराने काल में भी मनुष्य का बैरी सिद्ध हुआ। अतः बुद्धिमान् हँसी के लिए भी जुआ न खेले। हे राजन्! जूए के समय भी मैंने यह कहा था किन्तु रोगी को

पथ्य औषध की भाँति वह बचन पसन्द नहीं आया। हे राजेन्द्र ! सिंहों को मार कर गीदड़ों की रक्षा करता हुआ समय आने पर तू पछताएगा। हे तात ! जो भक्त और हित में रह भृत्य पर क्रोध नहीं करता, भृत्य उस पर विश्वास करते हैं और आपत्ति में भी उसे नहीं छोड़ते। भृत्यों का वेतन रोक कर नया धन या राज्य लेने की इच्छा न करे क्योंकि वृत्ति से वंचित होकर स्नेह करने वाले अमात्य भी राजा को छोड़ जाते हैं।

भृत्यों के साथ व्यवहार

सारे कार्यों को पहले गिनकर और आय-व्यय के अनुसार व्यवस्था को विचार कर तदनुरूप सहायकों का संग्रह करे क्योंकि दुष्कर कार्य सहायकों द्वारा ही सिद्ध हो सकते हैं। जो स्वामी के अभिप्राय को जान कर, आलस्य रहित हो सब कार्य कर देता है और हितों का कहने वाला, अनुरक्त, आर्य (श्रेष्ठ) तथा शक्ति का ज्ञाता है, उस पर अपने समान कृपा करनी चाहिए। आदेश देने पर भी जो उसका आदर न करे, आज्ञा किए जाने पर सामने बोले, अपनी बुद्धि का अभिमान करने और प्रतिकूल बोलने वाले भृत्य का शीघ्र ही त्याग कर देना चाहिए। इन आठ गुणों से युक्त मनुष्य को दूत कहते हैं (१) अनहंकारी (२) अनपुंसक (३) अविलम्बकारी (४) दयालु (५) कोमल (६) दूसरों के बहकावे में न आने वाला (७) नीरोग (८) बातचीत में उदार, कुशल। बुद्धिमान् मनुष्य असमय (बेमौके) विश्वास से कभी दूसरे के घर न जाए। रात्रि में छिपकर चबूतरे पर या आँगन में न बैठे। राजा की अभिलषिता स्त्री की कामना न करे। किसी समय का साथी किन्तु अब शत्रुओं के साथ मिले हुए का कभी तिरस्कार न करे और न ही यह कहे कि मैं तुम पर विश्वास नहीं करता। कारण सहित, बहाना कर उससे बचता रहे। लेन-देन के व्यापार में इनके साथ लेन-देन का व्यवहार न करे, घृणी, अति कृपालु अथवा लज्जाशील, राजा, व्यभिचारिणी स्त्री व व्यभिचारी पुरुष, राजा का नौकर, पुत्र, भाई, छोटे-छोटे बच्चों वाली विधवा, सेवा में नौकरी करने वाला और जिसका ऐश्वर्य नष्ट हो चुका है।

दश गुण स्नान शील का सेवन करते हैं (१) बल (२) रूप (३) स्वरशुद्धि (४) रंग की शुद्धि (५) स्पर्श (६) सुगन्ध (७) स्वच्छता (८) सुकुमारता (९) शोभा (१०) उत्तम नारियाँ। पाँच गुण मितभोजी को प्राप्त होते हैं (१) आरोग्य (२) दीर्घायु, (३) बल (४) सुख और (५) नीरोग सन्तान। निठल्ले, पेटू, लोक निन्दित, अति धूर्त्त, क्रूर, देश काल को न पहचानने वाला और भद्दे वेष वाला—इन आठ को घर में न बसाए। अत्यन्त पीड़ित होने पर भी इनसे न माँगे—(१) कृपण (२) गाली देने वाला (३) मूर्ख (४) वनवासी (५) धूर्त्त (६) मान्य रहित (७) अभिमानी (८) निर्दयी हिंसक (९) वैरी और (१०) कृतघ्न।

आततायी, दम्भी, अतिप्रमादी, नित्य मिथ्यावादी, शिथिल विश्वास वाला, प्रेम छोड़ चुका हुआ, और अपने को चालाक मानने वाला—इन छः नराधमों का कभी सेवन न करे। अर्थ —कार्य धन की सहायता से सिद्ध होता है और सहायक अर्थ साध्य-धन साध्य है। यह दोनों एक-दूसरे के बिना सिद्ध नहीं हो सकते।

कौरव वन के और पाण्डव बाघ के सदृश

सन्तान को उत्पन्न कर और उन्हें ऋण रहित कर और उनकी आजीविका का प्रबन्ध करे, सब कन्याओं को यथायोग्य स्थान पर लगा कर, गृहस्थ, वानप्रस्थी हो मुनि होने की इच्छा करे। जो सब प्राणियों के लिए हितकर और अपने लिए भी सुखकारी है, उसे मनुष्य करे क्योंकि सब कार्यों की सिद्धि के लिए ईश्वर ही मूल कारण है। उत्तरोत्तर वृद्धि, प्रभाव, तेज, शक्ति, उद्योग, उन्नति और व्यवसाय—निश्चयात्मक बुद्धि, जिसके पास हो, उसे भय कहाँ से ? पाण्डवों के साथ युद्ध से होने वाले दोषों को तू देख, जिनसे देव भी विचलित हो सकते हैं। पुत्रों के साथ नित्य वैर, बेचैनी से रहना, यश का नाश और शत्रुओं की प्रसन्नता, भीष्म का और इन्द्र समान तेरा, द्रोण का और युधिष्ठिर का बढ़ा हुआ कोप— यह सब लोकों को ऐसे नष्ट कर सकते हैं जैसे तिरछा गिरता हुआ उल्कापात। तुम्हारे सौ पुत्र और कर्ण भी तथा पाँच पाण्डव मिलकर इस सम्पूर्ण पृथ्वी पर राज्य करें। हे राजन् ! तेरे पुत्र वन सदृश हैं और पाण्डव बाघ माने जाते हैं। बाघों समेत वन को न काट, बाघ वन द्वारा नष्ट न हों। बाघों के बिना वन नहीं हो सकता और वन के बिना बाघ नहीं रह सकते क्योंकि वन की रक्षा बाघ और वन बाघों की रक्षा करता है। पापी दूसरों के भले गुणों को उस प्रकार नहीं जानना चाहता जिस प्रकार इनके गुणों के अभाव को जानना चाहता है।

धर्म का पालन

उत्कृष्ट अर्थ सिद्धि चाहने वाला मनुष्य पहले धर्म का आचरण करे, अर्थ धर्म से दूर नहीं है जैसे स्वर्ग से अमृत। जिसका आत्मा पाप से हट चुका है और शुभ काम में लगा है, उसने प्रकृति और विकृति—इन सबको जान लिया है। जो धर्म, अर्थ और काम का यथा समय नियम से सेवन करता है, वह इस लोक तथा परलोक में धर्म, अर्थ, काम के संयोग और उसकी प्राप्ति के साधन को प्राप्त करता है। जो हर्ष और शोक के उमड़े हुए वेग को रोक लेता है और आपत्तियों में घबराता नहीं है, वही लक्ष्मी का पात्र है।

पाँच प्रकार का बल

हे राजन् ! मुझसे मनुष्य के नित्य रहने वाले पाँच प्रकार के बल को समझो। (१) बाहुबल, यह निकृष्ट है (२) अमात्य बल, (३) धन प्राप्ति को तीसरा बल कहा जाता है। (४) बाप, दादा से पाया बल अभिजाय बल चौथा है (५) हे भारत ! जिस बल के द्वारा सब बल इकट्ठे किए जाते हैं—और जो सबसे श्रेष्ठ है, वह प्रज्ञा बल कहा जाता है। जो मनुष्य किसी मनुष्य का महान् अपकार कर सकता है, उसके साथ वैर बाँधकर "मैं दूर हूँ"—ऐसा भरोसा न करे। राजा, साँप, स्वाध्याय के प्रबल विघ्न और आयु पर कौन बुद्धिमान् विश्वास कर सकता है। बुद्धि रूपी तीर से मारे गए प्राणी को जीवित करने के लिए कोई वैद्य, औषधि, होम मंत्र, मंगल कर्म, सम्मोहनी विघ्न और न कोई सुप्रसिद्ध चिकित्सा है। हे भारत ! साँप, अग्नि, सिंह, कुलपुत्र – यह

सब तेजस्वी होते हैं अत: इनका अपमान नहीं करना चाहिए। अग्नि महान् तेज है जो लकड़ियों में छिपा रहता है। बिना दूसरी लकड़ी के साथ मथन किए उसका तेज प्रकट नहीं हो सकता। प्रदीप्त होने पर वह तेज होकर वन को शीघ्र भस्म कर देता है। इसी प्रकार कुल में उत्पन्न अग्नि समान तेजस्वी सन्तान प्रकट रूप में निश्चेष्ट रहती है जब तक अनुकूल परिस्थिति न मिले। हे धृतराष्ट्र! तू पुत्रों समेत लता स्वभाव वाला है। पाण्डु पुत्र शाखाओं के समान हैं। महा वृक्ष का आश्रय लिए बिना लता कभी नहीं बढ़ सकती।

(अध्याय—६)

सज्जन पुरुषों के गुण

विदुर बोला—घर में आए सज्जन को आसन, जल, द्वारा उसके चरण धुला कर, कुशल मंगल पूछ और अपना कुशल मंगल बताकर बुद्धिमान् भोजन दे। वेदज्ञ मनुष्य जिसके घर में जल, मधुपर्क और वाणी गृहपति के लोभ, भय अथवा कृपणता के कारण स्वीकार नहीं करता, आर्य उसके जीवन को व्यर्थ कहते हैं। लवण, पका अन्न, दही, दूध, मधु, तेल, घृत, तिल, फलमूल, शाक, लाल वस्त्र, सब प्रकार के गन्ध और गुड—यह बेचने नहीं चाहिए।

जो क्रोध नहीं करता, ढेला, पत्थर और सुवर्ण को एक समान समझता है, शोक रहित, मेल और झगड़े से रहित, निन्दा—प्रशंसा, प्रिय-अप्रिय के प्रति उपरत—ऐसा संन्यासी उदासीन की भाँति है। जंगली धान, मूल, हिंगोट (एक प्रकार का वृक्ष जिसके तेल से वनवासी दीपक जलाते थे) और शाक यह निर्वाह करने वाला, अत्यन्त जितेन्द्रिय, अग्नि कार्यों में तत्पर, अतिथि के प्रति सावधान—ऐसा वनवासी, पुण्यकारी धुरन्धर तपस्वी है। ईर्ष्या न करने वाला, अपनी स्त्री को सुरक्षित रखने वाला, सबका आदर करने वाला, प्रिय और मधुरभाषी, मृदु—मनुष्य स्त्रियों के वश में न होवे। स्त्रियाँ पूजनीय महाभाग, पवित्र और घर की दीप्ति और लक्ष्मी मानी जाती हैं। इनकी रक्षा विशेष रूप से करे। अन्त:पुर पिता के आधीन, रसोईघर माता के आधीन, गौ आदि को अपने समान पुत्रादि के आधीन रखे और कृषि के लिए स्वयं जाए। नौकरों द्वारा वाणिज्य व्यवहार और पुत्रों द्वारा द्विजों की सेवा कराए। जल से अग्नि को शान्त करें। ब्राह्मण द्वारा क्षत्रिय के क्रोध को शान्त करे, पत्थर से उत्पन्न लोहे का उपयोग करे। इनका सर्वत्र फैला तेज, अपने ही ठिकानों पर शान्त होता है। अपने कुल में उत्पन्न सज्जन अग्नि के समान तेजस्वी, क्षमाशील और अपने हृदयगत भावों को अपने आकार से प्रकट न होने देने वाले, काष्ठ में अग्नि के समान निश्चेष्ट रहते हैं, पर कभी भी भड़क सकते हैं।

सफल राजा के गुण

जिसके मन्त्र, विचार को बाहर के और भीतर लोग भी नहीं जानते, वह सब ओर से सावधान राजा चिरकाल तक ऐश्वर्य भोगता है। कार्य करने की इच्छा को

प्रकट न करे किन्तु कार्य करके दिखा दे, उसके धर्म, काम और अर्थ सम्बन्धी कार्य और मन्त्र नहीं बिगड़ते। पर्वत की चोटी पर, महल के भीतर अथवा निर्जन वन में रहस्यपूर्ण मन्त्र (विचार) परिपक्व किया जाता है। हे भारत ! परम मन्त्र को अमित्र जानने का और मूर्ख मित्र भी और पंडित होता हुआ भी आत्म गौरव शून्य व्यक्ति जानने का अधिकारी नहीं है। राजा बिना जाँच किये किसी को मन्त्री न बनाये क्योंकि अर्थ रक्षा और मन्त्र की रक्षा मन्त्री के आधीन होती है। कार्य हो चुकने पर जिसके धर्म, अर्थ और काम सम्बन्धी कार्यों को सभासद् जाने, वह राजा सर्वोत्कृष्ट शासक है। इस प्रकार के राजा को निःसन्देह सब कार्यों में सिद्धि प्राप्त होती है। जो मोह-वश निन्दित कार्यों को करता है, वह उनके बिगड़ जाने से जीवन में नष्ट हो जाता है। प्रशस्त कर्मों का अनुष्ठान सुखदायी होता है। उनका न करना पश्चात्ताप कराने वाला माना जाता है। जिस प्रकार वेद न पढ़ा हुआ विप्र श्रद्धायुक्त कर्म, दान-दक्षि-णादि का अधिकारी नहीं है, ऐसे ही जिसे षड्गुणों का ज्ञान नहीं (जिनकी व्याख्या पहले की जा चुकी है), वह मन्त्र सुनने का अधिकारी नहीं।

हे राजन् ! स्थान की वृद्धि और क्षय को जानने वाला, और षड्गुणों द्वारा जिसने अपने बल आदि को जान लिया है तथा आदरणीय शील वाले राजा के यह पृथ्वी सदा आधीन रहती है। जिसके क्रोध और प्रसन्नता निष्फल नहीं है, स्वयं करके भी पीछे जाँच करने वाला, जिसे अपने कोप का साक्षात् ज्ञान है—पृथ्वी ऐसे राजा के लिए धनदात्री ही होती है। राजा नाम मात्र से और राज छत्र से ही सन्तुष्ट न रहे। धन राजकर्मचारी और प्रजा के हित में ही लगाये, अकेला सब हड़प कर लेने वाला न बने। जैसे पति अपनी पत्नी को पहचानता है, वैसे ब्राह्मण ब्राह्मण को और राजा ही राजा को जानता है। वश में आये, वध के पात्र शत्रु को नहीं छोड़ना चाहिए। नम्र होकर प्रतीक्षा करे, शक्ति होने पर शत्रु को मार दे क्योंकि उसे न मारने से शीघ्र भय हो सकता है। पूजनीय, राजा, ब्राह्मण, वृद्ध, बाल और रोगी—इन पर क्रोध नहीं करना चाहिए।

लक्ष्मी बढ़ाने के साधन

मूर्खों में सेवित, निष्प्रयोजन कलह को बुद्धिमान् छोड़ दे। इस प्रकार संसार में यश पाता है और अनर्थ से संयुक्त नहीं होता। जिसकी कृपा बेकार है, क्रोध भी व्यर्थ है, ऐसे राजा को प्रजा नहीं चाहती जिस प्रकार नपुंसक पति को स्त्रियाँ नहीं चाहतीं। धन-प्राप्ति का कारण बुद्धि नहीं और न ही दरिद्रता का कारण मूर्खता है। बुद्धिमान् ही भाग्य फल को जान पाता है, दूसरा (मूर्ख) नहीं। हे भारत ! मूढ़ मनुष्य विद्या वृद्ध, वयोवृद्ध, बुद्धि वृद्ध और कुलीन वृद्धों का नित्य तिरस्कार करता है। अनार्य चरित्र वाले, मूर्ख, निन्दक, अधार्मिक, दुष्ट वाणी वाले और क्रोधी को शीघ्र ही संकट प्राप्त होते हैं। अपनी बात के विरुद्ध न करना, न ठगना, दान, समय का उल्लंघन न करना और सावधानता से कही वाणी—इन गुणों से विरोधी भी अनुकूल हो जाते हैं। दक्ष, कृतज्ञ, ऋजु, अपना वचन पालन करने वाला मनुष्य—अत्यन्त क्षीण कोष वाला

होकर भी भृत्य, सहायक, सहयोगी आदि को प्राप्त कर ही लेता है। धृति, शम, दम, शौच, करुणा, मृदुवाणी और मित्रों का अद्रोह—यह लक्ष्मी को बढ़ाने वाली समिधाएँ हैं। हे राजन् ! यथायोग्य न बाँटने वाला, अथवा भृत्यादि को न देकर स्वयं खाने वाला, दुष्टात्मा, कृतघ्न, निर्लज्ज—ऐसा राजा त्याज्य होता है।

निर्दोष जीवन

जो स्वयं दोष युक्त होकर निर्दोष अन्तरंग मनुष्य को कुपित करता है, वह सर्पयुक्त मकान के समान रात्रि को चैन से नहीं सो सकता। हे भारत ! जिनके बिगड़ जाने पर योगक्षेम का बिगाड़ हो जाए, उनको देवताओं के समान सदा प्रसन्न रखे और उनके अनुकूल आचरण करे। जो कार्य स्त्रियों, प्रमादियों तथा पतितों के जिम्मे लगाए जाते हैं और जो अनार्यों के जिम्मे लगाए गए हैं, वे सब पूर्णता के लिए संदिग्ध हो जाते हैं। जिन कार्यों में स्त्री, जुआरी और बालक व्यवस्थापक हों, वह सब विवश हो ऐसे डूबते हैं, जैसे नदी में पत्थर की नौका। हे भारत ! जो किसी स्वार्थ में आसक्त नहीं, उन्हें मैं पंडित मानता हूँ। जिसकी जुआरी प्रशंसा करें, जिसकी भाट प्रशंसा करें, जिसकी जल्लाद प्रशंसा करें, वह मनुष्य अधिक दिन नहीं जीता है।

हे भारत ! उन परम धनुर्धर, अमित तेजस्वी पाण्डवों को छोड़ तुमने राज्य भार दुर्योधन पर डाला है, उसे तू शीघ्र ही राज्यच्युत देखेगा जैसे त्रिलोकी से बलि परिभ्रष्ट हुआ था।

(अध्याय—७)

धृतराष्ट्र ने कहा—यह मनुष्य समृद्धि व असमृद्धि लाने में असमर्थ है जैसे सूत्र में पिरोई हुई लकड़ी की पुतली। विधाता ने तो इसे भाग्य के आधीन रखा है। अतः तुम मुझे कुछ और उपदेश दो। मैं सुनने में तत्पर हूँ।

वृद्धि और क्षय

विदुर बोला—हे भारत ! अवसर के प्रतिकूल कहने वाला महाविद्वान् भी बुद्धि शून्य हो तिरस्कार को प्राप्त करता है। कोई दान से, कोई मीठा बोलने से और कोई प्रजादि के बल से प्रिय बनता है किन्तु जो किसी स्वार्थ के बिना प्रिय है, वह तो प्रिय रहता ही है। द्वेष्य मनुष्य न भला, न बुद्धिमान्, न उपकारी और न ही पंडित प्रतीत होता हैं। प्रिय के अशुभ कार्य भी शुभ दीखते हैं और द्वेष्य के पुण्य कार्य भी पाप प्रतीत होते हैं। हे राजन् ! मैंने तो दुर्योधन के बाल्यकाल में ही कहा था कि तू इस एक पुत्र का त्याग कर दे। उसके त्यागने से सौ पुत्रों का मंगल है और न त्यागने से सौ पुत्रों का नाश है। उस वृद्धि को बड़ा नहीं मानना चाहिए जो नाश को लाए। उस क्षय को भी बहुत मानना चाहिए जो वृद्धि को लाए। वह क्षय नहीं जो वृद्धि को लाए। क्षय तो इस संसार में वह है जिससे बहुत नष्ट हो जाए। कोई गुणों से समृद्ध होते हैं, कई धन से। हे धृतराष्ट्र ! धन से समृद्ध किन्तु गुणहीनों का त्याग कर दे।

धृतराष्ट्र बोला—तू सब भविष्य के लिए वृद्धियुक्त और बुद्धि के अनुकूल बात कहता है कि जहाँ धर्म होता है, वहाँ ही विजय होती है। पर मैं पुत्र को त्यागने का साहस नहीं कर सकता।

विदुर बोला—गुण सम्पन्न और विनययुक्त मनुष्य प्राणियों की पीड़ा की भी उपेक्षा नहीं करता। जो मनुष्य सदा दूसरों की निन्दा में लगा और उनके दु:ख की वृद्धि करते हैं, जिनके दर्शन से बदनामी हो, जिनसे धन लेने में महान् दोष हो, जिनके साथ रहने में महान् भय हो, जिनको देने में भी बड़ा भय हो, जो स्वभाव से झगड़ालू, फूट डालने वाले, स्वार्थी, निर्लज्ज, शठ हों, पापी रूप में प्रसिद्ध हों और जिनके साथ रहने में निन्दा हो, और जो अन्य महादोषों से युक्त हों, उनका त्याग कर दे। इस प्रकार सौहार्द के हट जाने से नीच की प्रीति नष्ट हो जाती है। नीच अपवाद के लिए चेष्टा करता है और मित्र के क्षय के लिए यत्न प्रारम्भ करता है। थोड़ा-सा भी अपकार किया जाने पर वह मोहवश शान्ति प्राप्त नहीं करता। ऐसे नीच, नृशंस, असंस्कृतात्मा मनुष्यों के साथ मैत्री को विद्वान् भली प्रकार समझ कर दूर से ही त्याग देते हैं।

सम्बन्धियों के साथ सद्व्यवहार

जो दीन, दरिद्र रोगी सम्बन्धी पर कृपा करता है वह इस लोक में अभ्युदय और मुक्ति रूप कल्याण को प्राप्त करता है। हे राजेन्द्र! कुल वृद्धि का उत्तम अनुष्ठान कर। इससे तू कल्याण युक्त होगा। गुणहीन सम्बन्धियों की भी रक्षा करनी चाहिए और गुणियों का तो कहना ही क्या जो तेरी कृपा के अभिलाषी हैं। राजन्! वीर पाण्डवों पर कृपा कर। उनके निर्वाह के लिए छोटे-छोटे गाँव दे दे। ऐसा होने पर तुझे संसार में यश प्राप्त होगा। हे तात! तुझ वृद्ध को सचमुच अपने पुत्रों का शासन करना चाहिए। कल्याण के अभिलाषी को सम्बन्धियों के साथ सहभोज, सह-वार्तालाप तथा परस्पर एक रस प्रीति से बरतना चाहिए। सद्व्यवहार प्राप्त सम्बन्धी तैरा देते हैं और दुर्व्यवहार प्राप्त डुबो देते हैं। धनसम्पन्न सम्बन्धी को प्राप्त कर भी जो सम्बन्धी दु:खी रहता है, उसका यह पाप, वह सम्पन्न सम्बन्धी ऐसे प्राप्त करता है। जैसे विषाक्त वाण वाले व्याध को मृग प्राप्त करता है।

हे राजन्! उन पाण्डवों अथवा अपने पुत्रों को मरा सुन तुझे पीछे भी पश्चात्ताप होगा, अत: उसका विचार कर। जिस कर्म के कारण पीछे खाट पर बैठ मनुष्य सन्ताप करे, उसे आरम्भ में ही न करे। पाण्डवों को तू उनके पद पर प्रतिष्ठित कर संसार की दृष्टि में निर्दोष हो जाएगा और बुद्धिमानों का पूजनीय बन जाएगा। बुद्धिमानों के उत्तम वचनों को जो विचार कर कार्यों में उद्योग करता है, वह चिरकाल तक यशस्वी होता है। जो विद्वान् पाप परिणाम वाले कार्य को नहीं करता है, वह वृद्धि को प्राप्त होता जाता है। बुद्धिमान् मनुष्य इन छ: दोषों से सदा अपनी रक्षा करे—(१) मद (२) असावधानता (३) वेसमझी (४) अपना इंगित चेष्ठित (५) दुष्ट मन्त्रियों पर विश्वास और (६) अकुशल दूत पर विश्वास। जो इनसे अपने को सावधान रखता है, वह धर्म, अर्थ, काम के आचरण में तत्पर शत्रुओं को वश में करता है।

हितकारी मार्ग

शास्त्र को जाने विना, वृद्धों की सेवा किए बिना, धर्म और अर्थ नहीं जाने जा सकते। समुद्र में गिरा पदार्थ नष्ट, न सुनने वाले के प्रति कहा वचन नष्ट, आत्मसम्मान रहित में शास्त्र नष्ट, और अग्नि के बिना हवन नष्ट होता है। विनय अकीर्ति का, पराक्रम अनर्थ का, क्षमा क्रोध का और आचार-अशोभा का नित्य नाश करने वाले हैं। बुद्धिमानों के सत्संगी, वेद द्वारा विचार व्यवहार करने वाले, धार्मिक, प्रिय दर्शन, मित्रों वाले, उत्तम वाक्यों वाले मित्र की परिपालना करे। मूर्ख, कृतघ्न को बुद्धिमान् तिनकों से ढके कूप के समान त्याग दे, उसमें मैत्री नष्ट हो जाती है। अहंकारी, मूर्ख, भयंकर साहस करने वाले और धर्म रहित पुरुषों के साथ ज्ञानी मैत्री न करे। इन्द्रियों की विषयों में अप्रवृत्ति मृत्यु से भी बढ़कर है किन्तु उनकी अतिमात्र प्रवृत्ति देवों को भी नष्ट कर सकती है। जो मनुष्य अवनीत मनुष्य को सुनीति से दृढ़ मति के मार्ग में लगाकर सुपथ पर लाना चाहता है, वह वीर पुरुष का व्रत पूरा करता है। मन, वचन और कर्म से जिसे बार-बार सेवता है, वही इसे आकृष्ट कर लेता है। अत: शुभ आचरण कहे। मंगल की प्राप्ति (शुभ का सम्पर्क), सहयोग, ज्ञान, उत्थान, ऋजुता और सज्जनों का पुन:-पुन: दर्शन—यह कल्याणकारी है। शोक का अभाव, कार्य में तत्परता— यह लक्ष्मी और शुभ प्राप्ति के मूल हैं। कार्य में तत्पर, शोक रहित मनुष्य, महान् होता और मोक्ष प्राप्त करता है। समर्थ द्वारा सर्वत्र और सर्वदा क्षमा करना अत्यन्त हितकारी है। दुर्बल सबको क्षमा करे और शक्तिमान् धर्म के लिए क्षमा करे। जिसके लिए अर्थ और अनर्थ एक सदृश हैं, उसके लिए क्षमा सदा हितकारिणी है। सरलता से युक्त और सरलता के कारण लज्जाशील मनुष्य को दुर्बल मानते हुए मूर्ख लोग दबाने की और तिरस्कार करने की चेष्टा करते हैं।

अपने जैसा सबध साथ व्यवहार

यह लक्ष्मी न तो अत्यन्त गुणवानों और न ही सर्वथा निर्गुणों में अनुरक्त होती है। न यह गुणों की कामना करती है और न ही यह निर्गुणता से रीझती है। लक्ष्मी पगली है, अभिमान के कारण अन्धी है, अत: यह कठिनता से टिकती है। अधर्म से कमाये धन द्वारा जिसकी अन्त्येष्टि की जाती है, धन की बुरी कमाई के कारण मरने के पश्चात् वह उसका फल नहीं प्राप्त करता, अर्थात्, धन की कमाई नेक साधनों से होनी चाहिए। उद्यम, संयम, दक्षता, प्रमाद शून्यता, धृति, स्मृति, सोच-विचार के साथ कार्यारम्भ —इन्हें समृद्धि का मूल समझ। तपस्वियों का बल तप, ब्रह्मवेत्ताओं का बल ब्रह्म, दुष्टों का बल हिंसा और गुणवानों का बल क्षमा है। जो अपने प्रतिकूल है—वह दूसरों के प्रति न करे। संक्षेप से यही धर्म है। शेष तो कामना से सत्कर्म करने की इच्छा में प्रवृत्त होता है। अक्रोध से क्रोध को, सज्जनता द्वारा दुष्टता को, कंजूसी को दान द्वारा और सत्य द्वारा असत्य को जीते। बड़ों को नमस्कार करने वाले, वृद्धों का सत्संग करने वाले व्यक्ति को चार फल प्राप्त होते हैं—कीर्ति, आयु, यश और बल। जो धन, (कार्य की सिद्धि) अत्यन्त क्लेश अथवा धर्म के उल्लंघन अथवा शत्रु की हत्या से प्राप्त

हों, उनकी इच्छा मत कर। विद्या रहित मनुष्य शोचनीय है, सन्तान न हो ऐसा मैथुन शोचनीय है, भूखी प्रजाएँ शोचनीय हैं, राजा से रहित राष्ट्र भी शोचनीय है। देह-धारियों के लिए चलना बुढ़ापा है, पर्वतों के लिए जल जरा (घातक) है—क्योंकि मिट्टी, पत्थर आदि बहा ले जाता है—स्त्रियों के लिए असम्भोग जरा है और मन के लिए वाग् वाण जरा है।

इच्छाओं पर संयम आवश्यक

सोये रहने से निद्रा को नहीं जीता जा सकता, काम से स्त्रियों को नहीं जीत सकता, इंधन से अग्नि को नहीं जीत सकता, पीने से शराब को नहीं जीत सकता। इनसे तो यह सब दोष बढ़ते हैं। दान द्वारा जिसने मित्र को वश में किया है, युद्ध में जिसने शत्रु को जीत लिया है, अन्नपान द्वारा स्त्री जिसके वश में है, उसका जीवन सफल है। हज़ारों वाले भी जीते हैं, और सैकड़ों वाले भी जीते हैं। हे धृतराष्ट्र ! इच्छा को वश में कर किसी प्रकार भी जिया जा सकता है। भू-मण्डल में जो चावल, जौ (अन्न) सोना (धन) पशु तथा स्त्रियाँ हैं, वह सब एक लालची के लिए भी पर्याप्त नहीं हैं। इसलिए बुद्धिमान् यह जानकर मोहित नहीं होता।

पाण्डवों के साथ न्याय करो

हे राजन् ! तुम्हें फिर करता हूँ। कौरव-पाण्डवों के साथ एक-सा व्यवहार कर। यदि अपने पुत्रों और पाण्डवों के प्रति तेरी सम बुद्धि है तो उसका इस समय प्रमाण दे।

(अध्याय—८)

विद्यार्थियों के कर्त्तव्य

विदुर ने कहा—सज्जनों से प्रेरित हो, अनासक्त, विलम्ब न करता हुआ, यथा-शक्ति जो कार्य करता है, उसे शीघ्र यश प्राप्त होता है क्योंकि प्रसन्न हुआ सज्जन सुख देने में समर्थ होता है। अधर्मयुक्त महान् अर्थ को मोह के विना जो त्याग देता है वह महान् दुःखों से मुक्त हो ऐसे सुखपूर्वक सोता है जैसे पुरानी कैंचुली को छोड़ सर्प। बढ़-चढ़कर झूठ बोलना, राजा तक चुगली पहुँचाना, गुरु को झूठी निन्दा—ब्रह्म हत्या के समान यह पाप है। निन्दा तो एकदम मृत्यु है, अत्युक्तिश्री की हत्या है, सेवा न करना, जल्दबाजी और अपनी स्तुति—विद्या के ये तीन शत्रु हैं। आलस्य, मद, मोह, चपलता, गपशप, अभियान और त्याग का अभाव-- ये सात विद्यार्थियों के दोष हैं। सुखाभिलाषी को विद्या कैसे ? और विद्यार्थी को सुख कैसे ? सुखार्थी विद्या छोड़े अथवा विद्यार्थी सुख छोड़े। अग्नि लकड़ियों से, समुद्र नदियों से, मृत्यु प्राणियों से और स्त्रियाँ पुरुषों से—यह सब तृप्त नहीं होते।

धर्म का त्याग कभी न करे

हे राजन ! आशा धैर्य को, मृत्यु समृद्धि को, क्रोध शोभा को, कंजूसी यश को—मार देने वाले हैं। असावधानता पशुओं को मार देती है, एक क्रुद्ध ब्राह्मण राष्ट्र को मार देता है। बकरियाँ, काँसी, चाँदी, मधु, मीठा बोलने वाली कोकिल, वेदवित्, संकट ग्रस्त कुलीन, वृद्धि सम्बन्धी—यह सदा तेरे घर में नियम से रहें। हे भारत ! मनु ने कहा है कि विद्वान् ब्राह्मणों की पूजा और अतिथियों की सेवा के लिए यह पदार्थ घर में सदा रखने चाहिए, बकरी, बैल, चन्दन, वीणा, दर्पण, मधु, घृत, लोहादि तीक्ष्ण शस्यास्त्र, स्वर्णनाभ शंख (दक्षिणावर्त शंख) गोरोचन, और अन्य। हे तात ! यह तुझे सबसे बढ़कर महाविशिष्ट, पुण्य प्राप्ति कराने वाली बात कहता हूँ—न काम के वश हो, न लोभ न भय, और न लोभ वश, और न जीवन को बचाने के लिए भी धर्म का कभी त्याग करे क्योंकि धर्म नित्य है, सुख-दु:ख तो अनित्य है। जीव नित्य है किन्तु इसके साधन शरीरादि अनित्य है, अनित्यों को छोड़ नित्य में प्रतिष्ठित हो। तू सन्तोष कर क्योंकि लाभ सन्तोष के ही आधीन है। तू महाबलवान्, महातेजस्वी, धनधान्य से पूर्ण पृथ्वी का राज्य करके, राज्यों तथा विपुल भोगों को त्याग कर, मृत्यु के वश में गए राजाओं को देख, आत्मा में विचार कर। हे राजन् ! मनुष्य दु:ख उठाकर पाले हुए पुत्र के मरने पर उसे उठाकर अपने घर से बाहर ले जाते हैं। बाल खोल कर करुण-क्रन्दन करते हैं और उस मृत को काष्ठ की भाँति चिता के बीच में फेंक देते हैं। मरे हुए का धन कोई अन्य खाता है, पक्षी तथा अग्नि उसके शरीर के धातुओं को खाते हैं। वह पुण्य और पाप—दो से लिपटा परलोक को जाता है। हे तात ! जैसे पक्षी पुष्प रहित तथा फल रहित वृक्षों को छोड़ देते हैं, वैसे ही सम्बन्धी मित्र और पुत्र इसे छोड़ घर लौट जाते हैं।

धर्म मार्ग का स्वरूप

अग्नि में फेंके हुए पुरुष का अपना किया हुआ कर्म, अनुगमन करता है। अत: मनुष्य शनै:-शनै: धर्म का संचय करे। इस लोक से ऊपर तथा इस लोक और परलोक के नीचे महान् अन्धकार ही स्थित है। इन्द्रियों के उस महामोहक अन्धकार को समझो। हे राजन् ! तुझे वह अन्धकार न मिले। हे भारत ! आत्मा पवित्र तीर्थ वाली नदी है, सत्य उसका जल है, धृति उसके किनारे, दया लहरें हैं। उसमें स्नान करके पुण्य कर्मा पवित्र हो जाता है क्योंकि पवित्र आत्मा नित्य लोभ रहित होता है। काम, क्रोध रूपी ग्रहों (मगरमच्छ आदि) वाली, पाँच इन्द्रियाँ रूपी जल वाली नदी को, धैर्य रूपी नौका बनाकर जन्म-मृत्यु के संकटों को तर जा। बुद्धि में बड़े, धर्म में बड़े, विद्या और आयु में भी अपने बड़े बन्धु को पूजकर, प्रसन्न कर उनसे कर्त्तव्य के विषय में जो पूछता रहता है, वह कभी चूकता नहीं है। धैर्य से शिश्नोदर की रक्षा करे—अर्थात् खानदान और भोग में न फँसे, हाथ-पैर की आँख से रक्षा करे—अर्थात्, देखकर हाथ-पाँव चलाए, आँख-कान की मन से और मन, वाणी की कर्म से रक्षा करें—अर्थात् आँख कान पर मन का अंकुश रखे और मन तथा वाणी पर नियन्त्रण रखे। नित्य जल को पास रखने

वाला, अथवा नित्य स्थान करने वाला, नित्य यज्ञोपवीत धारण करने वाला, सत्य बोलता हुआ, गुरु के लिए श्रेष्ठ कर्म करने वाला, नित्य स्वाध्याय करने वाला, पतित का अन्न न लेने वाला, ब्राह्मण ब्रह्मलोक से च्युत नहीं होता, अर्थात्, अवश्य मुक्ति पाता है।

पाप निवारण के उपाय

वेद को पढ़कर और अग्नियों का सब ओर से विस्तार कर, यज्ञ, प्रजापालन शास्त्रों से अपने आत्मा को पवित्र करने वाला, जिसने गौ और पृथ्वी एवं ज्ञान और ब्राह्मण की रक्षा के निमित्त संग्राम में मारे जाने पर क्षत्रिय सुख अथवा मुक्ति के साधन प्राप्त करता है। वैश्य वेद पढ़कर और समय पर धन द्वारा ब्राह्मण, क्षत्रिय और स्वाश्रितों का सत्कार करके त्रिअग्नि (गार्हपत्य, अन्वाहार्य और दक्षिणाग्नि) के पवित्र, शुभ धूम्र को सूंघकर (अर्थात् यज्ञ करता हुआ) आनन्द की स्थिति में दिव्य सुखों को भोगता है। शूद्र क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—इनकी युक्ति से सेवा करता हुआ इनके प्रसन्न होने पर वह दग्ध पाप हुआ, देह त्याग कर स्वर्ग के सुखो को भोगता है। चारों वर्णों का यह धर्म मैंने तुम्हें कह दिया है। अब उसके पश्चात् उसके कारण कहता हूँ। उसे समझो। पाण्डु पुत्र युधिष्ठिर क्षात्र धर्म से रहित हो रहा है—क्योंकि राज्य का अधिकारी होता हुआ भी राज्यच्युत हो रहा है। हे राजन्! तू उसे राजधर्म नियुक्त कर।

धृतराष्ट्र की कुमति

धृतराष्ट्र बोला—जैसा तू मुझे नित्य उपदेश करता है, यह तेरा सारा कथन सत्य है। हे सौम्य! जैसा तू कहता है। मेरा विचार भी उसके अनुकूल ही है। पाण्डवों के प्रति सदा अनुकूल हुई भी वह मेरी बुद्धि, दुर्योधन का संग होने पर पलट जाती है। कोई भी प्राणी भाग्य का उल्लंघन नहीं कर सकता। मैं तो भाग्य को निश्चित मानता हूँ और पुरुषार्थ को निरर्थक समझता हूँ।

कणिक नीति

धृतराष्ट्र की चिन्ता—कणिक से प्रश्न

पाण्डवों के यश और बल का वृत्तान्त सुन धृतराष्ट्र को बड़ी चिन्ता हुई और उसने राजनीति और अर्थशास्त्र के विद्वान्, उत्तम मंत्र के ज्ञाता मंत्रि प्रवर कणिक को बुलाकर कहा कि—पाण्डवों की दिनों-दिन उन्नति और ख्याति को सुन मुझे उनसे डाह हो रही है। तुम निश्चय करके बताओ कि मुझे उनसे संधि करनी चाहिए या विग्रह। मैं तुम्हारी बात मानूंगा। कणिक ने राजा के वचन से मन-ही-मन प्रसन्न हो राजनीति के सिद्धान्त का परिचय देने वाले तीक्ष्ण शब्दों को इस प्रकार कहा—

"राजन् आप मेरी बात ध्यान से सुनिए। इसे सुनकर आप मुझ पर क्रोध न करना।"

कणिक का उत्तर—शत्रु के प्रति व्यवहार

"राजा को सर्वदा दण्ड देने के लिए उद्यत रहना चाहिए और सदा ही पुरुषार्थ प्रकट करना चाहिए। राजा अपनी दुर्बलता प्रकट न होने दे परन्तु दूसरों के छिद्रों पर सदा दृष्टि रखे और शत्रु की निर्बलता पता चलने पर उस पर आक्रमण कर दे। जो सदा दण्ड देने के लिए उद्यत रहता है उससे प्रजाजन बहुत डरते हैं। इसलिए सब कार्य दण्ड द्वारा ही सिद्ध करे। राजा सावधान रहे कि शत्रु उसकी निर्बलता को न देख सके। यदि शत्रु की कमजोरी पता लग जाए तो उस पर अवश्य आक्रमण कर दे। जैसे कछुआ अपने अंगों की रक्षा करता है ऐसे ही राजा अपने विविध अंगों की रक्षा करता हुआ अपनी निर्बलता छिपाए रखे। प्रारम्भ किए कार्य को पूरा किए बिना कभी न छोड़े क्योंकि शरीर में गड़ा हुआ काँटा यदि आधा टूट कर रह जाए तो बहुत दिनों तक पीड़ा देता है। अपना अनिष्ट करने वाले शत्रु का बध कर दिया जाए, नीतिज्ञ इसी की प्रशंसा करते हैं। अत्यन्त पराक्रमी शत्रु को भी आपत्ति में पड़ा देख सुगमता से नष्ट कर दे। इसी प्रकार जो अच्छी प्रकार युद्ध करने वाला शत्रु है, उसे भी आपत्ति काल

में अनायास ही मार भगाए। आपत्ति के समय शत्रु का संहार अवश्य ही करे। उस समय उसके सौहार्द आदि का विचार कदापि न करे, शत्रु दुर्बल हो, तव भी उसकी उपेक्षा न करे।

समय के अनुसार कार्य

जैसे थोड़ी-सी भी आग ईंधन का सहारा मिलते ही समूचे वन को जला देती है, उसी प्रकार छोटा शत्रु भी दुर्ग आदि का प्रबल आश्रय ले विनाशकारी बन जाता है। अन्धा बनने का अवसर आने पर अन्धा बन जाए—अर्थात्, अपनी असमर्थता के समय शत्रु के दोषों को न देखे। उस समय सब ओर से धिक्कार और निन्दा मिलने पर भी उसे अनसुनी कर दे, अर्थात्, कान बन्द कर बहरा बन जाए। ऐसे समय में अपने आपको तिनके समान बना दे, अर्थात् शत्रु की दृष्टि में सर्वथा दीन-हीन एवं असमर्थ बन जाए पर व्याध की भाँति सोए—जैसे व्याध झूठे ही नींद का वहाना कर सो जाता है और जब मृग विश्वस्त हो आस-पास चरने लगते हैं, तव उठकर वाणों से घायल कर देता है, उसी प्रकार शत्रु को मारने का अवसर देखते हुए ही अपने स्वरूप और मनोभाव को छिपाकर असमर्थ पुरुषों का-सा व्यवहार करे। इस प्रकार कपटपूर्ण वर्त्ताव से वश में आए शत्रु को साम आदि उपायों से विश्वास उत्पन्न कर मार डाले। "यह मेरी शरण में आया है।" यह सोच उसके प्रति दया नहीं दिखानी चाहिए। शत्रु को मार देने से ही राजा निर्भय हो सकता है। यदि शत्रु मारा नहीं गया तो उससे सदा ही भय बना रहता है।

तीन शक्तियाँ, पाँच प्रकृति और सप्त-वर्ग

जो सहजशत्रु है, उसे मुँहमाँगी वस्तु देकर, दान के द्वारा विश्वास उत्पन्न कर मार डाले। इसी प्रकार जो पहले का अपकारी शत्रु हो और पीछे सेवक बन गया हो, उसे भी जीवित न छोड़े। शत्रु के ऐश्वर्य, उत्साह और मंत्र—तीनों शक्तियों का नाश कर दे। शत्रु के अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, कोष और सेना—पाँचों प्रकृतियों का नाश कर दे और साम, दान, भेद, दण्ड, उद्बन्धन, विष प्रयोग और आग लगाना—इस सप्त वर्ग से शत्रु को वश में करे या दबा दे। पहले तो सदा शत्रु पक्ष के मूल का ही उच्छेद कर डाले। फिर उसके सहायकों और शत्रु पक्ष से सम्बद्ध सभी का संहार कर दे। यदि मूल आधार नष्ट हो जाए तो उसके आश्रित जीवन धारण करने वाले सभी शत्रु स्वत: नष्ट हो जाते हैं। वृक्ष की जड़ कट जाने पर शाखाएँ कैसे रह सकती हैं? राजा सदा शत्रु की गतिविधि को जानने के लिए एकाग्र रहे। अपने राज्य के सभी अंगों को गुप्त रखे। सदा शत्रु की कमजोरी पर दृष्टि रखे और उससे सदा सतर्क रहे। अग्निहोत्र और यज्ञ करके जटा और गेरुए वस्त्र धारण कर पहले लोगों में विश्वास उत्पन्न करे। फिर अवसर देख भेड़िए की भाँति शत्रु पर हमला कर उसे नष्ट कर दे। कार्य सिद्धि के लिए शौच-सदाचार आदि का पालन एक प्रकार से लोगों का आकृष्ट करने का साधन कहा गया है। फलों से लदी वृक्ष की शाखा को अपनी ओर कुछ झुका कर ही

मनुष्य उसके पके फलों को तोड़े। लोक में विद्वान् पुरुषों का यह सारा आयोजन ही अभीष्ट की सिद्धि के लिए ही होता है। जब तक समय अनुकूल न हो, तब तक शत्रु को कन्धे पर बिठाकर यदि ढोना पड़े, तो अवश्य ढोए। पर, जब अपने अनुकूल समय आ जाए तब उसे उसी प्रकार नष्ट कर दे, जैसे घड़े को पत्थर पर फोड़ दिया जाता है। शत्रु बहुत दीनता पूर्ण वचन बोले तो भी उसे जीवित नहीं छोड़ना चाहिए। दया नहीं करनी और अपकारी शत्रु को मार ही डालना चाहिए। साम, दान, भेद और दण्ड—सभी उपायों द्वारा शत्रु को मिटा ही दे।

वनवासी गीदड़ की कथा

धृतराष्ट्र ने पूछा—कणिक ! साम, दान, भेद अथवा दण्ड के द्वारा शत्रु का नाश कैसे किया जा सकता है, यह मुझे बताइए।

कणिक ने कहा—हे राजन् ! इस विषय में नीतिशास्त्र के तत्त्व को जानने वाले एक वनवासी गीदड़ का प्राचीन वृत्तान्त सुनाता हूँ।

एक वन में कोई बड़ा बुद्धिमान् और स्वार्थ साधन में कुशल गीदड़ अपने चार मित्रों—बाघ, चूहा, भेड़िया और नेवले—के साथ निवास करता था। एक दिन उन सबने हरिणों के एक सरदार को देखा जो बड़ा बलवान् था। उसे पकड़ने में जब वे सब सफल न हो सके, तब सबने मिलकर सलाह की। गीदड़ बोला—"भाई बाघ ! तुमने इस हरिण को मारने का कई बार यत्न किया पर यह बड़े वेग से दौड़ने वाला युवा और बुद्धिमान् होने से पकड़ में नहीं आ रहा। मेरी राय है जब यह हरिण सो रहा हो, उस समय यह चूहा इसके दोनों पैरों को काट खाए। तब यह तेज दौड़ नहीं सकेगा। इस हालत में बाघ उसे पकड़ ले। फिर तो हम सब प्रसन्नचित्त हो इसे खा सकेंगे।"

गीदड़ की कूटनीति

गीदड़ की यह बात सुनकर सबने सावधान हो ऐसा ही किया। चूहे द्वारा काटे हुए पैरों से लड़खड़ाते मृग को बाघ ने तत्काल ही मार दिया। पृथ्वी पर हरिण के शरीर को निश्चेष्ट पड़ा देख गीदड़ ने कहा—आप सबका कल्याण हो। आप सब स्नान करके आए। तब तक मैं इसकी रखवाली करता हूँ।

गीदड़ के कहने से चारों साथी नदी में स्नान के लिए चले गए। इधर यह गीदड़ किसी चिन्ता में निमग्न हो वहीं खड़ा रहा। इतने में महाबली बाघ स्नान करके सबसे पहले वहाँ वापस आ गया। उसने देखा—गीदड़ का चित्त चिन्ता से व्याकुल हो रहा है।

बाघ को भगा दिया

बाघ ने पूछा, महामते ! किस चिन्ता में पड़े हो ? हम सब में तुम ही सबसे अधिक बुद्धिमान् हो। आज इस हरिण का मांस खाकर हम सब मौज करेंगे।

गीदड़ बोला—महाबाहो ! चूहे ने तुम्हारे विषय में जो कुछ कहा है, उसे तुम सुनो । वह कहता था, "मृगों के राजा बाघ के बल को धिक्कार है । इस मृग को तो मैंने मारा है । मेरे बाहुबल का आश्रय लेकर आज बाघ अपनी भूख मिटाएगा ।" चूहे ने इस प्रकार घमण्डभरी बातें कही हैं । उसकी सहायता से प्राप्त इस भोजन को ग्रहण करना मुझे तो अच्छा नहीं लगता ।"

बाघ ने कहा—"यदि वह ऐसी बात कहता है, तब तो उसने मेरी आँखें खोल दीं—मुझे सचेत कर दिया । आज से मैं अपने ही बाहुबल से ही वन जन्तुओं का वध किया करूँगा और उन्हीं का माँस खाऊँगा ।" इस प्रकार बाघ वन में चला गया । इसी समय चूहा भी स्नान कर वहाँ आ पहुँचा । उसे देख गीदड़ ने कहा —"तुम्हारा भला हो । नेवले ने यहाँ जो बात कही है, उसे सुन लो ।"

चूहा बिल में घुस गया

वह कह रहा था कि "बाघ के काटने से इस हरिण का माँस जहरीला हो गया है, मैं तो इसे खाऊँगा नहीं, मुझे यह पसन्द नहीं है । यदि तुम्हारी अनुमति हो तो मैं चूहे ही को खा लूँ ।"

यह बात सुनते ही चूहा अत्यन्त भयभीत हो बिल में घुस गया । तत्पश्चात् भेड़िया भी स्नान करके वहाँ आ पहुँचा ।

भेड़िये को बाघ का डर

उसके आने पर गीदड़ ने कहा—"भेड़िया भाई ! आज बाघ तुम पर बहुत नाराज़ हो गया है, तुम्हारी अब खैर नहीं । वह अभी बाघिन को लेकर यहाँ आ रहा है । इसलिए अब तुम्हें जो उचित लगे, वह कर लो ।" गीदड़ के यह शब्द सुनते ही कच्चा माँस खाने वाला भेड़िया दुम दबा कर भाग गया । इतने में नेवला भी यहाँ आ पहुँचा ।

नेवले को गीदड़ की चुनौती

गीदड़ ने उस नेवले से कहा, "ओ नेवले ! मैंने अपने बाहुबल से उन तीनों को परास्त किया है । वे हार मानकर अन्यत्र चले गए हैं । यदि तुझ में हिम्मत हो तो पहले मुझ से लड़ ले, फिर इच्छानुसार माँस खाना ।"

नेवले ने कहा, "जब बाघ, भेड़िया और बुद्धिमान् चूहा —यह सभी वीर तुमसे परास्त हो गए, तब तुम तो वीर शिरोमणि हो ! मैं भी तुम्हारे साथ युद्ध नहीं कर सकता ।" तब, नेवला भी चला गया ।

कणिक ने कहा—इस प्रकार उन सबके चले जाने पर अपनी युक्ति में सफल हो गीदड़ का हृदय हर्ष से खिल उठा । उसने अकेले ही सारा माँस खा लिया ।

राजन् ! ऐसा ही आचरण करने वाला राजा सदा सुखी रहता और उन्नत होता है । डरपोक को भय दिखाकर फोड़ ले और अपने से अधिक शूरवीर को हाथ जोड़ वश में कर ले । लोभी को धन देकर तथा बराबर वाले और कमज़ोर को पराक्रम से

वश में करे। इस प्रकार आपसे नीति युक्त बर्ताव का वर्णन किया गया। अब दूसरी बातें सुनिए।

अभिमानी गुरु को भी दण्ड दें

पुत्र, मित्र, भाई, पिता व गुरु—कोई भी क्यों न हो, जो शत्रु के स्थान पर आ जाएँ, शत्रुवत् बर्ताव करने लगें तो उन्हें वैभव चाहने वाला राजा अवश्य मार दे। सौगन्ध खाकर, धन अथवा जहर देकर या धोखे से भी शत्रु को मार डाले। किसी तरह भी उसकी उपेक्षा न करे। यदि दोनों राजा समान रूप से विजय के लिए यत्नशील हों और उनकी जीत सन्देहास्पद जान पड़ती हो तो उनमें भी जो मेरे इस नीतिपूर्ण कथन पर श्रद्धा-विश्वास रखता है, वही उन्नति को प्राप्त होता है। यदि गुरु भी घमण्ड में आकर कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को न जानता हो तथा बुरे मार्ग पर चलता हो तो उसे भी दण्ड देना उचित समझा जाता है।

शत्रु को अपने जाल में फँसाए

मन में क्रोध भरा हो तो भी ऊपर से क्रोध शून्य बना रहे और मुस्करा कर बातचीत करे। कभी क्रोध में आकर किसी दूसरे का तिरस्कार न करे। शत्रु पर प्रहार करते समय और प्रहार करने से पहले भी उससे मीठे वचन बोले। शत्रु को मारकर भी उसके प्रति दया दिखाए, उसके लिए शोक करे, रोये तथा आँसू बहाए। शत्रु को समझा-बुझाकर धर्म बताकर, धन देकर और सद्‌व्यवहार करके आश्वासन दे, अपने प्रति उसके मन में विश्वास पैदा करे। फिर समय आने पर ज्योंही वह मार्ग से विचलित हो, त्योंही उस पर प्रहार करे। धर्म के आचरण का ढौंग करने से घोर अपराध करने वाले का दोष भी उसी प्रकार ढक जाता है, जैसे पर्वत काले मेघों की घटा से ढक जाता है। जिसे शीघ्र मार डालने की इच्छा हो, उसके घर में आग लगा दे। धन-हीनों, नास्तिकों और चोरों को अपने राज्य में न रहने दे।

किसी पर बिना सोचे विश्वास न करे

शत्रु के आने पर उठकर अगवानी करे, आसन और भोजन दे और कोई प्रिय वस्तु भेंट करे। ऐसे बार्तावों से अपने प्रति जिसका पूर्ण विश्वास हो गया हो, उसे भी अपने लाभ के लिए मारने में संकोच न करे। सर्प की भाँति तीखे दाँतों से काटे जिससे शत्रु फिर उठकर बैठ न सके। जिनसे भय प्राप्त होने का सन्देह न हो, उनसे भी चौकन्ना ही रहे और जिनसे भय की आशंका हो, उनकी ओर से तो सब प्रकार से सावधान रहे। जिनसे भय की शंका नहीं है, ऐसे लोगों से यदि भय उत्पन्न होता है तो वह मूलोच्छेद कर देता है। जो विश्वासपात्र नहीं है, उस पर कभी विश्वास न करे, परन्तु जो विश्वासपात्र है, उस पर भी अति विश्वास न करे, क्योंकि अति विश्वास से उत्पन्न होने वाला भय राजा की जड़मूल का भी नाश कर डालता है। भली-भाँति जाँच-परख कर अपने तथा शत्रु के राज्य में गुप्तचर रखे। शत्रु के राज्य में ऐसे गुप्तचरों को

नियुक्त करे जो पाखण्ड वेश-धारी अथवा तपस्वी आदि हो। उद्यान, घूमने-फिरने के स्थान, देवालय, मद्यपान के अड्डे, गली या सड़क, सम्पूर्ण तीर्थस्थान, पर्वत, वन, नदी तथा जहाँ मनुष्यों की भीड़ इकट्ठी होती हो, उन सभी स्थानों में अपने गुप्तचरों को घुमाता रहे।

पूर्ण छल-कपट का व्यवहार

राजा बातचीत में अत्यन्त विनयशील हो पर हृदय छुरे के समान तीखा बनाए रखे। अत्यन्त भयानक कर्म करने के लिए उद्यत हो तो भी मुस्कराकर ही वार्तालाप करे। अवसर देखकर हाथ जोड़ना, शपथ खाना, आश्वासन देना, पैरों पर मस्तक रख प्रणाम करना, और आशा बंधाना—यह सब ऐश्वर्य-प्राप्ति की इच्छा वाले राजा के कर्त्तव्य हैं। नीतिज्ञ राजा ऐसे वृक्ष के समान रहे जिसमें फूल तो खूब लगे हों पर फल न हों (वह बातों से लोगों को फल की आशा दिलाए, उनकी पूर्ति न करे)। फल लगने पर भी उस पर चढ़ना अत्यन्त कठिन हो, अर्थात्, लोगों की स्वार्थ-सिद्धि में वह विघ्न डाले या विलम्ब करे। वह रहे तो कच्चा पर दीखे पक्के के समान, अर्थात्, अपने स्वार्थ साधकों की दुराशा को पूर्ण न होने दे। कभी स्वयं जीर्ण न हो, अर्थात्, अपना धन खर्च करके शत्रुओं का पोषण करते हुए भी अपने आपको निर्धन न बना दे।

धर्म-अर्थ-काम में सामंजस्य

धर्म, अर्थ और काम—इन त्रिविध पुरुषार्थों के सेवन में तीन प्रकार की बाधाएँ उपस्थित होती हैं। उसी प्रकार उनके तीन प्रकार के फल होते हैं। धर्म का फल है अर्थ एवं काम अर्थात् भोग की प्राप्ति। अर्थ का फल है धर्म का सेवन एवं भोग की प्राप्ति, और काम अर्थात् भोग का फल है—इन्द्रिय तृप्ति। इन तीनों प्रकार के फलों को शुभ (वरणीय) जानना चाहिए परन्तु (उक्त तीनों प्रकार की) बाधाओं से यत्नपूर्वक बचना चाहिए, ताकि तीनों एक-दूसरे के बाधक न हों, अर्थात्, जीवन में तीनों का सामंजस्य ही सुखदायक है। धर्म अनुष्ठान करने वाले धर्मात्मा पुरुष के धर्म में काम और अर्थ—इन दोनों के द्वारा प्राप्त होने वाली पीड़ा, बाधा पहुँचाती है। इसी प्रकार अर्थ लोभी के अर्थ में और अत्यन्त भोगासक्त के काम में भी शेष दो वर्गों द्वारा प्राप्त होने वाली पीड़ा, बाधा उपस्थित करती है।

गुप्तचरों से व्यवहार

राजा अपने हृदय से अहंकार को निकाल दे, चित्त को एकाग्र रखे। सबसे मधुर बोले। दूसरों के दोष प्रकाशित न करे। सब विषयों पर दृष्टि रखे और शुद्ध चित्त हो द्विजों के साथ बैठे, मंत्रणा करे। राजा यदि संकट में हो तो कोमल या भयंकर —जिस किसी भी कर्म के द्वारा उस दुरावस्था से अपना उद्धार करे, फिर समर्थ होने पर धर्म का आचरण करे। कष्ट सहे बिना मनुष्य कल्याण का दर्शन नहीं कर सकता। प्राण संकट में डालकर भी यदि वह पुनः जीवित रह जाता है तभी अपना भला देख

सकता है। जिसकी बुद्धि संकट में पड़ शोकाभिभूत हो जाए, उसे भूतकाल की बातें व इतिहास सुनाकर सांत्वना दे। जिसकी बुद्धि अच्छी नहीं है, उसे भविष्य में लाभ की आशा दिखाकर तथा विद्वान् को तत्काल ही धन आदि देकर शान्त करे। जैसे वृक्ष की ऊपर की शाखा पर सोया हुआ मनुष्य जब गिरता है, तब होश में आता है, इसी प्रकार जो अपने शत्रु के साथ संधि करके कृतकृत्य की भाँति निश्चिन्त हो जाता (सोता) है, वह शत्रु से धोखा खाने पर ही सचेत होता है। राजा को चाहिए कि वह दूसरों के दोष प्रकाशित न कर अपनी गुप्त मंत्रणा को सदा छिपाए रखने की चेष्टा करे। दूसरों के गुप्तचरों से तो अपनी क्रोध, हर्ष आदि को सूचित करने वाले वाली चेष्टा तक को गुप्त रखे परन्तु अपने गुप्तचरों से भी अपनी गुप्त मंत्रणा की रक्षा करे। राजा मछली मारों की भाँति दूसरों के मर्म विदीर्ण किए बिना, क्रूर कर्म किए बिना तथा बहुतों के प्राण लिए बिना, बड़ी भारी सम्पत्ति नहीं पाता। जब शत्रु की सेना दुर्बल, रोगग्रस्त, जल या कीचड़ में फंसी, भूख-प्यास में पिड़ित और सब ओर से विश्वस्त हो निश्चेष्ट पड़ी हो, उस समय उस पर प्रहार करना चाहिए। धनवान् मनुष्य किसी धनी के पास नहीं जाता। जिसके सब काम पूरे हो चुके हैं, वह किसी के साथ मैत्री निभाने की चेष्ठा नहीं करता। अतः अपने द्वारा सिद्ध होने वाले दूसरों के कार्य ही अधूरे रख दे, जिससे अपने कार्य के लिए उनका आना-जाना बना रहे। ऐश्वर्य की इच्छा वाले राजा को दूसरों के दोष न बताकर सदा आवश्यक सामग्री के संग्रह और शत्रुओं के साथ विग्रह (युद्ध) करने का प्रयत्न करते रहना चाहिए, साथ ही बलपूर्वक अपने उत्साह को बनाए रखना चाहिए। मित्र और शत्रु, किसी को भी यह पता न चले कि राजा कब और क्या करना चाहता है ? कार्य के आरम्भ तथा समाप्त होने पर ही सब लोग उसे देखें।

शत्रु को कभी छोटा न समझे

जब तक अपने ऊपर भय न आया हो, तब तक डरे हुए की भाँति उसे टालने का प्रयत्न करना चाहिए। परन्तु जब भय को सामने आता देखे, तब निडर हो शत्रु पर प्रहार करना चाहिए। जो मनुष्य दण्ड के द्वारा वश में किए शत्रु पर दया करता है, वह मौत को ही अपनाता है—ठीक उसी तरह जैसे खच्चरी गर्भ के रूप में अपनी मृत्यु को ही उदर में धारण करती है। जो कार्य भविष्य में करना हो उस पर बुद्धि से विचार करे और विचारने के पश्चात् तदनुकूल व्यवस्था करे। इसी प्रकार जो कार्य सामने उपस्थित हो उसे भी बुद्धि से विचार कर करे। बुद्धि से निश्चय किए बिना किसी कार्य या उद्देश्य का परित्याग न करे। ऐश्वर्य की इच्छा रखने वाले राजा को देश और काल का विभाग करके ही यत्नपूर्वक उत्साह एवं उद्यम करना चाहिए। इसी प्रकार प्रारब्ध, कर्म और धर्म, अर्थ, काम का सेवन करना चाहिए। देश और काल को ही कल्याण के प्रधान हेतु समझना चाहिए। यही नीतिशास्त्र का सिद्धान्त है। छोटे शत्रु की भी उपेक्षा कर दी जाए, तो वह ताड़ के वृक्ष की भाँति जड़ जमा लेता है और घने वन में छोड़ी हुई आग की भाँति शीघ्र ही महान् विनाशकारी बन

जाता है। जो मनुष्य थोड़ी-सी अग्नि की भाँति अपने आप को धीरे-धीरे प्रज्वलित या समृद्ध करता रहता है, वह एक दिन बहुत बड़ी राशि को भी अपना ग्रास बना लेता है।

मनुकूल साधनों का संग्रह

यदि किसी को किसी बात की आशा दे तो उसे शीघ्र पूरा न कर दीर्घकाल तक लटकाए रखे। जब उसे पूर्ण करने का समय आए, तब उसमें कोई विघ्न डाल दे। इस प्रकार समय की अवधि को बढ़ा दे। उस विघ्न के पड़ने में कोई उपयुक्त कारण बता दे और उस कारण को भी युक्तियों से सिद्ध कर दे।

लोहें का बना छुरा शान पर चढ़ाकर तेज किया जाता है और चमड़े के सम्पुट में छिपाकर रखा जाता है। समय आने पर सिर आदि समस्त अंगों को काट देता है। इसी प्रकार राजा अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा कर अपने मनोभाव को छिपाते हुए अनुकूल साधनों का संग्रह करता रहे और छुरे की तरह तीक्ष्ण या निर्दय होकर शत्रुओं के प्राण ले ले—मूलोच्छेद कर डाले।

पाण्डवों से अपनी रक्षा करो

कुरु श्रेष्ठ ! आप भी इसी नीति का अनुसरण कर पाण्डवों तथा दूसरे लोगों के साथ यथोचित बर्ताव करते रहें। इस बात का ध्यान रखें कि स्वयं संकट के समुद्र में डूब न जाएँ। आप समस्त कल्याणकारी साधनों से सम्पन्न और सबसे श्रेष्ठ हैं। अत: हे राजन् ! आप पाँडु-पुत्रों से अपनी रक्षा करें। राजन् ! आपके भतीजे पाँडव बहुत बलवान् हैं, अत: ऐसी नीति काम में लाइए जिससे आगे चलकर आपको पछताना न पड़े।

वैशम्पायन कहते हैं—हे जन्मजय राजन् ! यों कहकर कणिक अपने घर चले गए। इधर कुरुवंशी धृतराष्ट्र शोक से व्याकुल हो गए।

युधिष्ठिर का प्रश्न भीष्म से

युधिष्ठिर ने भीष्म पितामह से पूछा—सत्ययुग, त्रेता और द्वापर—ये तीनों युग समाप्त हो रहे हैं। जगत् में धर्म का क्षय हो चला है। डाकू और लुटेरे इस धर्म में और भी बाधा डाल रहे हैं। ऐसे समय में किस तरह रहना चाहिए ?

भीष्म ने कहा—हे भारत ! ऐसे समय में तुम्हें आपत्ति काल की वह नीति बता रहा हूँ जिसके अनुसार भूमिपाल को दया का त्याग करके समयोचित बर्ताव करना चाहिए। इस विषय में भारद्वाज कणिक और राजा शत्रुंजय के संवाद रूप एक प्राचीन इतिहास का उदाहरण दिया जाता है।

कणिक-शत्रुंजय संवाद

सौवीर देश में शत्रुंजय नाम से प्रसिद्ध एक महारथी राजा थे। उन्होंने भारद्वाज कणिक के पास जाकर अपने कर्त्तव्य का निश्चय करने के लिए इस प्रकार का

प्रश्न किया ।

अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति कैसे होती है ? प्राप्त द्रव्य की वृद्धि किस तरह हो सकती है ? बढ़े हुए द्रव्य की रक्षा किससे की जा सकती है ? और उस सुरक्षित द्रव्य का सदुपयोग कैसे किया जाना चाहिए ?

राजा शत्रुंजय को शास्त्र का तात्पर्य निश्चित रूप से ज्ञात था । उसने जब कर्त्तव्य निश्चय के लिए प्रश्न उपस्थित किया तब भारद्वाज कणिक ने यह युक्ति युक्त उत्तम वचन बोलना प्रारम्भ किया—

कणिक का उत्तर—दण्ड का महत्त्व

राजा को सदा दण्ड देने के लिए उद्यत रहना चाहिए और सदा ही पुरुषार्थ प्रकट करना चाहिए । राजा अपने में दुर्बलता न रहने दे । शत्रु-पक्ष की दुर्बलता पर सदा दृष्टि रखे और शत्रु की दुर्बलता पता लगते ही उस पर आक्रमण कर दे । जो सदा दण्ड देने के लिए उद्यत रहता है, उससे प्रजाजन बहुत डरते हैं । इसलिए सबको दण्ड द्वारा ही काबू करे । साम, दान, दण्ड, भेद चारों उपायों में दण्ड को ही प्रधान बताया गया है । यदि मूल आधार नष्ट हो जाए तो उसके आश्रय से जीवन-निर्वाह करने वाले सभी शत्रुओं का जीवन नष्ट हो जाता है । यदि वृक्ष की जड़ काट दी जाए तो शाखाएँ कैसे रह सकती हैं ? विद्वान् पुरुष पहले शत्रु पक्ष के मूल का ही उच्छेद कर डाले । तत्पश्चात् उसके सहायकों और पक्षपातियों को भी इसी पथ का अनुसरण कराये ।

युद्ध की नीति

संकट-काल आने पर राजा सुन्दर मंत्रणा, उत्तम पराक्रम और उत्साह पूर्वक युद्ध करे और अवसर आने पर सुन्दर ढंग से पलायन भी करे । आपत्काल के समय आवश्यक कर्म ही करना चाहिए, पर देर तक सोच-विचार ही नहीं करते रहना चाहिए। शत्रु के साथ किये जाने वाले समझौते आदि कार्य में सन्धि करके भी उस पर विश्वास न करे । अपना काम बना लेने पर बुद्धिमान् शीघ्र ही यहाँ से हट जाए । शत्रु को उसका मित्र बनकर मीठे वचनों से ही सान्त्वना देता रहे पर जैसे सर्प-युक्त गृह से मनुष्य डरता है, इसी प्रकार शत्रु से भी सदा उद्विग्न रहे । राजन् ! दो ही घड़ी सही, मनुष्य तिन्दुक की लकड़ी की मशाल के समान जोर-जोर से प्रज्वलित हो उठे । शत्रु के सामने घोर पराक्रम प्रकट करे, दीर्घकाल तक भूसी की आग के समान बिना ज्वाला के ही धूआँ न उठाए, मन्द पराक्रम का परिचय न दे । अनेक प्रकार के प्रयोजन रखने वाला मनुष्य कृतघ्न के साथ आर्थिक सम्बन्ध न जोड़े । किसी का भी काम पूरा न करे क्योंकि जो अर्थी-प्रयोजन-सिद्धि की इच्छा वाला होता है, उससे तो बारम्बार काम लिया जा सकता है पर जिसका प्रयोजन सिद्ध हो जाता है, वह अपने उपकारी की उपेक्षा कर देता है । इसलिए दूसरों के सारे कार्य जो अपने द्वारा होने वाले हों—अधूरे ही रहने चाहिए ।

शत्रु पर आक्रमण

राजा को चाहिए कि वह प्रतिदिन पूर्ण सावधान हो शत्रु के घर जाए और उसका अमंगल ही क्यों न हो रहा हो, सदा उसका कुशल पूछ मंगल-कामना करे। जो आलसी, कायर, अभिमानी, लोक चर्चा से डरने वाले और सदा समय की प्रतीक्षा में रहने वाले हैं, वह अपने अभीष्ट अर्थ को कभी नहीं पा सकते। पान, जुआ, स्त्री, शिकार और गाना बजाना—इन सबका संयम पूर्वक अनासक्त भाव से सेवन करे क्योंकि इनमें आसक्ति होना अनिष्ट कारक है। राजा वाँस के धनुष के समान समय पर झुक जाए, हिरण के समान चौकन्ना होकर सोये, अन्धा बने रहने योग्य समय हो तो अन्धे का भाव धारणा करे और अवसर के अनुसार बहरे का भाव भी स्वीकार करे। बुद्धिमान् पुरुष देश और काल को अपने अनुकूल पाकर पराक्रम प्रकट करे। देशकाल की अनुकूलता न होने पर किया गया पराक्रम निष्फल होता है। "अपने लिए समय अच्छा है या खराब ? अपना पक्ष प्रबल है या निर्बल ?" इन सब बातों का निश्चय करके शत्रु के बल को मी समझकर युद्ध या सन्धि कार्य में अपने को लगाए। जो राजा दण्ड से नत-मस्तक हुए शत्रु को पाकर भी उसे नष्ट नहीं कर देता, वह अपनी मृत्यु को आमन्त्रित करता है, ठीक उसी तरह जैसे खच्चरी मौत के लिए गर्भ धारण करती है। राजा शत्रु की आशा पूर्ण होने में विलम्ब पैदा करे, उसमें विघ्न डाल दे। उस विघ्न का कुछ कारण बता दे और उन कारणों को युक्ति संगत सिद्ध कर दे।

शत्रु पर विश्वास न करे

जिसके सुलभ होने का समय आ गया हो, उस सुख को त्याग देना और भविष्य में मिलने वाले सुख की आशा करना—यह बुद्धिमानों की नीति नहीं है। जो विश्वास-पात्र नहीं है, उस पर कभी विश्वास न करे पर जो विश्वासपात्र है, उस पर भी अधिक विश्वास न करे क्योंकि अधिक विश्वास से भय उत्पन्न होता है। अत: बिना जाँचे-बूझे किसी पर भी विश्वास न करे। किसी यथार्थ कारण से शत्रु के मन में विश्वास उत्पन्न करके जब कभी उसका पैर लड़खड़ाता देखे, अर्थात् कमजोर समझे, तभी उस पर प्रहार कर दे। शत्रु के हित के प्रति मनोयोग दिखाकर, मौन व्रत लेकर, गेरुआ वस्त्र पहन तथा जटा और मृग चर्म धारण कर अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करे और जब विश्वास हो जाए तो मौका देखकर भूखे भेड़िये की तरह उस पर टूट पड़े। कोई जन्म से ही मित्र अथवा शत्रु नहीं होता। सामर्थ्य योग से ही शत्रु और मित्र उत्पन्न होते रहते हैं। शत्रु करुणाजनक वचन बोल रहा हो तो भी उसे मारे बिना न छोड़े। जिसने पहले अपकार किया हो, उसे अवश्य मार डाले और उसमें दु:ख न माने। ऐश्वर्य की इच्छा रखने वाला राजा दोष दृष्टि का परित्याग कर सदा लोगों को अपने पक्ष में मिलाये रखने तथा दूसरों पर अनुग्रह करने के लिए यत्नशील बना रहे और शत्रुओं का दमन भी प्रयत्नपूर्वक करे। ऐश्वर्य की इच्छा वाले राजा को मधुर वचन बोलकर दूसरों का सम्मान करके और सहनशील होकर लोगों को अपने पास आने के लिए निमंत्रित करना

चाहिए। यही लोक की आराधना अथवा साधारण जनता का सम्मान है। इसे अवश्य करे।

धर्म, अर्थ, काम का सेवन

सूखा वैर न करे और दोनों भुजाओं से तैरकर अकेला नदी के पार न जाए। यह निरर्थक और आयु नाशक कर्म है। यह कुत्ते के द्वारा गाय का सींग चबाने जैसा कार्य हैं जिससे उसके दाँत भी रगड़ से उखड़ जाते हैं और रस भी नहीं मिलता है। धर्म, अर्थ और काम—इन त्रिविध पुरुषार्थों के सेवन में लोभ, मूर्खता और दुर्बलता—यह तीन प्रकार की बाधाएँ उपस्थित होती हैं। उसी प्रकार उनके शान्ति, सर्व हितकारी कर्म और उपभोग—तीन ही प्रकार के फल प्राप्त होते हैं। इन तीनों फलों को शुभ जानकर तीनों बाधाओं से यत्नपूर्वक बचे। ऋण, अग्नि और शत्रु में से कुछ बाकी रह जाए तो वह बारम्बार बढ़ता रहता है। इनमें से किसी को शेष न छोड़े। यदि बढ़ता हुआ ऋण रह जाए, तिरस्कृत शत्रु जीवित रहे और उपेक्षित रोग शेष रह जाए तो यह सब तीव्र भय उत्पन्न करते हैं। किसी कार्य को अच्छी तरह सम्पन्न किये विना न छोड़े और सदा सावधान रहे। मनुष्यों का वध करके, सड़कें तोड़-फोड़कर और घरों को नष्ट-भ्रष्ट करके शत्रु के राष्ट्र का विध्वंस करना चाहिए।

सदा सावधान रहें

राजा गीध के समान दूर तक दृष्टि डाले, बगुले के समान लक्ष्य पर दृष्टि जमाये, कुत्ते के समान चौकन्ना रहे, सिंह के समान पराक्रम प्रकट करे। मन में उद्वेग को स्थान न दे। कौए की भाँति सशंक रह दूसरों की चेष्टा पर ध्यान रखे और दूसरे के बिल में प्रवेश करने वाले सर्प के समान शत्रु का छिद्र देख उस पर आक्रमण कर दे। जो अपने से शूरवीर हो, उसे हाथ जोड़कर वश में करे, जो डरपोक हो, उसे भय दिखाकर फोड़ ले, लोभी को धन देकर काबू में कर ले तथा जो बराबर का हो, उसके साथ युद्ध छेड़ दे। अनेक जाति के लोग एक कार्य के लिए संगठित हो अपना दल बना लेते हैं, उसे श्रेणी कहते हैं। ऐसी श्रेणियों के जो प्रधान हैं उनमें जब भेद डाला जा रहा हो और अपने मित्रों को अनुनय-विनय द्वारा जब दूसरे लोग अपनी ओर खींच रहे हों और जब सब ओर भेद नीति और दलबन्दी के जाल बिछाये जा रहे हों, ऐसे अवसरों पर अपने मन्त्रियों की पूर्ण रूप से रक्षा करनी चाहिए। अर्थात् न तो वे फूटने पाएँ और न स्वयं ही कोई दल बनाकर अपने विरुद्ध कार्य करें। इसके लिए सतत सावधान रहना चाहिए। जो राजा समय पर कोमल और समय पर कठोर बन जाता है, वह अपने सारे कार्य सिद्ध कर लेता है और शत्रु पर भी उसका अधिकार हो जाता है। विद्वान् पुरुष से विरोध करके 'मैं दूर हूँ' ऐसा समझकर निश्चिन्त नहीं होना चाहिए क्योंकि बुद्धिमान् की बातें बहुत बड़ी होती हैं।

शत्रु का प्रतिकार

जिसके पार न उतर सकें, उस नदी को तैरने का साहस न करे। जिसे शत्रु पुनः बलपूर्वक वापस ले सके, ऐसे धन का अपहरण न करे। ऐसे वृक्ष या शत्रु को खोदने या नष्ट करने की चेष्टा न करे जिसकी जड़ उखाड़ फैंकना सम्भव न हो तथा उस वीर पर आघात न करे जिसका मस्तक काटकर धरती पर न गिरा सके।

यह जो मैंने शत्रु के प्रति पाप पूर्ण बर्ताव का उपदेश किया है, इसे समर्थ पुरुष सम्पत्ति के समय कदापि आचरण में न लाए। पर जब शत्रु ऐसे ही बर्तावों द्वारा अपने ऊपर संकट उपस्थित कर दे, तब उसके प्रतीकार के लिए वह इन्हीं उपायों को काम में लाने का विचार क्यों न करे। इसलिए तुम्हारी हित की इच्छा से मैंने यह सब कुछ बताया है।

कणिक की शिक्षापालन से लाभ

हितार्थी विद्वान् भारद्वाज कणिक की कही हुई इन यथार्थ शिक्षाओं को सुन सौवीर देश के राजा ने उनका यथोचित रूप से पालन किया जिससे वह बन्धु बाँधवों सहित समुज्ज्वल राजलक्ष्मी का उपभोग चिरकाल तक करता रहा।

नारद नीति

युधिष्ठिर के प्रति नारद का उपदेश

युधिष्ठिर जब राजसूय यज्ञ में अतिथि सेवा से निवृत्त हो अनेक ऋषि-मुनियों तथा राज वृन्द के बीच सभा में बैठे थे, तब महामुनि नारद वहाँ आए। अपने भाइयों सहित युधिष्ठिर ने विनयावनत हो उनका स्वागत-सत्कार कर अभिवादन के बाद विधिपूर्वक योग्य आसन दिया। इसके बाद नारद मुनि ने युधिष्ठिर से धर्म-अर्थ-काम सम्बन्धी प्रश्न किये। यह सब प्रश्न नीति सम्बन्धी ही हैं। नारद द्वारा पूछे गए इन प्रश्नों में नीति के महत्त्व पूर्ण और गूढ़ सिद्धांत और तथ्य अन्तर्निहित है। इसीलिए यह 'नारद' नीति के नाम से विख्यात हैं। महाभारत के सभापर्व के पंचम् अध्याय में यह नीति उल्लिखित है।

धर्म-अर्थ-काम का पालन

(१) आपके धन तो सफल होते हैं और धर्म में आपका मन लगता है न? सुखों का अनुभव होता है न? मन ऊब तो नहीं जाता? हे राजन्! अपने पूर्वजों द्वारा आचरित कामों में उत्तम, मध्यम पुरुषों के प्रति धर्म और अर्थ से युक्त उदार व्यवहार का बर्ताव तो करते हो?

(२) अर्थ के लोभ से धर्म का घात तो नहीं करते हो, अथवा धर्म के जोश में आकर अर्थ की उपेक्षा तो नहीं करते हो? प्रीतिपूर्ण काम के द्वारा धर्म और अर्थ—दोनों का नाश तो नहीं करते हो? काल में कार्य करने के ज्ञानी! समय का विभाग कर धर्म, अर्थ और काम—तीनों का सेवन तो करते हो?

राजा के लिए बीस दोषों का त्याग और छः गुण आवश्यक

(३) हे निर्दोष राजन्! क्या राजा के लिए उचित छ: गुणों द्वारा सात उपायों तथा बलाबल और चौदह की परीक्षा तो करते हो?

कामन्दक नीतिकार के अनुसार राजा को इन बीस दोषों से मुक्त होना चाहिए और इनके साथ मेल नहीं रखना चाहिए। इसी में चौदह भी शामिल हैं—

(१) बालक (२) वृद्ध (३) दीर्घ रोगी (४) ज्ञातिच्युत (५) भीरू (६) भीरू सेवकों वाला (७) लोभी (८) लोभी परिचारकों वाला (९) विरक्त स्वभाव वाला (१०) विषयों में आसक्ति वाला, (११) गुप्त मंत्रणा में एकाग्रचित्त न रहने वाला (१२) निःस्वार्थ ज्ञानियों का निन्दक (१३) भाग्यहीन (१४) सदा भाग्य की चिन्ता से ग्रस्त (१५) दुर्भिक्ष की विपत्ति से ग्रस्त (१६) सेना-नाश से युक्त (१७) किसी एक ठिकाने पर न रहने वाला (१८) बहुत शत्रुओं वाला (१९) मरणासन्न (२०) सत्यधर्म से रहित।

छः उचित गुण

राजा के लिए उचित छः गुण यह हैं—(१) वक्ता=सबको यथायोग्य आदेश देने में समर्थ (२) प्रगल्भ=शक्तिशाली (३) मेधावी=बुद्धिमान् (४) स्मृतिमान्=अच्छी स्मरण शक्ति वाला (५) नय वित्=नीतिशास्त्र जानने वाला (६) कवि=आगे की घटनाओं को पहले ही आंक सकने वाला।

सात उपाय

राजा के लिए सात उपाय यह हैं—(१) साम=मीठी बातों से शत्रु को वश में करना (२) दान=धन आदि देना (३) दण्ड=दमन करना (४) भेद=विरोधी पक्ष में फूट डालना (५) मंत्र=गुप्त मंत्रणा (६) औषध=विषकन्या आदि शत्रु घातक उपाय (७) इन्द्रजाल=मोहिनी शक्ति का प्रयोग।

राजा इन चौदह की परीक्षा करे

राजा इन चौदह की परीक्षा करे (१) देश (२) दुर्ग (३) हाथी (४) घोड़ा (५) योद्धा (६) अन्न आदि के अधिकारी (७) अन्तःपुर (८) अन्न भण्डार का संग्रह (९) जनगणना (१०) अपने देश और विदेश के शस्त्रास्त्रों का ज्ञान (११) आय-व्यय का पूरा ब्यौरा (१२) धन=कोष (१३) आसव=मादक द्रव्यों के उत्पादन पर रोक (१४) विभिन्न विभागों के अध्यक्षों की योग्यता का ज्ञान।

आठ कर्म

(४) हे भारत! क्या तुम अपने बल और शत्रुओं की जाँच कर तथा शत्रुओं के साथ अवसर के अनुसार सन्धि कर के आठ कर्मों का सेवन करते हो?

आठ कर्म यह हैं (१) कृषि (२) व्यापार के मार्ग (३) दुर्ग (४) सेतु (५) हाथियों तथा अन्य कृषि व जनता के घातक-पशुओं को काबू में रखना

(६) खानों से प्राप्त हीरा कोयला आदि का संग्रह (७) आकर=सोना-चाँदी की खानों से प्राप्त धन की रक्षा (८) रिक्त और उजड़े स्थानों को पुनः आबाद करना ।

सात प्रकृतियाँ

(५) हे भरत श्रेष्ठ ! कहीं तेरी सात प्रकृतियाँ विरोधियों द्वारा निर्बल तो नहीं कर दी गयीं और धन सम्पन्न होकर व्यसनी तो नहीं बन गयीं ? वे तुझ पर सब प्रकार से अनुरक्त तो हैं ?

सात प्रकृतियाँ यह हैं (१) स्वामी (२) अमात्य (३) मित्र (४) कोष (५) राष्ट्र (६) दुर्ग (७) सेना ।

स्वामी भी सात प्रकार के होते हैं—(१) दुर्गों का अध्यक्ष (२) सेना अध्यक्ष (३) धर्म विभाग का अध्यक्ष (४) न्याय विभाग का अध्यक्ष (५) पुरोहित (६) स्वास्थ्य विभाग का अध्यक्ष (७) ज्योतिर्विद्या, नक्षत्र विद्या व आबोहवा विभाग का अध्यक्ष ।

वीर मंत्री हो और गुप्त मंत्रणा की रक्षा हो

(६) कहीं बनावटी दूतों द्वारा तेरे विश्वासपात्र व्यक्ति तुझ से फोड़े तो नहीं जाते और कहीं कपटी अमात्य तेरी गुप्त मंत्रणा तो प्रकट नहीं कर देते ।

(७) क्या तू मित्र, उदासीन और शत्रुओं की चेष्टाओं को जानता है ? क्या तू समय के अनुसार संधि-युद्ध का व्यवहार कर लेता है ?

(८) क्या तू मध्यम=दोनों पक्षों से वेतन लेने वाले उदासीन के प्रति तुल्यता का व्यवहार तो करता है ? क्या तूने अपने सदृश ज्ञान-वयोवृद्धों को जो शुद्ध तथा जिनसे हृदय की बात कही जा सकती है और जो कुलीन और तेरे अनुरागी है—उन्हें वीर मंत्री नियुक्त किया है ?

(९) हे भारत ! राजा के विजय का मूलमंत्र सुरक्षित विचार होता है। क्या सुरक्षित गुप्त मंत्रणा वाले, नीतिशास्त्र विचक्षण तेरे अमात्यों द्वारा सुरक्षित राष्ट्र शत्रु से विलुप्त तो नहीं किया जाता ?

सावधान रहे : कड़ा निरीक्षण रखे : विद्वानों का मान करे

(१०) तू कहीं सदा सोया तो नहीं रहता, अर्थात्, असावधान तो नहीं रहता ? समय पर जाग जाता है ? रात के पिछले प्रहर में हे अर्थज्ञ ! अर्थ का विचार तो करता है ?

(११) तू अकेला तो विचार नहीं करता ? गुप्त परामर्श बहुतों के साथ तो नहीं करता ? कहीं तेरा गुप्त विचार सारे राष्ट्र में फैल तो नहीं जाता ?

(१२) क्या तू छोटे-छोटे मूल वाले किन्तु बड़े परिणाम वाले अर्थ प्राप्ति के उपायों को विचार करके उनका शीघ्र अनुष्ठान आरम्भ कर देता है ? उनमें विघ्न तो नहीं पैदा होने देता ?

(१३) कहीं सभी कर्म परिणाम तुझसे ओझल और शंकास्पद तो नहीं हैं ? अथवा सभी उत्तम रीति से सम्पन्न होते हैं क्योंकि इन सब पर दृष्टि रखना ही आवश्यक है। वह कर्म परिणाम आप्त, लोभरहित, कर्मचारियों द्वारा तो अनुष्ठित किये जाते हैं ?

(१४) हे राजन् ! तेरे पूर्ण किये हुए अथवा पूर्ण होने वाले कार्यों को ही लोग जान पाते हैं न ? हे वीर ! कहीं तेरे किन्हीं असमाप्त कार्यों को तो लोग नहीं जान लेते ?

(१५) क्या सर्व शास्त्र विशारद शिक्षक ही कुमारों एवं प्रधान योद्धाओं को सब प्रकार से धर्म विषयक ज्ञान देते हैं ?

(१६) क्या तू हजारो मूर्खों के बदले एक ज्ञानी को अधिक मान देता है न ? क्योंकि अर्थ संकटों में पंडित ही पण कल्याण कर सकता है।

(१७) क्योंकि एक भी मेधावी, शूर, संयमी, चतुर, अमात्य राजा तथा राज पुत्र को भारी लक्ष्मी प्राप्त करा सकता है ?

(१८) क्या तेरे सभी दुर्ग, धन-धान्य, आयुध और जल तथा यंत्र शिल्पी और कारीगरों तथा अनुर्धरों से परिपूर्ण हैं ?

पर-पक्ष के अठारह और स्वपक्ष के पन्द्रह तीर्थ

(१९) क्या तू पणक्ष के अठारह और स्वपक्ष के पन्द्रह तीर्थों को एक-दूसरे से अविज्ञात तीन-तीन गुप्तचरों द्वारा जानता है ?

अठारह तीर्थ इस प्रकार हैं—(१) मंत्री (२) पुरोहित (३) युवराज (४) सेनापति (५) द्वारपाल (६) अन्तःपुर में नियुक्त सेवक (७) कारागार का अधिकारी (८) द्रव्य संग्रहकर्ता (९) धन का कार्य-अकार्य के विनियोग करने वाला (१०) कर्त्तव्य अकर्त्तव्य की आज्ञा देने वाला (११) नगराध्यक्ष (१२) योजनाएँ बनाने वाला (१३) धर्माध्यक्ष (१४) सभाध्यक्ष (१५) दण्डपाल (१६) दुर्गपाल (१७) राष्ट्रान्तपाल (१९) सीमा प्रान्त अध्यक्ष (१८) वन विभाग अध्यक्ष।

इन पराये तथा अपने तीर्थों में पाखंडियों और दूसरों को एक-दूसरे के जाने बिना गुप्तचरों द्वारा विचार कराये। मंत्री, युवराज और पुरोहित के बिना शेष पन्द्रह स्वपक्ष के तीर्थ हैं। भावार्थ यह कि गुप्तचर विभाग इतना सुव्यस्थित और प्रामाणिक हो कि गुप्तचर भी एक-दूसरे को न जान सकें।

पुरोहित का कार्य : तीन प्रकार के कर्मचारी

(२०) हे शत्रु विनाशक ! क्या तू शत्रुओं से अज्ञात तथा सर्वदा सावधान और उद्योगी होकर सब शत्रुओं को दृष्टि में रखता है ?

(२१) क्या अपने विनय सम्पन्न, कुलीन, बहुश्रुत, महाविद्वान्, निन्दा-ईर्ष्या से रहित, शास्त्र चिन्तन में प्रवीण पुरोहित का सत्कार करता है ?

(२२) क्या यज्ञ के लिए नियुक्त, विधिज्ञाता बुद्धिमान्, सरल स्वभाव पुरोहित

आपके लिए किये जा चुके और भविष्य में किये जाने वाले होम के विषय में सदा सूचना देता रहता है।

(२३) क्या तेरा राजनीतिक घटनाओं का ज्ञाता, दैवज्ञ, भूगोल-खगोल के विविध अंगों में पारंगत है? क्या वह सभी आने वाले उत्पातों के बारे में ज्ञान के प्रकाश का मार्ग बता सकता है?

(२४) क्या तुमने मुख्यों को महत्त्वपूर्ण कार्यों में मध्यमों को मध्यम कामों में तथा घटिया भृत्यों को घटिया कार्यों में नियुक्त कर रखा है? छल रहित, बाप दादा के क्रम से आये हुए, शुचि, श्रेष्ठ अमात्यों को श्रेष्ठ कार्यों में तुम लगाते हो न?

राजा और प्रजा के सम्बन्ध : सेना को सन्तुष्ट रखो

(२५) क्या तुम उग्र दण्ड द्वारा प्रजाओं को अतिमात्र उद्विग्न तो नहीं करते? हे भरत श्रेष्ठ! तेरे मंत्री ही राष्ट्र का अनुशासन करते हैं न?

(२६) कहीं याजक लोग तुझे कठोरता से कर आदि लेने वाला मान कर पतित की भाँति तिरस्कृत तो नहीं करते, जिस प्रकार काम के वशीभूत होकर इधर-उधर घूमने वाले लम्पट पुरुष से स्त्रियाँ घृणा करती हैं?

(२७) क्या तेरा सेना नायक प्रसन्न (धन, मानादि द्वारा) शूर, बुद्धिमान्, धीर, शुचि, कुलीन, कुशल तथा अनुरक्त तो है न? क्या तेरी सेना व प्रधान अधिकारी, सर्वयुद्धों में प्रवीण, प्रौढ़ और छल रहित, विक्रमशील तथा तुझसे सत्कार पाकर मानित हैं न?

(२८) क्या सेना को देने योग्य भत्ता तथा यथोचित वेतन उचित समय पर देते हो, उसमें विलम्ब तो नहीं करते? क्योंकि समय पर भत्ता, वेतनादि न देने से, दरिद्रता के कारण ये सेवक राजा की निन्दा करते हैं।

(२९) क्या प्रधानमंत्री तथा अन्य मंत्रिगण कुलीन तथा अनुरागी तो हैं? क्या तेरे कार्यों के लिए वे सदा प्राण त्यागने में तत्पर रहते हैं?

(३०) कहीं कोई संग्रामादि सम्बन्धी अनेक कार्यों को कोई अकेला, स्वार्थी, शासन का उल्लंघनकारी होकर यथेच्छ तो नहीं चलाता है?

सैनिकों का वेतन और उनके परिवारों का पालन

(३१) अपने पुरुषार्थ द्वारा कर्तव्य का उत्तमता से पालन करने वाला व्यक्ति अधिक मान व अधिक वेतन तथा भत्ता प्राप्त करता है?

(३२) क्या तुम विद्या विनीत, ज्ञान विशारद, मनुष्यों का यथा योग्य और उनके गुण के अनुसार दान द्वारा सत्कार करते हो?

(३३) हे भरत श्रेष्ठ! तुम्हारे लिए मृत्यु को प्राप्त अथवा संकट को प्राप्त व्यक्तियों की पत्नियों (परिवारों) का तुम पालन करते हो?

(३४) हे पार्थ! क्या तुम भय के कारण अथवा क्षीण होने के कारण शरणागत शत्रु का तथा युद्ध में हारे हुए का पुत्र के समान पालन करते हो?

(३५) हे राजन्। क्या तुम माता-पिता की भाँति समस्त राज्य के लिए सम दृष्टि तथा सन्देह रहित हो ?

तीन प्रकार का बल : दस व्यसन

(३६) हे भरत श्रेष्ठ ! क्या तुम शत्रु को व्यसनी, विपद् ग्रस्त्र अथवा मद्यादि व्यसनों में फँसा जानकर, अपने और दूसरे के विविध बल की जांच कर वेग से चढ़ाई कर देते हो ?

तीन प्रकार का बल —मंत्र, कोष तथा भृत्य बल, अथवा प्रभु बल, मंत्र बल और उत्साह बल। अथवा, स्थल, जल और नभ—तीनों प्रकार की सेनाएँ। व्यसन दस हैं—स्त्री, जूआ, शिकार, मादक द्रव्य, नाचना, गाना, बेकार घूमना, बाजा बजाना, निन्दा और दिन को सोना।

क्या तुम पार्ष्णिमूल हो ?

(३७) हे राजन् ! क्या तू पार्ष्णिमूल, व्यवसाय (कर्तव्य निश्चय और उसका पालन) और पराजय (अपने पक्ष में पराजय न होने के कारणों और परपक्ष के अवश्य पराजित होने के कारणों को), भली प्रकार जानकर समय आते ही दिष्टि (राजनीतिक ज्योतिषी) के परामर्श से विजय यात्रा प्रारम्भ कर देते हो ?

पार्ष्णिमूल का अर्थ है—जिसका पीछा दृढ़ है। अर्थात्, जब शत्रु पर चढ़ाई करे तो अपने राज्य की गतिविधियाँ, राजा की अनुपस्थिति में भी, ठीक प्रकार चलती रहनी चाहिए। ऐसा न हो कि सेना के युद्ध में व्यस्त रहने के कारण राष्ट्र में अशान्ति, अव्यवस्था फैल जाए। इसलिए राजा को मित्र-शत्रु, मित्र के मित्र, मित्र के शत्रु, शत्रु के शत्रु तथा शत्रु के मित्र इत्यादि की पूरी जानकारी रखनी चाहिए। इसी प्रकार उदासीन का भी ज्ञान आवश्यक है।

(३८) हे राजन् ! क्या सेना का वेतन अगाऊ देकर शत्रु के और अपने राष्ट्र के सेनादि के मुख्य अधिकारियों को गुप्त रूप से उत्तम वस्तुएँ देते हो ?

जितेन्द्रिय ही राज्य कर सकता है

(३९) हे राजन् ! सबसे पूर्व अपने आपको जीतकर—जितेन्द्रिय होकर—प्रमादी अर्थात् इन्द्रियों के गुलामों को जीतने की इच्छा क्या तुम करते हो ?

(४०) शत्रु पर चढ़ाई करने से पहले क्या तुम उत्तम रीति से अथवा उत्तम मनुष्य द्वारा अनुष्ठान किए गए साम, दान, दण्ड और भेद—यह गुण काम में ले आते हो ?

(४१) हे राजन् ! अपने मूल 'स्वराज्य' को दृढ़ करके ही तुम शत्रु पर चढ़ाई करते हो और उन्हें जीतने के लिए विक्रम करते हो और जीतने के बाद उस देश की रक्षा करते हो ?

अष्टांग सेना और चार प्रकार की सेना

(४२) क्या तेरी अष्टांग संयुक्त, चार प्रकार के बल वाली सेना, सेनापतियों द्वारा सुशिक्षित, शत्रुओं को काटने में समर्थ है ?

सेना के अष्टांग=रथ, हाथी, घोड़ा, योद्धा, पैदल, सेवक, गुप्तचर और प्रधान शिक्षक।

चार, प्रकार की सेना (१) अपनी सेना (२) मित्र राष्ट्रों की सेना (३) समय के अनुसार भर्ती की गई सेना (४) भूमि, समुद्र, नभ और वन के लिए कुशल सेना।

शत्रु की खेती का नाश

(४३) हे राजन् ! क्या शत्रु के राष्ट्र में लव तथा मुष्टि को छोड़े बिना युद्ध में शत्रुओं का तू घात करता है ?

लव=खेत काटना। मुष्टि=खेत की रक्षा करना। अर्थात्, शत्रु के राज्य में खेत काटकर उसे अपनी सेना के लिए सुरक्षित रखना तथा इस प्रकार शत्रु के राज्य में दुर्भिक्ष पैदा कर उसे सुगमता से अपने आधीन करना।

(४४) क्या अपने राष्ट्र के समान दूसरे राष्ट्रों में तेरे बहुत सारे अधिकारी अपने कार्यों पर भली प्रकार अधिष्ठित हैं और एक-दूसरे की रक्षा भी करते हैं ?

भोजन, वस्त्र, कोष, कोष्ठ, वाहन आदि

(४५) क्या तेरे विश्वास पात्र जन तेरे भोजन, तेरे शरीर को स्पर्श करने वाले वस्त्र, सुगन्धित पदार्थ, इन सबकी परीक्षा कर सुरक्षित रखते हैं ? अर्थात्, कहीं स्वयं ही तो हड़प नहीं कर जाते ?

(४६) क्या तेरे कल्याण चाहने वाले कर्मचारी कोष,=कोषागार, कोष्ठ= अन्न भंडार, वाहन = सवारी, तथा द्वार=आने जाने वालों के विचार तथा आय= आय के साधनों का अनुष्ठान=जाँच पड़ताल करते रहते हैं ?

आभ्यन्तर और बाह्य अधिकारी

(४७) हे राजन् ! क्या तू आभ्यन्तरों तथा बाह्यों से, सबसे पूर्व, अपनी रक्षा करता है ? और अपनों से उन आभ्यन्तरों तथा बाह्यों की ओर उनकी एक-दूसरे से रक्षा करता है ?

राज्याधिकारी को आभ्यन्तर—पाचक, सेवक, पुत्र, कलत्रादिक, तथा बाह्य—सेनापति आदि से अपना बचाव करने में सदा सावधान रहना चाहिए। उन आभ्यन्तरों तथा बाह्यों की अपने पुत्र, अमात्यादि से, इसी प्रकार पुत्रों की पुत्रों एवं अमात्यों से अमात्यों की, पुत्रों एवं अमात्यों से रक्षा की व्यवस्था रखनी चाहिए।

(४८) क्या तेरे परिचारक तेरे पहले प्रहर के मद्यादि पान, जूआ, क्रीड़ा, स्त्री प्रसंग सम्बन्धी व्यसनों से उत्पन्न होने वाले ह्रास को तो नहीं जानते ? अर्थात्, तू इन व्यसनों से मुक्त है।

(४९) क्या तेरे आय के आधे, अथवा चौथाई अथवा तीन चौथाई भाग से तेरे राष्ट्र का व्यय पूरा हो जाता है? अर्थात् आय की अपेक्षा व्यय न्यून होना चाहिए?

कर्मचारियों, आश्रितों और अन्यों से व्यवहार

(५०) तू अपने सम्बन्धियों, गुरुजनों के वृद्ध होने पर, तेरे आश्रित व्यापारियों और शिल्पियों के दरिद्र होने पर धन-धान्य से उन पर बार-बार कृपा करता है?

(५१) तेरे आय-व्यय का लेखा करने वाले सभी गणक तथा लेखक पहले प्रहर में प्रति दिन आय-व्यय की सूचना तुझे देते हैं?

(५२) तू प्रयोजन सिद्धि में प्रौढ़, हितैषी और तदनुकूल प्रियजनों को, पहले से दोष देखे बिना कार्यों से च्युत तो नहीं कर देता?

(५३) हे राजन्! लोभी, चोर अथवा वैरी, व्यवहार ज्ञान शून्य—ऐसे अधिकारी तो कार्यों पर नियुक्त नहीं कर देता?

(५४) कहीं चोर, लालची, राजकुमार अथवा स्त्री शक्ति अथवा तुम स्वयं ही राष्ट्र को पीड़ित तो नहीं करते? क्या किसान तेरे राज्य में सन्तुष्ट हैं?

खेती, किसान और जल-व्यवस्था

(५५) क्या तेरे राष्ट्र में बड़े-बड़े और जल से पूर्ण तालाब योग्य स्थानों पर विशेष रूप से बने हुए हैं? खेती केवल वर्षा पर आधारित तो नहीं है?

(५६) क्या किसान का अन्न-बीज नष्ट तो नहीं हो जाता? एक प्रतिशत मासिक वृद्धि—ब्याज की दर से क्या तू कृषक को उसके माँगने पर—ऋण दे देता है?

विद्या के चार विभाग

(५७) हे राजन्! क्या तेरे राष्ट्र में सज्जन पुरुष वार्ता का अनुष्ठान भली प्रकार करते हैं? हे तात! वार्ता पर आश्रित यह संसार सुख सम्पन्न रहता है।

विद्या के चार विभाग किए जाते हैं। (१) त्रयी, वार्ता, दण्ड नीति और आन्वीक्षिकी। (१) वैदिक साहित्य त्रयी के अन्तर्गत है। (२) राजनीति का दूसरा नाम दण्ड नीति है। (३) तर्क शास्त्र, एवं दर्शन शास्त्र और परीक्षाणात्मक ज्ञानविज्ञान आन्वीक्षिकी है। (४) कृषि, व्यापार, पशु-पालन और लेन-देन वार्ता है। संसार यात्रा में इसकी प्रधानता है।

(५८) हे राजन्! क्या तेरे जन पद में पाँच-पाँच शूर, बुद्धि सम्पन्न और सुनिपुण अधिकारी मिलकर प्रजा का कल्याण करते हैं?

पाँच अधिकारी राजा की ओर से प्रति ग्राम में हों। (१) प्रशस्ता-प्रबन्ध शासक (पुलिस) (२) समाहर्ता—प्रजा से राजा का मार्ग संग्रह करने वाला (३) संविधाता - प्रजा तथा भाग संग्रह करने वाला—दोनों में मेल रखने वाला, सम्पर्क अधिकारी (४) लेखक—आय-व्यय तथा विवादास्पद घटनाओं को लिखने वाला (५) साक्षी—सरकारी गवाह।

(५९) राष्ट्र की सुरक्षा के लिए ग्रामों को नगरवत् कर रखा है और ग्रामों की भाँति सीमा प्रदेशों को तथा वे सब तेरे अर्पण हैं न ?

(६०) तेरे देश में सम्पन्न, दुर्भिक्षादि से पीड़ित नगरों के विनाशक चोर इन सबका पीछा राजपुरुष करते हैं ? राजपुरुष सम्पन्न व्यक्तियों की रक्षा, पीड़ितों की सहायता और चोरों का पीछा करने में तत्पर रहें।

नारी रक्षा : धर्म-अर्थ चिन्तन : व्यवहार

(६१) क्या तू राष्ट्र की नारियों को सांत्वना देता और उनकी रक्षा करता है ? उनको सुरक्षित रखता है ? उन पर अधिक विश्वास तो नहीं करता और उनके सम्मुख गुप्त बातें तो नहीं कह देता ?

(६२) क्या तू अनर्थकारी बातें सुनकर और उसका अर्थ विचार कर आनन्द मनाता हुआ अन्तःपुर में तो सो नहीं जाता ?

(६३) हे राजन् ! क्या तू रात्रि के पहले दो पहर (दूसरा-तीसरा) सोकर, पिछले पहर में उठकर धर्म तथा अर्थ का विचार करता है ?

(६४) हे पाण्डव ! क्या तू काल को पहचानने वाले मंत्रियों के साथ समय पर उठकर सुभूषित होकर प्रजा के दुःख-सुख को जानना चाहता है ?

(६५) हे राजन् ! क्या रक्त वस्त्रधारी, हाथ में खड्ग लिए, उत्तमता से विभूषित रक्षक तेरी रक्षा के लिए चारों ओर से तेरी सेवा में उपस्थित रहते हैं ?

(६६) क्या तू, दण्ड योग्य अपराधियों पर यम के समान कठोर और पूज्यों के प्रति विनीत भाव से और प्रिय तथा अप्रियों के प्रति परीक्षा कर ठीक-ठीक व्यवहार करता है ?

शारीरिक रोग निवारण

(६७) हे राजन् ! क्या तू शारीरिक कष्टों को औषध व नियम पालन से, तथा मानसिक कष्ट को वृद्धों की सेवा आदि से सदा दूर करता रहता है ?

(६८) क्या अष्टांग चिकित्सा में कुशल वैद्य तेरे मित्र एवं प्रेमी होकर तेरे शरीर का हित करते हैं ?

अष्टांग चिकित्सा के आठ अंग यह हैं :—(१) निदान—रोग का हेतु (२) पूर्व-चिह्न (३) निरूपण (४) उपशम=रोग की वृद्धि-ह्रास (५) रोग की सम्प्राप्ति (६) औषधि (७) रोगी की स्थिति-बालक, युवा, वृद्ध, स्त्री, कुमारी, विवाहित, गर्भवती (८) परिचारक—रोगी की सेवा करने वाला।

(६९) हे राजन् ! क्या तू उपस्थित वादि-प्रतिवादियों को किसी प्रकार लोभ, मोह अथवा मान से तो नहीं देखता है ?

(७०) क्या तू कहीं लोभ, मोह, विश्वास अथवा प्रीति से आश्रित मनुष्यों की वृत्ति को तो नहीं रोकता है ?

नागरिक, सेवक और विद्वान् के प्रति व्यवहार

(७१) क्या तेरे राष्ट्र के नागरिक शत्रुओं से किसी प्रकार खरीदे जाकर और मिलकर तेरा विरोध तो नहीं करते हैं?

(७२) क्या तेरी शक्ति से परिपीड़ित कोई दुर्बल शत्रु मंत्रणा व बल; एक वा दोनों, के द्वारा, बलवान् तो नहीं हो गया?

(७३) हे राजन्! दान-मान से, प्रधानतः, वशीकृत सभी राजा तेरे अनुरागी होकर तेरे कार्यों के लिए अपने प्राणों को त्यागने को उद्यत होते हैं?

(७४) सब विद्याओं के विषय में ब्राह्मणों तथा साधुओं के लिए उनके गुणों के अनुसार तेरी पूजा प्रवृत्त होती है? क्या तू इन्हें स्वर्ग व अपवर्ग प्रदान करने वाली परम कल्याण वाली दक्षिणाएँ देता है?

(७५) क्या वेद मूलक तथा पूर्वजों से आचरित धर्म में तू यत्नशील होकर उस कार्य में वैसा क्रियात्मक व्यवहार भी करता है?

(७६) क्या तेरे घर में गुणी विद्वान् गुणयुक्त स्वादु अन्न खाते हैं और दक्षिणा प्राप्त करते हैं?

(७७) क्या तू एकाग्रचित्त और आत्मवशी हो सर्व प्रकार के यज्ञों और पुण्डरीकों को पूर्ण रूप से करने का यत्न करता है?

मंत्रियों के व्यवहार

(७८) क्या तू वृद्ध सम्बन्धियों, गुरुओं, निःस्वार्थ विद्वानों, तपस्वियों, मन्दिरों, कल्याणकारी वृक्षों तथा विद्वानों को पूजता है?

(७९) हे राजन्! क्या तू ऐसा कर्म तो नहीं करता जिससे जनता में शोक अथवा क्षोभ पैदा हो जाए? हाथ में पवित्र वस्तु लिए पुरोहित तेरे लिए स्वस्ति पाठ करता है?

(८०) हे राजन्! क्या तेरी बुद्धि, आयु, यश और धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि दिलाने वाली है और ऐसी ही वृत्ति है? ऐसी बुद्धि और वृत्ति वाले राजा का राज्य नष्ट नहीं होता। वह राजा पृथ्वी को जीत कर अनन्त सुख से बढ़ता है।

(८१) तुम्हारे राज्य में कहीं किसी पवित्रात्मा को कोई आर्यशास्त्र न जानने वाला राजकर्मचारी किसी चोरी आदि निन्दित कर्म में फँसाकर निर्दोष ही लोभ के कारण तो मार नहीं दिया जाता?

(८२) स्वभाव से दुष्ट, दुष्ट कर्म करने वाला, चोरी के खोज करने वालों द्वारा चोरी के द्रव्य सहित पकड़ा गया चोर हे नर श्रेष्ठ! कहीं द्रव्य के लोभ से छोड़ तो नहीं दिया जाता?

(८३) कहीं तेरे मंत्रियों के बहकाने से हे भारत! धनी अथवा दरिद्र के शीघ्र उत्पन्न धनों को मिथ्या से अर्जित तो नहीं समझ लिया जाता?

राज्य नाशक चौदह दोष

(८४) हे राजन् ! जिन दोषों के कारण बद्धमूल राजा भी नष्ट हो जाते हैं, उन चौदह राज दोषों को तुमने त्याग दिया है न ?

चौदह दोष यह हैं (१) नास्तिकता (२) झूठ, (३) क्रोध (४) प्रमाद (५) दीर्घ सूत्रता (६) ज्ञानियों का संग न करना (७) आलस्य (८) भिन्न वृत्ति का होना (९) केवल अर्थ का चिन्तन (१०) अर्थ ज्ञान शून्यों के साथ विचार करना (११) निश्चित कार्यों का न करना (१२) गुप्त मंत्र की रक्षा न करना (१३) शत्रु कार्यों को न करना (१४) सब ओर से प्रत्युत्थान—विरोध ।

(८५) तेरा वेदों का पढ़ना सफल है ? तेरा धन सफल है ? तेरी पत्नी सफल—उत्तम सन्तान वाली है ? तेरा ज्ञान तो सफल है ?

व्यापारियों से व्यवहार : वृद्धों का सम्मान

(८६) युधिष्ठिर ने पूछा, वेद कैसे सफल होते हैं, धन कैसे सफल होता है—दानी कैसे सफल होता है और ज्ञान कैसे सफल होता है ?

(८७) नारद ने उत्तर दिया—वेदों का फल अग्निहोत्र है, धन का फल दान तथा उपभोग है। स्त्री का फल प्रीति तथा सन्तान है, ज्ञान का फल शील एवं आचार है ।

(८८) नारद ने युधिष्ठिर से पूछा—क्या दूर देश से लाभ उठाने के लिए आए व्यापारियों से यथायोग्य चुंगी आदि ली जाती है ?

(८९) हे राजन् ! क्या तेरे नगर और राष्ट्र में उन लोगों का मान होता है जो छल के द्वारा ठगे न जाकर क्रय-विक्रय योग्य पदार्थों को लाते हैं ?

(९०) हे तात ! क्या तुम वृद्धों की धर्म-अर्थ युक्त बातों को सुनते हो और धर्म-अर्थ के यथार्थ वेत्ताओं की बात भी सुनते हो ?

(९१) कृषि से उत्पन्न होने वाले अन्न और गौओं से उत्पन्न होने वाले दूध-घी आदि पदार्थ विद्वानों को बिना मूल्य दिए जाते हैं ?

(९२) क्या सभी शिल्पियों को निश्चित वेतन तथा निर्माण के उपकरण कम से कम चार मास के लिए पर्याप्त दिए जाते हैं ?

(९३) राजन् ! क्या तुम कृतज्ञ हो ? उपकारी की प्रशंसा करते हो ? सज्जनों के बीच उसका सम्मान करते हो ?

पशु विद्या और शस्त्र-अस्त्र विद्याएँ

(९४) क्या तुम सूत्र रूप में हाथी, घोड़ा, रथ इत्यादि की विद्याएँ जानते हो ?

(९५) क्या तेरे घर में धनुर्वेद में सूत्र और नगर हितकारी आग्नेय पदार्थों के यन्त्र इत्यादि हैं ?

(९६) क्या तुम्हें शस्त्र-अस्त्र विद्या तथा शत्रुनाशक सब प्रकार के विष प्रयोग ज्ञात हैं ?

(९७) क्या तुम अपने राष्ट्र को अग्नि, हिंसक पशु, रोग और रोग के कीटाणुओं से सुरक्षित रखते हो ?

अपाहिजों की रक्षा

(९८) क्या तुम अन्धों, गूंगों, पंगुओं, अंगहीनों, बन्धुहीनों और संन्यासियों को मित्र की भाँति पालते हो ?

(९९) हे राजन् ! क्या तुमने निद्रा, आलस्य, भय, क्रोध, अत्यन्त कोमलता, दीर्घ सूचता—इन छः दोषों का त्याग कर दिया है ?

युधिष्ठिर का निवेदन और नारद का प्रस्थान

(१००) युधिष्ठिर ने नारद के इन सब प्रश्नों के उत्तर में जिनमें नीति के गूढ तत्व अन्तर्निहित हैं कहा—महाराज ! जैसी आपने कहा मैं वैसा ही करूँगा। आपके इन ज्ञानवर्धक प्रश्नों से मेरी बुद्धि अधिक तीव्र हो गई है।

(१०१) नारद ने कहा ! हे राजन् ! जो राजा प्रजा और वर्ण-आश्रम की रक्षा के लिए ऐसा व्यवहार करता है, वह इस लोक में अत्यन्त सुखपूर्वक स्वराज्य प्राप्त करता है।

इतना कहकर नारद ने युधिष्ठिर से कहा—मैं अब आपसे विदा होता हूँ। मुझे अब दाशाह नगरी जाना है।

नारद कुन्ती पुत्रों से ऐसा कहकर अपने साथी ऋषियों के साथ विदा हो गया। नारद के चले जाने पर युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ श्रेष्ठयज्ञ राजसूय के सम्बन्ध में विचार करने लगा।

दण्ड नीति

अर्जुन द्वारा युधिष्ठिर को युद्ध के लिए प्रेरणा

(१) राजदण्ड ही सारी प्रजा का पालन करता और दण्ड ही रक्षा करता है, दण्ड ही सोते हुए मनुष्यों में जागता है। इससे विद्वानों ने राजा का धर्म प्रजा का अनुशासन ही माना है।

(२) यह राजदण्ड ही प्रजा में धर्म, अर्थ और काम की रक्षा करता है। इससे राजदण्ड ही त्रिवर्ग का संग्रह करने वाला सिद्ध होता है।

(३) दण्ड से ही प्रजा के धन-धान्य की रक्षा हो सकती है। तुम सारे धर्म के तत्त्व को समझ लो और लौकिक धर्म—कर्म योग—का अनुसरण करो।

दण्ड का भय सबसे अधिक

(४) कई पापी राजा के दण्ड के भय से ही पाप नहीं करते और कई यमराज के दण्ड और परलोक के भय से पाप से बचे रहते हैं।

(५) किसी को आपस में एक-दूसरे की निन्दा का भय लगा रहता है और पाप से पृथक् रहते हैं। इस प्रकार लोक में सब कुछ दण्ड के आश्रित है।

(६) दण्ड के भय से ही लोग एक-दूसरे को नहीं खा रहे हैं। यदि राजा दण्ड का पालन न करे तो सब अन्धकार में डूबकर मर जाएँ।

(७) यह दण्ड उद्धत लोगों का दमन और चोर लुटेरे जैसे अशिष्ट पुरुषों को दण्ड देने वाला है। दमन और शासन के कारण ही विद्वान् दण्ड को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।

(८) ब्राह्मण को वाणी का दण्ड, क्षत्रिय को भुजा का बन्धन, वैश्य को दान के दण्ड का विधान है। शूद्र निर्दण्ड माना गया है। उसे सेवा के सिवाय अन्य प्रकार के किसी दण्ड का विधान नहीं है।

(९) हे राजन्! लोगों को अपने-अपने नियम में चलने, धन की रक्षा करने के निमित्त संसार में मनीषियों ने जो मर्यादा स्थापित की है, उसीका नाम दण्ड है।

(१०) इस दण्ड का आकार काला-लाल, आँखें, जिस स्थान पर सावधानता से इसका प्रयोग होता है, वहाँ प्रजा दु:खी नहीं होती। पर राजा को बड़े न्याय से इसका प्रयोग करना चाहिए।

(११) ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी---यह सारे दण्ड के भय से ही अपने-अपने मार्ग पर चलते हैं।

(१२) बिना दण्ड भय के कोई यजन नहीं करता, कोई किसी को अधिकार नहीं देगा। दण्ड भय के विना कोई भी व्यक्ति अपने नियम में स्थित नहीं रह सकता है।

शत्रु नाशक ही पूजा जाता है

(१३) दुष्ट के मर्मस्थलों को आघात पहुँचाए बिना, युद्ध आदि कठिन कर्म के बिना और मत्स्य के समान निर्बलों को खाने वाले दुष्टों के नाश के बिना, कोई राजा लक्ष्मी प्राप्त नहीं कर सकता।

(१४) शत्रु को मारे बिना कीर्ति, वित्त और प्रजापालन नहीं हो सकता। इन्द्र ने वृत्रासुर का वध करके ही स्वर्ग का राज्य प्राप्त किया।

(१५) जो देव युद्ध आदि में शत्रुओं के घातक हुए, संसार में उन्हीं की अधिक पूजा होती है, जैसे, रुद्र, स्कन्द, शुक्र, अग्नि, वरुण, यम इत्यादि।

(१६) काल, वायु, मृत्यु, कुवेर, सूर्य, वसु, मरुत, साध्य, विश्वेदेव—यह सब युद्ध करने और विजय प्राप्त करने वाले हैं। इनके प्रतापी होने से ही जनता इनके सम्मुख झुकती है।

(१७) और (१८) कोई भी मनुष्य ब्रह्मा, धाता, पूषा जैसे शान्ति परायण उदार देवों की पूजा करता नहीं देखा गया, क्योंकि यह किसी को मारते नहीं; सदा उदासीन रहते हैं। जो सब कर्मों में शान्त हो चुके हैं उनमें ही कोई-कोई मनुष्य इनकी पूजा करता देखा गया है।

राज्य रक्षा के लिए शत्रुनाश आवश्यक

(१९) बिना हिंसा किए कोई जीता रह सका हो—मैंने ऐसा कहीं देखा नहीं है। वलवान् जन्तु दुर्बल जीवों को नित्य खाते देखे जाते हैं।

(२०) हे राजन्! नेवला चूहे को, विडाल नेवले को, कुत्ता विडाल को और व्याघ्र कुत्ता, मृग आदि को मार खाते हैं। पर मनुष्य इन सबको खाता-मारता है। तुम काल की इस चाल को देखो।

(२१) जो कुछ भी स्थावर वृक्ष आदि और जंगम पशु आदि हैं, वह सब एक-दूसरे का भोजन बने हुए हैं। यह तो दैव का विधान है। विद्वान् इसे देख किसी प्रकार का मोह नहीं करता।

(२२) हे राजेन्द्र! तुम्हें जिस क्षत्रिय वर्ण में उत्पन्न किया गया है, तुम्हें उसी का कर्म करना उचित है। जो क्रोध-हर्ष को जीत वन में जाना चाहते हैं, वे

मन्द-बुद्धि ही हैं।

(२३) तपस्वी मुनि भी बिना वध के प्राणयात्रा नहीं चला सकते। जल में, अनेक प्राणी रहते हैं और इसी प्रकार पृथ्वी और फलों में भी जीवों का निवास है।

(२४) कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो किसी जीव का वध न करता हो — प्राणयात्रा के लिए। कुछ तो इतने सूक्ष्म प्राणी हैं जो केवल अनुमान से ही जाने जा सकते हैं। इनमें कई तो पलक मारने से ही संसार से विदा होकर अपनी योनि बदल लेते हैं।

(२५) ग्राम से निकल कर और क्रोध-मत्सर आदि का परित्याग कर अनेक मनुष्य मुनि बन जाते हैं। फिर भी मोह आदि में फँसे कुटुम्ब के काम धन्धों में उलझे देखे जाते हैं।

(२६) भूमि को खोद औषधि---वृक्ष आदि को काट और पशु-पक्षियों को हानि पहुँचा मनुष्य यज्ञ करते हैं और स्वर्ग को प्राप्त करते हैं क्योंकि उसमें परोपकार की भावना होती है।

दण्ड से ही राज्य चलता है

(२७) हे कौन्तेय ! मनुष्यों के जितने भी कार्य हैं वे सब उचित दण्ड नीति के प्रयोग से सिद्ध होते हैं—इसमें कोई सन्देह नहीं है।

(२८) यदि लोक में दण्ड की सत्ता न हो तो सारी प्रजा नष्ट हो जाएगी। बलवान् दुर्बलों को इस प्रकार खा जाएंगे जैसे जल में बड़ी मछली छोटी मछली को।

(२९) ब्रह्मा ने सर्वप्रथम यही सत्य कहा था कि उचित विधि से प्रयुक्त दण्ड प्रजा की रक्षा करता है। अग्नियाँ शान्त हो जाती है पर दण्ड के भय से प्रज्वलित हो उठती है।

(३०) यदि संसार में साधु-असाधु का विभाग करने वाला दण्ड न होता तो संसार में केवल अन्धकार ही हो जाता।

(३१) जो वेद निन्दक, नास्तिक, मर्यादा के उच्छेदक हैं वे भी इस दण्ड के भय से सीधे चलते रहते हैं जिससे अन्य प्राणियों को भोगों के साधन प्राप्त होते रहते हैं।

(३२) यह संसार दण्ड के आधीन ही चलता है। धर्म के आश्रय से चलने वाला पुरुष तो कोई विरला ही होता है। दण्ड के भय से ही एक दूसरे का व्यवहार चलता है।

(३३) चारों वर्णों की प्रसन्नता, न्याय का संचालन करने के लिए विधाता ने दण्ड का विधान किया है जिससे पृथ्वी पर धर्म और अर्थ की रक्षा होती है।

(३४) यदि दण्ड से वन के पशु सिंहादि और सर्प आदि तथा पक्षी भयातुर न हों तो वे आज ही सारे मनुष्य और गौ आदि पशुओं को खा जाएँ और यज्ञ के निमित्त कोई हवि आदि पदार्थ न छोड़ें।

(३५) कोई ब्रह्मचारी विद्या अध्ययन न करे, गुरुकुल में कोई गुरु सेवा करता

हुआ गौ न दोहे, न कोई कन्या विवाह के बन्धन में पड़े, यदि संसार में दण्ड विद्यमान न हो।

(३६) यदि दण्ड प्रजा की रक्षा न करे तो सारे संसार का लोप हो जाए, सारी मर्यादाएँ टूट जाएँ और कोई किसी के प्रति ममता न रखे।

(३७) यदि दण्ड न होता तो निर्भीकता के साथ दक्षिणा वाले यज्ञों को कोई विधिवत् सम्पादित न करता।

(३८) कोई भी मनुष्य विधिपूर्वक आश्रम धर्म का पालन न करता और न कोई विद्या पढ़ता, यदि दण्ड का शासन न होता।

(३९) ऊँट, बैल, गधा, घोड़ा-घोड़ी—कोई भी उचित रीति से भार उठाने का कर्म न करते—यदि दण्ड का भय न होता।

(४०) यदि दण्ड न होता तो सेवक स्वामी की आज्ञा का पालन न करता, पति-पत्नी गृहस्थ धर्म का पालन न करते और बच्चे नियम में न रहते।

(४१) सभी प्रजा दण्ड पर स्थित है। दण्ड से सबको भय हो रहा है। मनुष्यों के लिए सुखदायक स्वर्ग दण्ड पर ही स्थित है।

(४२) जहाँ उचित रीति से शत्रु नाशक दण्ड का प्रयोग होता है, वहाँ कोई छल, कपट व प्रवंचना दिखाई नहीं देती है।

(४३) यदि सम्मुख दण्ड खड़ा दिखाई न दे तो सारी यज्ञ हवि को कुत्ता खा जाए। यदि दण्ड का पालन न हो तो यज्ञ के पुरोडाश को कौआ खाकर समाप्त कर दे।

राज्य की रक्षा—दण्ड और धर्म द्वारा ही

(४४) हे राजन्! अब तो पृथ्वी का राज्य धर्म या अधर्म जैसे भी हो, हमें प्राप्त हो गया है। इस विषय में तुम्हें शोक न करते हुए और राज्य का उपभोग करते हुए धर्मानुसार यज्ञ करना चाहिए।

(४५) शुद्ध वस्त्र धारण करके जो श्रीमन्त सुखपूर्वक धर्म का आचरण करते हैं, वे उत्तम भोग और उत्तम दान व अन्न की वर्षा करते रहते हैं।

(४६) संसार के सारे कार्य धन पर आश्रित हैं और धन दण्ड के आधीन है। दण्ड के इस गौरव को देखो।

(४७) लोकयात्रा के लिए ही धर्म का प्रवचन किया गया है। धर्म की रक्षा के लिए समयानुसार हिंसा और अहिंसा—किसी एक का भी ग्रहण करना श्रेयस्कर है।

(४८) संसार में कोई भी कर्म सर्वथा गुणवान् और कोई भी सर्वथा निर्गुण नहीं कहा जा सकता। सब कार्यों की समय के अनुसार अच्छा व बुरा होने की विवेचना होती है।

(४९) इस संसार में तो ऐसे ही एक-दूसरे को पीड़ित किया जाता है। अन्याय से सब जर्जरित हैं। हे युधिष्ठिर! तुम न्याय का अवलम्बन कर प्राचीन धर्म की पालना करो।

(५०) हे कौन्तेय! यज्ञ करो, दान करो, प्रजा की रक्षा और धर्म का पालन

करो। शत्रुओं का नाश और मित्रों की रक्षा करो।

(५१) हे राजन् ! शत्रुओं का नाश करते हुए तुम्हें किसी प्रकार का शोक नहीं होना चाहिए। इसमें किसी प्रकार की पाप की आशंका मत करो।

(५२) आते हुए आततायी को यदि दूसरा आततायी मार दे तो इसमें कोई पाप नहीं होता क्योंकि उसे तो उसका पाप ही नष्ट कर देता है।

आत्मा का नाश कभी नहीं होता

(५३) अपना आत्मा सबके लिए अवध्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं। जब आत्मा अवध्य ही है, तब यह किसी दूसरे का घातक कैसे हो सकता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

(५४) जिस प्रकार मनुष्य नये घरों में प्रविष्ट होता रहता है, उसी प्रकार जीव भी समय-समय पर शरीर बदलता रहता है।

(५५) तत्त्वदर्शी विद्वान् मृत्यु की व्याख्या यही करते हैं कि जीवात्मा पुराने देहों को वस्त्र की भाँति छोड़ कर नये ग्रहण करता रहता है।

कौटिल्य अर्थशास्त्र

(चाणक्य सूत्र)

१. धर्म का महत्त्व

(१) धर्म सुख का मूल है। (२) धर्म का मूल अर्थ है। (३) अर्थ का मूल राज्य है। (४) राज्य का मूल इन्द्रियों पर संयम करना है। (५) इन्द्रियों पर विजय पाने वाले का मुख्य साधन विनय है। (६) विनय का मूल ज्ञान वृद्धों की सेवा है। (७) वृद्धों की सेवा से व्यवहार कुशलता प्राप्त होती है (८) इस प्रकार व्यवहार कुशलता प्राप्त कर अपने को योग्य शासक वनाए। (९) इस प्रकार व्यवहार कुशलता सीखने वाला आत्म विजयी अर्थात् जितेन्द्रिय हो सकता है। (१०) जितात्मा नीतिमान् लोग समस्त सम्पत्तियों से युक्त होते हैं। (११) राजा की अर्थ सम्पत्ति से प्रजा की भी अर्थवृत्ति होती है।

प्रजा का कोप भयंकर होता है

(१२) प्रजाजन के नीति सम्पन्न होने और राजा के अभाव हो जाने पर भी राज्य का ठीक संचालन होता रहता है। (१३) प्रजा का कोप समस्त कोपों से भयंकर है। (१४) अयोग्य को राजा बनाने की अपेक्षा किसी को भी राजा न बनाना राष्ट्र के लिए अधिक कल्याणकर होता है। (१५) उत्तम गुणों से सम्पन्न होकर राजा अपने लिए गुणी सहायकों को इकट्ठा करे। (१६) अकेला राजा अपने जटिल कर्त्तव्यों का पालन नहीं कर सकता। (१७) जैसे रथ का अकेला चक्र नहीं चल पाता, इसी प्रकार एक तंत्र राज्य नहीं चल सकता। (१८) सहायक ऐसे हों जो सुख-दुःख दोनों में बराबर साथ देने वाले हों। (१९) बुद्धिमान् राजा जटिल समस्या उपस्थित होने पर स्वयं दूसरी विचारपूर्ण योजना का भी मन में चिन्तन कर ले।

मंत्रियों के गुण

(२०) केवल स्नेही होने से किसी व्यक्ति को अपनी मंत्रणा में सम्मिलित न करे। (२१) विद्वान्, बुद्धिमान् और लोभ रहित व्यक्ति को ही मंत्री नियुक्त करे।

(२२) भविष्य में होने वाले सारे कार्य ठीक प्रकार से पहले ही बनाई गई योजना से सफल होते हैं। (२३) मंत्र—(अपनी योजना को) गुप्त रखने से ही सफलता मिलती है। (२४) योजना की गोपनीयता खुल जाने से समस्त कार्य नष्ट हो जाता है। (२५) मन्त्र रक्षा में थोड़ा-सा प्रमाद करने से भी शत्रु के वश हो जाता है। (२६) समस्त द्वारों को रोककर मन्त्र की रक्षा करनी चाहिए। (२७) मन्त्र रूपी सम्पत्ति की पूर्ण रक्षा से ही राज्य की वृद्धि होती है। (२८) मन्त्र रक्षा को सब नीतिज्ञ विद्वान् श्रेष्ठतम कर्म बताते हैं। (२९) अन्धेरे में दीपक के समान मन्त्र (योजना) होता है। (३०) मन्त्र रूपी आँख से राजा शत्रु के दोषों को देख सकता है। (३१) मन्त्र (परामर्श) ग्रहण करते समय मन्त्र दाता के छोटे-बड़े होने के बारे में ध्यान नहीं देना चाहिए। (३२) मन्त्रणा देने वाला, मन्त्रणा लेने वाला और मन्त्रणा का स्वरूप—तीनों में एकता होने पर मन्त्र की श्रेष्ठता होती है।

मन्त्रियों के कुछ विशेष गुण और नियुक्ति

प्रधानमन्त्री का पहला कर्त्तव्य यह है कि वह अपने सहायक मन्त्री नियुक्त करे। उसके सम्बन्ध में हमें चाणक्य सूत्रों में स्पष्ट और सुन्दर निर्देश मिलते हैं। आचार्य चाणक्य के नीति विषयक तीन ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं—(१) कौटिल्य का अर्थशास्त्र, (२) चाणक्य नीति और (३) चाणक्य सूत्र। इन तीनों में से संक्षिप्त और स्पष्ट होने के कारण चाणक्य सूत्र अत्यन्त उपयुक्त है। प्रत्येक शासक को और विशेष रूप से भारतीय शासक को चाणक्य सूत्रों का अनुशीलन अवश्य करना चाहिए।

चाणक्य सूत्रों में मन्त्री की नियुक्ति के बारे में कहा है—

"श्रुतवन्तमुपधाशुद्धं मन्त्रिणं कुर्वीत।"

विद्वान् और लोभरहित व्यक्ति को मन्त्री पद पर नियुक्त करे।

मन्त्री विद्वान् हों, यह आवश्यक है। मूर्ख मन्त्री 'जी हुजूर' बन सकते हैं, मंत्रणा के योग्य नहीं हो सकते।

मन्त्रियों का निर्लोभ होना अत्यन्त आवश्यक है। यह कार्य चोटी से आरम्भ होता है। मुख्य शासक निर्लोभी और सादा होगा, तो उसके सहायक भी तदनुरूप होंगे।

यह समझना कठिन नहीं है कि यदि आचार्य चाणक्य प्रधानमन्त्री होते तो वह केवल उन्हीं मन्त्रियों को नियुक्त करते जो जिस विषय के मन्त्री बन रहे हैं, उसके विशेषज्ञ हों, और अर्थ लोभ से ऊँचे उठे हुए हों। उनकी महत्त्वाकांक्षा यह होती कि वह विशुद्ध जीवन व्यतीत करते हुए जब कार्य से अलग हों, तो उनके बैंक में या ज़मीन में, या कारखानों में बहुत-सा धन हो या नहीं, प्रजा के हृदय में उनके प्रति कृतज्ञता का भाव अवश्य हो।

मन्त्रियों के बारे में आचार्य का दूसरा निर्देश यह है—

"अविनीतं स्नेहमात्रेण न मन्त्रे कुर्वीत।"

जिसमें शिष्टाचार और सज्जनता न हो उसे केवल प्रिय होने के कारण मन्त्री न बनाए।

यदि इन गुणों से हीन कोई मन्त्री होता तो आचार्य उसे हटा देने में देर न लगाते।

विदेशी नीति का आधार

विदेशी सम्बन्धी नीति के विषय में आचार्य का मत प्रसिद्ध है, आचार्य ने कहा है—

अनन्तरः प्रकृति-शत्रुः

जिस देश की सीमा अपने देश से मिलती है वह अपना स्वाभाविक शत्रु है।

स्वाभाविक शत्रु का यह अभिप्राय नहीं कि दोनों पड़ोसी सदा लड़ते रहते हैं, या उन्हें लड़ते रहना चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि ऐसे अनेक कारण हैं; जिनसे दो पड़ोसी देशों में सदा संघर्ष की सम्भावना बनी रहती है। इस कारण पड़ोसी देशों के शासकों को एक-दूसरे से सावधान रहना चाहिए। किसी देश के शासक को यह न समझना चाहिए कि अमुक पड़ोसी से हमारा कभी झगड़ा नहीं हुआ, इस कारण आगे भी कभी न होगा। फलतः, यदि आचार्य चाणक्य पर भारत के शासन का भार होता तो वह चीन, पाकिस्तान और बर्मा—तीनों के सीमा प्रान्तों पर सुरक्षा का समान रूप से प्रबन्ध करते। यह समझ कर कि सांस्कृतिक और धार्मिक क्षेत्र में चीन भारत का इतना ऋणी है कि वह कृतज्ञतावश सदा भारत का मित्र बना रहेगा, ऐसी निराधार कल्पना आचार्य के दिमाग में नहीं आ सकती थी।

देशों की मित्रता का आधार

दो देश कैसे मित्र बने रहते हैं, इस प्रश्न का समाधान चाणक्य के इस सूत्र से होता है—

नातप्तलौहो लौहेन सन्धीयते।

बराबर तपे हुए लोहे ही परस्पर मिल सकते हैं, ठंडे लोहे नहीं। यह निश्चयात्मक बात समझनी चाहिए कि केवल शांति की रट लगाने से या शांति की संधि करने से भी स्थिर शांति नहीं रह सकती; शांति सम्भव है, शक्तिशाली बनने से। देश को तपा हुआ लोहे का गोला बनना चाहिए ताकि अन्य तपे हुए गोले उससे संहित हो सकें।

चाणक्याचार्य के ये विदेश नीति सम्बन्धी सिद्धांत संसार के कई सदियों के इतिहास से शत-प्रतिशत सिद्ध होते हैं। जर्मनी और फ्रांस, फ्रांस और इंग्लैंड, जर्मनी और रूस, बीच-बीच में कभी-कभी मित्र हो जाते हैं, परन्तु इतिहास बतलाता है कि मित्रता किसी अति प्रबल शत्रु के कारण उत्पन्न होती है और भय के जाते ही काफूर हो जाती है। उन देशों में रूप-रंग, वेशभूषा और धर्म में अतिशय समानता रही है, फिर भी पड़ोसी के नाते जिन नैतिक संघर्षों का उत्पन्न होना अनिवार्य है उनके कारण पन्द्रह-बीस वर्षों के बाद किसी-न-किसी देश में झड़प शुरू हो जाती है।

देश की गृह-नीति का आधार

गृह-नीति के बारे में कुछ शब्द लिखने आवश्यक हैं। इस बारे में चाणक्य के कुछ सूत्र हैं—

> दण्डनीतिमधितिष्ठन् प्रजाः संरक्षति।
> दण्डः सम्पदा योजयति दण्डाभावे
> मन्त्रिवर्गाभावः। दण्डनीत्यामायत्तमात्म-
> रक्षणम्। दण्डपारुष्यात्सर्वजनद्वेष्यो भवति।

जो शासक दण्ड का प्रयोग करता है, वह प्रजा की रक्षा कर सकता है। दण्ड से राष्ट्र के ऐश्वर्य की रक्षा होती है। यदि समुचित दण्ड का प्रयोग न किया जाए तो अच्छे सलाहकार भी नहीं मिलते। शासन की रक्षा के लिए दण्ड नीति आवश्यक है। किन्तु यह ध्यान रहे कि यदि दण्ड का प्रयोग कठोरता से किया जाए तो सब लोग द्वेष करने लगते हैं।

अपराधियों को दण्ड अवश्य मिलना चाहिए। तभी देश सुरक्षित रह सकता है। जिस देश का न्यायतंत्र ऐसा हो कि अपराधियों को दण्ड न मिल सके, मिले तो बहुत देर में, और मिलकर अकारण वापस ले लिया जाए, उस देश में अपराध बढ़ने लगते हैं। निश्चय है कि यदि चाणक्य भारत के प्रधानमन्त्री होते तो वह न्यायालयों की दशा ऐसी निर्बल और ढीली न रहने देते।

पहले तो गरीब के लिए न्यायालय के द्वार तक पहुँचना कठिन है, पहुँच जाए तो पुष्कल धन के बिना अभियोग नहीं लड़ा जा सकता, फिर हाईकोर्ट और सुप्रीम-कोर्ट तक पहुँच भी जाए तो या तो अपराधी छूट जाएगा, अथवा अभियोक्ता का दीवाला निकल जाएगा।

चाणक्याचार्य के शासन में ऐसी पेचीदा, महंगी न्याय-प्रणाली न रहती। उसमें खूनी और लुटेरे निर्दयतापूर्वक न विचरते और शांतिप्रिय भले नागरिकों को दुबकने की जरूरत न पड़ती। अपराधी को यह निश्चय होना चाहिए कि उसे दण्ड मिलेगा, तभी अपराध रुक सकते हैं, अन्यथा नहीं।

समझा जाता था कि विद्या और विज्ञान की उन्नति के साथ-साथ अपराध की प्रवृत्ति घटती जाएगी, परन्तु हुआ है उल्टा ही। अनाचार, बलात्कार और आततायीपन के साधनों को वैज्ञानिक उन्नति ने बढ़ा दिया है, और इंग्लैंड से ली हुई न्याय-प्रणाली से बड़े-बड़े वकीलों और कानूनी नुक्तों के द्वारा अपराधी को न्यायालय से मिलने वाले दण्ड की आशंका बहुत कम हो गई है। फलतः, देश में दिन-दहाड़े खुले अपराध करने की प्रवृत्ति हो रही है।

आज शासन को चाणक्याचार्य की आवश्यकता है, सन्तों की नहीं। सन्त यदि जनता के आचरण सम्बन्धी स्तर को ऊँचा करने में लगे रहें तो बड़ी कृपा होगी।

चाणक्य की यही महिमा थी कि वह सेनानी थे, विद्वान् भी थे, और शासक

भी थे। वे सब प्रवृत्तियों की सीमा को जानते थे। उनमें आदर्श और व्यावहारिकता का समन्वय था।

सादगी और समन्वय बुद्धि में यदि किसी वर्तमान काल के नीतिज्ञ को आचार्य के मार्ग का राही माना जा सकता था वह तो सरदार बल्लभ भाई पटेल थे।

यदि भारत के वर्तमान भाग्यविधाता चाणक्य के सूत्रों का और अर्थशास्त्र का ध्यान से अनुशीलन करें तो अवस्थाओं में भारी भेद होते हुए भी आज के शासन के चलाने के लिए बहुत उत्तम निर्देश प्राप्त कर सकते हैं। प्रजातंत्र के नवीन सिद्धान्तों को अपनाने के साथ-साथ यदि हम भारत की प्राचीन शासन-प्रणाली की सादगी तथा पेचीदगियों से रहित कार्यक्षमता को अपनाने का यत्न करें, और शासनकर्ता जनता के साथ व्यक्तिगत सम्बन्ध रखने की प्रवृत्ति को बढ़ा सकें तो हमारे स्वराज्य को सुराज्य बनने में बहुत सहायता मिलेगी।

राज्यतन्त्र के चार लक्षण

(३३) कार्य-अकार्य—दोनों की वास्तविकता को ठीक समझने वाले मन्त्री होने चाहिए। (३४) छः कानों में पहुँचने पर मन्त्र फूट निकलता है। (३५) आपत्तियों में स्नेह करने वाला ही मित्र होता है। (३६) सच्चे मित्रों का संग्रह करने से बल मिलता है। (३७) बलवान् मित्रों की सहायता से अप्राप्त को प्राप्त करने का यत्न करे। (३८) अप्राप्त ऐश्वर्य को आलसी प्राप्त नहीं कर सकता। (३९) आलसी प्राप्त ऐश्वर्य की भी रक्षा नहीं कर सकता। (४०) आलसी प्राप्त ऐश्वर्य को बढ़ा नहीं सकता। (४१) आलसी व प्रमादी कर्मचारियों से राजा ठीक प्रकार काम नहीं ले सकता। (४२) राज्य तन्त्र के चार लक्षण हैं—१. अलब्ध का लाभ २. लब्ध की रक्षा ३. रक्षित की वृद्धि ४. रक्षित का उचित कार्यों में विनियोग (४३) राज्य-व्यवस्था नीतिशास्त्र के आधीन होनी चाहिए। (४४) स्वराष्ट्र और परराष्ट्र—दोनों प्रकार के कर्त्तव्य राष्ट्र व्यवस्था के ही अंग हैं। (४५) अपने राष्ट्र की व्यवस्था तन्त्र कहाती है। (४६) परराष्ट्र सम्बन्धी व्यवस्था 'आवाप' अर्थात्, पड़ोसी राष्ट्र से सम्बन्ध रखने वाली होती है।

सन्धि और विग्रह

(४७) जिनके साथ सन्धि और विग्रह हो वह मण्डल, अर्थात्, पड़ोसी राज्य कहा जाता है। (४८) नीतिशस्त्र का अनुगामी होना राजा का कर्त्तव्य है। (४९) अपने देश की सीमा के साथ मिलने वाला राज्य स्वभाव से शत्रु होता है। (५०) निकटस्थ शत्रु राज्य से अगला राज्य, स्वभाव से, अपने राष्ट्र का मित्र बन जाता है। (५१) शत्रु-मित्र, अकारण न होकर, कारणवश होते हैं। (५२) निर्बल राष्ट्र सशक्त राज्य के साथ सन्धि कर ले। (५३) सन्धि करने वाले दोनों राष्ट्रों में तेजस्वता ही सच्चा कारण होती है। (५४) जैसे बिना तपे लोहे की तपे लोहे से

सन्धि नहीं हो सकती। (५५) वलवान् राजा शत्रु को हीन पाकर उससे युद्ध कर ले। (५६) अधिक वलवान् व समान वलवाले से भी विग्रह न करें। (५७) बलवान् से विग्रह करना पैदल सेना का गज युक्त सेना से युद्ध करने के समान है। (५८) जैसे कच्चा पात्र कच्चे पात्र से टक्कर लेने से दोनों ही नष्ट हो जाते हैं, वैसे समान शक्ति वाले दोनों ही राष्ट्र युद्ध करने से नष्ट हो जाते हैं। (५९) शत्रु के प्रयत्नों की ठीक जाँच—पड़ताल करता रहे। (६०) सन्धि व विग्रह दोनों अवस्थाओं में शत्रु पर कड़ी दृष्टि रखे। (६१) बाहर व भीतर--दोनों प्रकार के शत्रुओं से अपनी रक्षा करे। (६२) शक्तिहीन राजा किसी बलशाली का आश्रय ले। (६३) दुर्बल के साथ मिलना दुःख को निमंत्रित करना है। (६४) किसी राजा से सन्धि का सम्वन्ध जोड़ने पर भी अग्नि के समान उससे अपनी हानि न होने के लिए सावधान रहे।

व्यसनों का त्याग : दण्ड नीति का पालन

(६५) राजद्रोह न करे। (६६) उद्धत वेष धारण न करे। (६७) प्रजाजन राजा के मुकुट, छत्र, चाकर, ध्वज आदि का अनुकरण न करे। (६८) अपने से ईर्ष्या करने वाले दोनों विरोधियों में कूटनीति से द्वेष पैदा करे। (६९) व्यसन में आसक्त रहने से सफल कर्म नहीं हो सकता। (७०) इन्द्रियों का दास राजा चारों प्रकार की सेनाओं से सुसज्जित होता हुआ भी नष्ट हो जाता है। (७१) जूए में फँसा कर्त्तव्य से गिर जाता है। (७२) शिकार आदि में फँसा धर्म और अर्थ—दोनों को नष्ट कर देता है। (७३) जीवन साधनों का संग्रह व्यसन नहीं माना जाता। धन त्याज्य नहीं है। (७४) कामासक्त चरित्रहीन व्यक्ति किसी काम को ठीक प्रकार नहीं कर सकता। (७५) कठोर वाणी अग्नि दाह से भी अधिक दुःखदायी होती है। (७६) दण्ड के अति कठोर होने से शासक जनता का द्वेष भाजन बन जाता है। (७७) लक्ष्मी से सन्तुष्ट राजा को लक्ष्मी त्याग देती है। (७८) राजा की दण्ड नीति की अयोग्यता से शत्रु का प्रादुर्भाव होगा। (७९) दण्ड नीति का उचित प्रयोग करने वाला ही प्रजा की रक्षा कर सकता है। (८०) समुचित दण्ड ही राजा को सम्पत्ति से युक्त करता है। (८१) दण्ड नीति की उपेक्षा करने से अच्छे मन्त्रियों का अभाव हो जाता है। (८२) दण्ड की समुचित व्यवस्था से दुष्ट लोग नीति हीन कार्यों से निवृत्त रहते हैं। (८३) दण्ड नीति की ठीक व्यवस्था से ही आत्म रक्षा हो सकती है।

उपाय और पुरुषार्थ

(८४) आत्मरक्षा होने पर ही समस्त राष्ट्र रक्षित रहता है। (८५) मनुष्य की वृद्धि और विनाश आत्मा के ही आधीन है। (८६) दण्ड का प्रयोग बुद्धि के साथ किया जाना चाहिए। (८७) दुर्बल राजा का भी अपमान नहीं करना चाहिए। (८८) जैसे अग्नि कभी दुर्बल नहीं होती, ऐसे ही मानव कभी दुर्बल नहीं होता। (८९) राजा की योग्यता उसकी दण्ड वृत्ति से ही प्रकट होती है। (९०) मनुष्य व राजा के चरित्र पर ही अर्थ प्राप्ति निर्भर करती है। (९१) धर्म का अनुष्ठान और उत्तम कामनाओं की

पूर्ति अर्थ पर निर्भर करती है। (९२) धन-कार्य, प्रेरणा और उत्साह का मूल है। (९३) धन होने पर अल्प प्रयत्न से कार्य सिद्धि हो जाती है। (९४) उपाय का ठीक प्रयोग करने से कोई कार्य कठिन नहीं रहता। (९५) उपाय स्थिर किये विना बना हुआ कार्य भी नष्ट हो जाता है। (९६) सफलता चाहने वाले के लिए उपाय ही सहायक है। (९७) कोई भी कार्य पुरुषार्थ से किये जाने पर सफल हो जाता है। (९८) दैव पुरुषार्थ के पीछे चलता है। (९९) भाग्य की प्रतिकूलता होने पर पुरुषार्थ विफल हो जाता है। (१००) चंचल चित्त वाले पुरुष के पास सद्व्यवहार नहीं रहता।

२. समय की पहचान आवश्यक

(१०१) कार्य प्रारम्भ करने से पहले उसके फल-अफल का चिन्तन कर ले। (१०२) कार्य के मध्य में दीर्घसूत्रता (अति विलम्ब) न करे। (१०३) अस्थिर चित्त वाले के काम पूरे नहीं होते। (१०४) हाथ के साधनों का ठीक उपयोग न करने से कार्य का नाश हो जाता है। (१०५) संसार में सर्वथा निर्दोष कार्य दुर्लभ होते हैं। (१०६) निश्चित शुभ परिणाम न देने वाले कार्यों को हाथ में न ले। (१०७) अनुकूल समय को पहचानने वाला अपना काम सिद्ध कर लेता है। (१०८) कर्त्तव्य का काल टल जाने से काल ही उसकी सफलता को चाट जाता है। (१०९) किसी भी निश्चित कर्तव्य में क्षण मात्र भी विलम्ब न करे। (११०) परिस्थिति और सफलता की संभावना—दोनों को जानकार ही काम प्रारम्भ करे। (१११) दैव की प्रतिकूलता होने पर सुख साध्य कर्म भी दुःसाध्य हो जाता है। (११२) नीतिज्ञ देश और काल —दोनों की परीक्षा करे। (११३) समय पहचान कर कर्म करने वाले के पास सफलता देर तक ठहरती है। (११४) साम, दान, दण्ड, भेद आदि सब उपायों से समस्त सम्पत्तियों का संग्रह करे। (११५) समय की पहचान न करने वाले भाग्यवान को भी सफलता छोड़ देती है। (११६) अनुभव और विचार से परीक्षा करनी चाहिए।

विघ्नों का निवारण

(११७) जो जिस काम में कुशल हो, उसे उसी काम पर नियुक्त करे। (११८) उपाय को समझने वाला दुष्कर काम को भी सहज बना लेता है। (११९) अज्ञानी के कर्म की सफलता को बहुत महत्त्व नहीं देना चाहिए। (१२०) स्वेच्छाचार और अविवेक से कोई काम बन भी जाए तो घुन के कीड़े से बने आकार की तरह उसे महत्त्व न दे। (१२१) कर्मसिद्ध हो जाने पर ही उसका प्रकाशन करे। (१२२) दैव की प्रतिकूलता से ज्ञानियों के कार्य भी, अधूरे रह जाते हैं। (१२३) दैवी विपत्तियों का शान्ति के साथ निवारण करना चाहिए। (१२४) मानवीय विघ्नों को बुद्धि कौशल से परास्त करे। (१२५) कार्य बिगड़ जाने पर मूर्ख लोग इधर-उधर के दोषों का वर्णन करते हैं। (१२६) कार्य की सफलता चाहने वाले को भावुकता व सरलता में नहीं फँसना चाहिए। (१२७) दुग्धपान के इच्छुक बछड़े को अपनी माता के स्तनों पर आघात करना पड़ता

है। (१२८) पूर्ण प्रयत्न न करने पर कार्य का नाश हो जाता है। (१२९) केवल भाग्य के भरोसे रहने वाले को सिद्धि प्राप्त नहीं होती। (१३०) कर्तव्य को छोड़ इधर-उधर भागने वाला अपने आश्रितों का भरण-पोषण नहीं कर पाता। (१३१) अपने सामयिक कर्तव्य को न पहचानने वाला अन्धा होता है।

अमृत भोजी

(१३२) प्रत्यक्ष, परोक्ष और अनुमान से कार्यों की परीक्षा करे। (१३३) बिना विचारे काम करने वाले को सफलता त्याग देती है। (१३४) विपत्ति को विचार के साथ हटाना चाहिए। (१३५) अपनी शक्ति को ठीक समझ कर ही कार्य प्रारम्भ करे। (१३६) स्वजन, बन्धु, अतिथि इत्यादि का भरण-पोषण कर शेष धन से अपनी जीवन यात्रा चलाने वाला अमृत भोजी होता है। (१३७) सब प्रकार के उचित साधनों से अपनी आय को बढ़ाए। (१३८) भीरू पुरुष को अपने कर्तव्य की चिन्ता नहीं होती। (१३९) स्वामी के स्वभाव व रुचि को देख कार्य में नियुक्त व्यक्ति अपने कार्य की सिद्धि करता है। (१४०) जैसे गौ के स्वभाव को जानने वाला ही दूध को प्राप्त करता है। (१४१) उत्तम पुरुष छोटे, नीच व्यक्ति को अपनी गुप्त बात नहीं कहता। (१४२) अत्यन्त कोमल स्वभाव का व्यक्ति अपने आश्रितों से भी अनादर प्राप्त करता है। (१४३) छोटे अपराध में कठोर दण्ड देने वाला सबकी घृणा का पात्र बनता है। (१४४) यथा योग्य दण्ड देना ही उचित है। (१४५) विद्वान् होने पर भी जो गम्भीर नहीं है, उसे लोग प्रतिष्ठा से नहीं देखते। (१४६) शक्ति से अधिक कार्य का बोझ मनुष्य को कष्ट में डाल देता है। (१४७) सभा में जो दूसरे के दोष को ही देखता है, वह अपने दोषों की ही घोषणा करता है।

धर्म और अर्थ का संग्रह

(१४८) अपनी शक्ति को न समझने वाले व्यक्ति का क्रोध उसी के लिए विनाशक होता है। (१४९) सत्य का पालन करने वाले के लिए कुछ अप्राप्त नहीं रहता। (१५०) जल्दबाजी से किसी कार्य की सिद्धि नहीं होती। (१५१) व्यसन में फँसा व्यक्ति स्थिति की गहराई में न जाने से अपना कर्त्तव्य भूल जाता है। (१५२) काल का ठीक प्रकार प्रयोग न करने से विघ्नों से छुटकारा नहीं मिल सकता। (१५३) निश्चित मृत्यु की अपेक्षा संग्राम क्षेत्र में युद्ध करते हुए अनिश्चित मृत्यु को प्राप्त करना अधिक कल्याण प्रद है। (१५४) दूसरे के धन को धरोहर रूप में रखने वाला केवल अपने ही स्वार्थ को देखता है। (१५५) पात्र की सहायता करना धर्म है। बदले में दूसरे से कुछ पाने की अपेक्षा किये बिना निःस्वार्थ अर्थ दान ही श्रेष्ठ है। (१५६) अनार्य-अज्ञानी-समाज में प्रचलित परम्परागत व्यर्थ आचरण ही भारी अनर्थ है। (१५७) जो धर्म और अर्थ दोनों में से किसी को नहीं छोड़ता, वही, वास्तविक, काम करता है। (१५८) धर्म और अर्थ विरोधी काम अनर्थकारक होता है। (१५९) निष्कपट स्वभाव का व्यक्ति मनुष्यों में दुर्लभ है। (१६०) साधु-उत्तम व्यक्ति वह है—जो

अपनी साधुता पर कलंक लगा देने वाले गर्हित ढंग से आने वाले ऐश्वर्य को तृण के समान अस्वीकार कर देता है। (१६१) मनुष्य का एक भी दोष बहुत से गुणों को दोष का रूप दे देता है। (१६२) महात्मा पुरुष धर्म कार्यों को दूसरे के भरोसे पर न रह कर अपने ही विश्वास पर काम करते हैं। (१६३) कभी भी अपने सत् चरित्र के विपरीत काम न करे। (१६४) भूखा शेर जैसे कभी घास नहीं खाता, इसी प्रकार साधु, विपरीत स्थितियों में भी, अपने धर्म मार्ग का त्याग न करे। (१६५) उत्तम पुरुष अपने प्राणों से भी अधिक अपनी विश्वासपात्रता की रक्षा करे। (१६६) विश्वासघाती और चुगलखोर को उसके घर के लोग भी छोड़ देते हैं। (१६७) बच्चे से भी उपयोगी बात सुन लेनी चाहिए। (१६८) कटु सत्य को भी अयोग्य के सम्मुख नहीं बोलना चाहिए। (१६९) किसी के अल्प दोष को देख उसके महत्त्वपूर्ण गुणों का त्याग नहीं करना चाहिए। (१७०) विद्वानों में भी दोष निकालना सहज है।

संसर्ग के परिणाम

(१७१) कोई भी रत्न त्रुटि रहित नहीं होता। इसी प्रकार उत्तम पुरुष में भी दोष हो सकते हैं। (१७२) मर्यादा का उल्लंघन करने वाले पर कभी विश्वास न करे। (१७३) शत्रु के प्रिय व्यवहार को भी द्वेष युक्त ही समझना चाहिए। (१७४) नम्रतापूर्वक कुएँ में घुसने वाली ढोकली उसके पानी को खाली कर देती है। इसी प्रकार दुष्ट की दिखावटी नम्रता पर विश्वास न करे। (१७५) श्रेष्ठ अनुभवी पुरुषों के सिद्धान्तों के विरुद्ध आचरण न करे। (१७६) निर्गुण व्यक्ति भी गुणवान् के संसर्ग से गुणी हो जाता है। (१७७) दूध में मिला जल भी दूध हो जाता है। इसी प्रकार गुणी पुरुष के साथ संसर्ग से व्यक्ति गुणवान् हो जाता है। (१७८) मिट्टी का ढेला भी सुगन्धित पुष्प के संसर्ग से सुगन्ध ग्रहण कर लेता है। (१७९) चाँदी सोने के साथ मिल जाने से सोना ही बन जाती है। (१८०) अज्ञानी पुरुष अपने हितकर्ता को भी हानि पहुँचाने से विमुख नहीं होता। (१८१) पापी को निन्दा का भय नहीं होता। (१८२) दुर्दान्त शत्रु भी उत्साह वालों के वश में आ जाते हैं। (१८३) तेजस्विता ही राजा का धन है। (१८४) आलसी को वर्तमान और भविष्य में भी सफलता नहीं मिलती। (१८५) उत्साह के बिना सफलता भी हाथ से निकल जाती है।

शत्रु के प्रति व्यवहार

(१८६) मछलीमार जल में घुसने का संकट लेकर ही मछली पकड़ सकता है। ऐसे ही पुरुषार्थी को संकट में कूदना ही पड़ता है। (१८७) अपात्रों में विश्वास नहीं करना चाहिए। (१८८) विष सदा विष ही रहता है। ऐसे ही दुष्ट कभी विश्वास योग्य नहीं बन सकता। (१८९) कार्य-संपादन में शत्रुओं से कभी संसर्ग नहीं करना चाहिए। (१९०) उद्देश्य पूर्ति में वैरी का विश्वास न करे। (१९१) लोगों से सम्बन्ध अपने मतलब के अनुसार ही होते हैं। (१९२) शत्रु का पुत्र यदि मित्र हो जाए तो उसकी रक्षा करनी चाहिए। (१९३) शत्रु की जिस निर्बलता पर प्रहार करना हो,

उसे पूरा करने तक उसके साथ कृत्रिम मान व मित्रता का व्यवहार करे। (१६४) शत्रु की निर्वल दशा में ही राजा उसे सब प्रकार की सहायता से वंचित कर दे। (१६५) अपने छिद्र को शत्रु के प्रति कभी प्रकट न होने दे। उसके सम्मुख बलवान् बनकर रहे। (१६६) शत्रु प्रति-पक्षी की निर्बलता पर ही आक्रमण करता है। (१६७) वश में आये शत्रु पर कभी विश्वास न करे। (१६८) राजा स्वपक्ष के व्यक्तियों के दुराचार आदि को प्रबल उपायों से दूर करे। (१६६) दुराचरण के कारण स्वजनों का अपमान विचार-शील व्यक्तियों के लिए दुःख का कारण होता है। (२००) किसी एक व्यक्ति का भी दुराचार का दोष समस्त दल को हीन बल बना देता है।

३. सदाचार का पालन

(२०१) सदाचार शत्रु पर विजय पाने का अमोघ साधन है। (२०२) नीच व्यक्ति सत्पुरुषों के साथ कपट आचरण करने वाला होता है। (२०३) नीच पुरुष को उपदेश नहीं देना चाहिए। (२०४) नीच में विश्वास नहीं करना चाहिए। (२०५) दुर्जन अच्छा व्यवहार पाकर भी अनिष्ट करता है। (२०६) जैसे जंगल की अग्नि स्वभाव से विवश हो चन्दन आदि को भी जला देती है। (२०७) कभी किसी पुरुष का अप-मान न करे। (२०८) क्षमा योग्य पात्र व्यक्ति को सन्ताप न पहुँचाये। (२०६) निर्बुद्धि व्यक्ति एकान्त में कहे रहस्य को प्रकट कर देना चाहते हैं। (२१०) प्रेम-सहानुभूति मौखिक न होकर फल से सूचित होती है। (२११) ऐश्वर्य का फल आज्ञा है। इसलिए राजाज्ञा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। (२१२) मूढ़ मनुष्य दातव्य वस्तु को भी क्लेश से देता है। (२१३) मूर्ख मनुष्य ऐश्वर्य को पाकर भी नष्ट हो जाता है। (२१४) धैर्यहीन का वर्तमान और भविष्य – दोनों दुःखमय होते हैं। (२१५) दुर्जनों के साथ संसर्ग नहीं करना चाहिए। (२१६) शरावी के हाथ के दूध को भी मद्य के समान त्याज्य समझना चाहिए। (२१७) संकट में कर्तव्य मार्ग सुझाने वाली बुद्धि ही होती है।

स्वास्थ्य के नियमों का पालन

(२१८) परिमित भोजन से स्वास्थ्य प्राप्त होता है। (२१६) अपथ्य के कारण अजीर्ण हो तो पथ्य का भी त्याग कर दे। (२२०) भूख के अनुसार खाने वाले को व्याधि नहीं लगती। (२२१) जीर्ण शरीर होने पर व्याधि की उपेक्षा न करे। (२२२) अजीर्ण में भोजन करना दुःखप्रद होता है। (२२३) व्याधि शत्रु से भी अधिक हानि-कारक होती है। (२२४) दान अपनी धन शक्ति के अनुसार हो। (२२५) चतुर, लोभ-परायण व्यक्ति अनुचित घनिष्ठता बढ़ाना चाहता है। (२२६) लोभ मनुष्य की बुद्धि को ढाँप देता है।

(२२७) एकसाथ बहुत कार्य उपस्थित होने पर उनमें से अधिक फलदायक और महत्त्व के कार्य को करे। (२२८) बिगड़े कार्य को अपनी दृष्टि से ही देखे और सुधारे। (२२६) मूर्ख दुःसाहसी होता है। (२३०) मूर्खों के साथ विवाद न करे।

(२३१) मूर्खों के साथ मूर्ख के समान—दण्ड की भाषा में—व्यवहार करे। (२३२) जैसे लोहे से लोहा काटा जाता है। (२३३) मूर्ख को मित्र मिलना संभव नहीं है। (२३४) धर्म से ही मानव समाज चलता है। (२३५) मरने पर धर्म-अधर्म ही मनुष्य के साथ जाते हैं।

धर्म पालन सर्वश्रेष्ठ

(२३६) दया धर्म की जन्मभूमि है। (२३७) धर्म ही सत्य और दान का मूल है। (२३८) धर्म से संसार को जीता जा सकता है। (२३९) मृत्यु भी धार्मिक की रक्षा करती है। (२४०) धर्म विपरीत पाप जहाँ बढ़ जाता है वहाँ धर्म का महा अपमान होने लगता है। (२४१) विनाशोन्मुख लोगों का आचरण ही उनके विनाश की सूचना दे देता है। (२४२) अधर्म बुद्धि मनुष्य के आत्मविनाश की सूचना दे देती है। (२४३) परनिन्दक के पास रहस्य नाम की कोई वस्तु नहीं रहती। (२४४) दूसरों के रहस्य को सुनने का आग्रह नहीं होना चाहिए। (२४५) मुँह लगे अनुचरों का आधिपत्य अधर्म युक्त होता है। (२४६) अपने हितैषियों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। (२४७) दुष्ट होने पर माता भी त्याज्य होती है। (२४८) आत्म-रक्षा के लिए विष युक्त अपना हाथ काट देना चाहिए। (२४९) हितकारी कोई अन्य व्यक्ति भी बन्धु होता है। (२५०) अरण्य से भी व्याधि नाशक औषधि ली जा सकती है। ऐसे ही जो भी हितकारी हो उससे लाभ उठाए। (२५१) चोरों का विश्वास कभी न करे। (२५२) प्रतिकार में उदासीन देखकर शत्रु की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। (२५३) छोटा-सा व्यसन भी सर्वनाश का कारण बन जाता है।

धन का संग्रह आवश्यक

(२५४) अपने को अमर मानकर सदा अर्थ का अर्जन करता रहे। (२५५) अर्थवान् मनुष्य ही सबके सम्मान को प्राप्त करता है। (२५६) स्वर्ग के राजा महेन्द्र का भी अर्थहीन होने पर सम्मान नहीं होता। (२५७) दरिद्रता जीवित मनुष्य को मरण तुल्य बना देती है। (२५८) अर्थवान् व्यक्ति सौंदर्यहीन होने पर भी सुन्दर माना जाता है। (२५९) धन की इच्छा वाले लोग कृपण धनवान् से भी माँगना नहीं छोड़ते। (२६०) धनवान् अकुलीन होने पर भी कुलीन से श्रेष्ठ माना जाता है। (२६१) नीच को अपने अपमान का कोई भय नहीं होता। (२६२) व्यवहारकुशल को जीविका का भय नहीं होता। (२६३) जितेन्द्रिय को विषयों से कोई भय नहीं होता। (२६४) अपना जीवन सार्थक करने वालों को मृत्यु का भय नहीं होता। (२६५) उत्तम पुरुष पराये धन को अपने धन सदृश धरोहर ही मानते हैं। (२६६) दूसरे के धन के प्रति लोभ की भावना नहीं रखनी चाहिए। (२६७) दूसरे के धन के प्रति लोभ की दृष्टि विनाश का कारण होती है। (२६८) दूसरे का एक तिनका भी नहीं चुराना चाहिए। (२६९) पराये द्रव्य का अपहरण अपने धन के विनाश का कारण बन जाता है। (२७०) चोरी

मृत्यु के पाश से भी अधिक दुखदायी होती है। (२७१) शरीर रक्षा के लिए तो अल्प साधन भी पर्याप्त है। (२७२) मृत्यु के बाद औषध का क्या प्रयोजन ?

अन्न सबसे बड़ा धन

(२७३) साधारण काल में अपना प्रभुत्व बनाये रखना ही कर्त्तव्य का रूप धारण कर लेता है। (२७४) नीच की विद्या पाप कर्म में लगती है। (२७५) साँप को दूध पिलाना उसका विष बढ़ाना ही है। वह अमृत पैदा करने वाला नहीं होता। (२७६) संसार में अन्न सदृश कोई धन नहीं है। (२७७) अन्न के अभाव सदृश कोई शत्रु नहीं है। (२७८) निकम्मे व्यक्ति का भूख से मरना अवश्यम्भावी होता है। (२७९) क्षुधापीडित के लिए कुछ भी अभक्ष्य नहीं होता (२८०) मर्यादाहीन इन्द्रियों का उपयोग समय से पहले वार्धक्य ला देता है। (२८१) जो अपने सेवक का सम्मान करता है, वही स्वामी बनने योग्य होता है। (२८२) सहानुभूति हीन प्रभु का सेवक अग्नि की इच्छा से जुगुनू द्वारा आग जलाना चाहता है। (२८३) गुणों का आदर करने वाले स्वामी की सेवा करे।

जीवन संयमित हो

(२८४) अत्यधिक मैथुन से पुरुष का बुढ़ापा होता है। (२८५) नारी का मैथुन से सर्वथा पृथक् रहना बुढ़ापे का कारण हो जाता है। (२८६) नीच और उत्तम में विवाह सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। (२८७) विवाह सम्बन्ध जिनसे नहीं होना चाहिए उनके साथ विवाह सम्बन्ध से आयु, यश और पुण्य का नाश हो जाता है। (२८८) अहंकार से बड़ा कोई शत्रु नहीं है। (२८९) सभा में शत्रु को कटुवाणी से उत्तेजित न करे। (२९०) शत्रु की विपत्ति कानों को प्रिय होती है। (२९१) धन हीन की बुद्धि नष्ट हो जाती है। (२९२) निर्धन के हित वचनों पर कोई ध्यान नहीं देता। (२९३) निर्धन और निकम्मा अपनी भार्या से भी अपमानित होता है। (२९४) जैसे पुष्पहीन आम्र वृक्ष को भ्रमर छोड़ देते हैं, इसी प्रकार धनहीन को लोग छोड़ देते हैं। (२९५) निर्धनों का धन विद्या है। (२९६) विद्या को चोर भी नहीं चुरा सकता। (२९७) विद्या से यश की वृद्धि होती है। (२९८) जिसका यश है, वह कभी नहीं मरता। (२९९) जो दूसरों का कल्याण करता है, वही सत्पुरुष है। (३००) इन्द्रियों को शान्त रखने वाली शक्ति ही 'शास्त्र' है।

४. पति-पत्नी सम्बन्ध

(३०१) शास्त्र विरुद्ध कार्य करने को प्रवृत्त होते समय शास्त्र का अंकुश (जितेन्द्रियता) उसे रोक लेता है। (३०२) नीच की विद्या ग्रहण नहीं करनी चाहिए। (३०३) म्लेच्छ की भाषा न सीखे (३०४) म्लेच्छों से भी सुवृन्त सीख लेना चाहिए। (३०५) गुण ग्रहण करने में उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। (३०६) शत्रु का भी सद्गुण

ग्रहण करना चाहिए। (३०७) विष से भी अमृत ग्रहण कर लेना चाहिए। (३०८) अनुकूल परिस्थिति में ही मनुष्य सम्मान पाता है। अनुभव और आयु से वृद्ध शूद्र पूज्य होता है। (३०९) अपने प्रभाव क्षेत्र में ही मनुष्य पूजा जाता है। (३१०) आर्य स्वभाव की सदा रक्षा करे (३११) कभी भी मर्यादा का उल्लंघन न करे। (३१२) उत्तम पुरुष रत्न का कोई भौतिक मूल्य नहीं है। (३१३) उत्तम स्त्री के गुण कोई रत्न नहीं है। (३१४) गुणी लोग संसार में दुर्लभ होते हैं। (३१५) अपयश मनुष्य के लिए सबसे बड़ा भय है। (३१६) आलसी व्यक्ति को शास्त्र का ज्ञान नहीं होता। (३१७) जो स्त्रैण (स्त्री भोगासक्त) हो, उसे स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती और न ही वह धर्मकृत्य कर सकता है। (३१८) स्त्री भी स्त्रैण पुरुष को अपमान की दृष्टि से देखती है। (३१९) पुरुषार्थी शुष्क तरु को नहीं सींचता है। इसी प्रकार केवल विषयभोग के लिए स्त्री प्रासक्त होना हानिकारक है। उत्तम सन्तान की प्राप्ति के लिए ही पति-पत्नी सहवास होना चाहिए।

पिता-पुत्र और गुरु-शिष्य

(३२०) जैसे रेत को उबालने से भूख नहीं मिटती इसी प्रकार भ्रान्त उपायों से सुख प्राप्ति नहीं हो सकती। (३२१) उत्तम पुरुषों का उपहास नहीं करना चाहिए। (३२२). कारण संग्रह ही कार्य की सफलता का सूचक होता है। (३२३) नक्षत्रों पर भरोसा करने की अपेक्षा कारण संग्रह की अधिक विशेषता है। (३२४) शीघ्र कार्य करने के लिए नक्षत्र परीक्षा नहीं करनी चाहिए। (३२५) परिचय हो जाने पर किसी के दोष छिप नहीं सकते (३२६) स्वयं पापी अपनी दृष्टि दूसरों को भी पापी समझ लेता है। (३२७) स्वभाव का त्यागना कष्ट साध्य होता है। (३२८) दण्ड अपराध के अनुरूप होना चाहिए। (३२९) प्रत्युत्तर प्रश्न के अनुरूप होना चाहिए। (३३०) अपनी आर्थिक स्थिति के अनुकूल ही वेशभूषा होनी चाहिए। (३३१) आचरण, अपने कुल के अनुरूप ही होना चाहिए। (३३२) प्रयत्न कर्म के अनुसार होना चाहिए। (३३३) दान और उसकी माया पात्र के अनुरूप ही होनी चाहिए। (३३४) शरीर की वेशभूषा आयु के अनुरूप ही होनी चाहिए। (३३५) भृत्य को स्वामी के अनुकूल कार्य करना चाहिए। (३३६) पत्नी पति के अनुकूल रहकर ही गृहस्थ की शोभा बन सकती है। (३३७) शिष्य को गुरु की इच्छा के अनुकूल ही होना चाहिए। (३३८) पुत्र को पिता की इच्छा के अनुकूल बर्तना चाहिए। (३३९) अत्यन्त आदर शंका पैदा करने वाला हो जाता है। (३४०) मालिक के कुपित होने पर उसी को प्रसन्न करना चाहिए (३४१) जैसे माता से ताडित बच्चा माता के पास जाकर रोता और शक्ति प्राप्त करता है। (३४२) स्नेही गुरूजनों का रोष कुछ काल के लिए ही होता है। (३४३) मूर्ख अपने अपराध न देखकर दूसरे में ही दोष देखता है। (३४४) धूर्त लोग दूसरों के कपट सेवक होते हैं। (३४५) धूर्त जनकी सेवा का स्वरूप विशिष्ट काम्य पदार्थों की भेंट के रूप में होता है। (३४६) चिरपरिचित व्यक्ति की अत्यधिक सेवा शकनीय हो जाती है। (३४७) जैसे बिगड़ी गौ सहस्र कुत्तों से अधिक उपकारी

होती है, वैसे ही रूखा उपकारी व्यक्ति सहस्रों-अनुपकारियों से श्रेष्ठ होता है। (३४८) कल को मिलने वाले बड़े मोर से अभी मिलने वाला छोटा कबूतर अधिक अच्छा है। (३४९) विषयों का अधिक और अवैध सेवन विनाशकारक होता है।

धन-संग्रह अन्याय के साधनों से ही

(३५०) क्रोध हीन व्यक्ति विजयी होता है। (३५१) अपने अपकारक पर क्रोध करने वाले को अपने आभ्यन्तरिक कोप पर ही कोप करना चाहिए। अर्थात्, क्रोध का निवारण करना चाहिए। (३५२) बुद्धिमान्, मूर्ख, मित्र, गुरु और मालिकों से विवाद नहीं करना चाहिए। (३५३) ऐश्वर्य कभी भी अन्याय के साधनों से रहित नहीं होता। (३५४) धनोपासक सुकर्मों में श्रम नहीं करते। (३५५) जिनके पास कोई वाहन (सवारी) है, वह गति का श्रम नहीं करते। इसी प्रकार धन लोभी सुकर्म नहीं करते। (३५६) पति-पत्नी का सम्बन्ध बिना लोहे की बेड़ी है, अर्थात् स्वेच्छा से स्वीकृत है। (३५७) जो जिस काम में कुशल हो, उसे उसी में लगाना चाहिए। (३५८) पति-पत्नी में किसी एक का कर्कश होना दुःखदायक होता है। (३५९) प्रमाद रहित होकर दम्पति एक-दूसरे का निरीक्षण करने वाले होंगे। (३६१) गृहस्थ में सुख प्राप्त करने के लिए पति-पत्नी एक दूसरे के मार्गदर्शक हों। (३६१) स्त्री में स्थिरता और लोकव्यवहार का ज्ञान आवश्यक है।

राजा के आभूषण क्या हों ?

(३६२) सब गुरुओं में माता सर्वोच्च है। (३६३) सब अवस्थाओं में माता का भरण-पोषण करना सन्तान का कर्तव्य है। (३६४) मनुष्य की विद्वत्ता देह सज्जा से आच्छादित हो जाती है। अर्थात्, केवल बन ठन कर रहने से विद्या का महत्त्व कम हो जाता है। (३६५) स्त्री का आभूषण लज्जा है। (३६६) विद्वानों का आभूषण वेद ज्ञान है। (३६७) धर्मपालन सब मनुष्यों का आभूषण है। (३६८) सब आभूषणों में श्रेष्ठ विनय सहित विद्या है। (३६९) उपद्रव हीन देश में वास करे (३७०) जहाँ बहु-संख्यक उत्तम पुरुष रहते हों। वही देश है। (३७१) राजा के कोप का पात्र नहीं बनना चाहिए। (३७२) राजा से अधिक कोई श्रेष्ठ नहीं है। (३७३) राजा का क्रोध दूर बैठे राज द्रोहियों को भी दग्ध कर देता है। (३७४) राजा के पास खाली हाथ न जाए। (३७५) गुरु और धर्मोपदेष्टा के पास भी खाली हाथ न जाए। (३७६) अपने कुटुम्बी और पारिवारिक जनों के प्रति किसी प्रकार का अन्याय न होने दे। (३७७) राजसभा में नियमित रूप से जाना और वहाँ के निर्णयों से सदा परिचित रहना चाहिए। (३७८) राज-काज से सम्बद्ध व्यक्तियों से मैत्री परिचय रखना चाहिए। (३७९) राज-परिवार की दासियों से सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। (३८०) राजधन के विषय में लोभ न करे।

सन्तान को गुणी बनाए

(३८१) पुत्र के गुणवान् होने पर पिता और समस्त परिवार सुख प्राप्त करता है। (३८२) पुत्रों को विधाओं का पारंगत बनाना चाहिए। (३८३) देश के कल्याण के लिए अपने ग्राम को छोड़ दे। (३८४) ग्राम के हित के लिए कुटुम्ब का त्याग कर देना चाहिए। (३८५) सन्तान लाभ सर्वश्रेष्ठ लाभ है। (३८६) दुर्गति प्राप्त होने पर सन्तान माता-पिता की रक्षा करती है। (३८७) उत्तम सन्तान कुल के यश को बढ़ाती है। (३८८) सन्तान के बिना सुख प्राप्त नहीं होता। (३८९) उत्तम सन्तान की जननी अच्छी भार्या ही है। (३९०) पुत्र की कन्या, की रक्षा करे। (३९१) छात्र-छात्राओं का एकसाथ गुरु से पढ़ना ब्रह्मचर्य विनाशक होता है। (३९२) अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य किसी के साथ सम्बन्ध न रखे। (३९३) पत्नी भोगार्थ न होकर श्रेष्ठ सन्तान उत्पन्न करने के लिए है। (३९४) अपनी दासी को योग्या बनाकर ग्रहण करना दासी का दास हो पतित हो जाना है। (३९५) विनाश की घड़ी आने पर हित वाक्य मूर्ख नहीं सुनता। (३९६) देहधारियों को सुख-दुःख मिलना कभी बन्द नहीं होता। (३९७) माता के पीछे घूमने वाले बछड़े के समान सुख-दुःख कर्मरत व्यक्ति का अनुसरण करते हैं। (३९८) श्रेष्ठ पुरुष स्वल्प उपकार को भी पर्वत के समान बड़ा मानते हैं। (३९९) अकृतज्ञ अपात्र के प्रति उपकार नहीं करना चाहिए। (४००) बुरा व्यक्ति किसी से उपकृत होने पर प्रत्युपकार न करने से उसका शत्रु हो जाता है।

५. सत्य से ही स्वर्ग प्राप्ति

(४०१) सत्पुरुष जब तक स्वरूप उपकरका का प्रत्युपकार नहीं कर लेता, तब तक वह निश्चिन्त नहीं होता। (४०२) पूजनीय व्यक्तियों, वस्तुओं व स्थानों का कभी अपमान नहीं करना चाहिए। (४०३) नेत्र के समान अन्य कोई ज्योति नहीं है। (४०४) चक्षु-ज्ञाननेत्र – ही मनुष्य के पथ-प्रदर्शक हैं। (४०५) नेत्रहीन के लिए संसार यात्रा क्लेशपूर्ण हो जाती है। (४०६) जल में मूत्र न करे (४०७) नग्न होकर जल में प्रवेश न करे। (४०८) जैसा शरीर वैसा ही ज्ञान होता है, अर्थात्, शरीर स्वस्थ हो, तो ज्ञान भी उत्तम होगा। (४०९) जिसकी जैसी बुद्धि होती है, उसका वैभव भी वैसा ही होता है। (४१०) आग में आग न डाले, अर्थात्, क्रोध के उत्तर में क्रोध न करे। (४११) तपस्वी जन पूजा के योग्य होते हैं। (४१२) परस्त्रियों से सम्पर्क न करे। (४१३) अन्नदान भ्रूण हत्या का भी परिमार्जन कर देता है। (४१४) धर्म वेद से बाहर नहीं होता। (४१५) मनुष्य किसी प्रकार भी धर्म का सेवन अवश्य करे। (४१६) सत्य से मनुष्य स्वर्ग सुख प्राप्त करता है। (४१७) सत्य से अधिक श्रेष्ठ कोई तप नहीं है। (४१८) सत्य ही स्वर्ग का साधन है (४१९) मानव समाज सत्य से ही सुव्यवस्थित रहता है। (४२०) सत्य से ही मानव समाज पर दिव्य गुणों की वर्षा होती है। (४२१) अनृत व्यवहार से बढ़कर कोई पाप नहीं है।

विनय—जीवन का भूषण

(४२२) गुरुजनों का छिद्रान्वेषण नहीं करना चाहिए। (४२३) मनुष्य खल-मार्ग का आश्रय करे। (४२४) धूर्त का कोई मित्र नहीं होता। (४२५) जीवन मात्रा दरिद्र के लिए चिन्ता जनक होती है। (४२६) दान में शूर ही सच्चा शूर है। (४२७) गुरु और विद्वानों में भक्ति ही मनुष्य के लिए भूषण है। (४२८) विनय सबसे बड़ा भूषण है। (४२९) अहंकार से पूर्ण कुलीन व्यक्ति से विनीत अकुलीन अधिक अच्छा है। (४३०) सदाचार पालन से आयु तथा यश की वृद्धि होती है। (४३१) अहित-कारी प्रिय वचन नहीं कहना चाहिए। (४३२) अधिकजनों के हित के विरुद्ध किसी एक व्यक्ति का अनुगमन न करे। (४३३) दुर्जनों के साथ साँझे में कोई काम नहीं करना चाहिए। (४३४) सौभाग्यवान् परन्तु नीच व्यक्तियों से सम्बन्ध मत करे। (४३५) ऋण, शत्रु और व्याधि को निःशेष कर देना चाहिए। (४३६) सम्पत्ति युक्त जीवनयापन दीर्घायु और स्वास्थ्य का जनक है।

जिह्वा—विष और अमृत की खान

(४३७) याचकों का अपमान नहीं करना चाहिए। (४३८) कठिन काम कराने के वाद भी दुर्जन उस कार्य के कर्ता को अपमानित करता है। (४३९) कृतघ्न का नरक से कभी छुटकारा नहीं होता। (४४०) मनुष्य की वृद्धि व विनाश उसकी वाणी पर निर्भर करते हैं। (४४१) जिह्वा विष और अमृत की खान है। (४४२) हित और प्रियवादी का कोई शत्रु नहीं होता। (४४३) स्तुति – मधुर वचन से अदृश्य देवता भी प्रसन्न हो जाते हैं। (४४४) अनृत और दुर्वचन का प्रभाव श्रोता पर देर तक मौजूद रहता है। (४४५) राजा के प्रति द्वेषपूर्ण और अप्रिय वचन नहीं कहना चाहिए। (४४६) श्रुति मधुर कोकिल वचनों की तरह राजा व अधिकारी को सन्तुष्ट रखे। (४४७) सत्पुरुष बनने का उपाय स्वधर्मपालन है। (४४८) याचक व कृपण का समाज में कोई सम्मानपूर्ण स्थान नहीं है। (४४९) स्त्री का पति पुत्रादि सहित रहना सौभाग्य है और यही उसका भूषण है।

दुष्ट का स्वभाव नहीं बदलता

(४५०) शत्रु की भी जीविका नष्ट नहीं करनी चाहिए। (४५१) जहाँ जल सुलभ हो वही कृषि योग्य भूमि है। (४५२) एरण्ड वृक्ष का सहारा लेकर महाकाय हाथी को कुपित न करे। (४५३) अत्यन्त पुराने व विशाल शाल्मली के वृक्ष के साथ हाथी नहीं बाँधा जा सकता। अर्थात्, निर्बल समृद्ध होता हुआ भी बलवान् से टक्कर नहीं ले सकता। (४५४) अत्यन्त लम्बा और मोटा होने पर भी कनक चम्पा (कनेर) मूसल का काम नहीं दे सकता। अर्थात् निर्बल मन वाला व्यक्ति भौतिक साधन होते हुए भी बल के काम नहीं कर सकता। (४५५) खद्योत अति दीप्तिमान् होने पर

भी आग का काम नहीं दे सकता। (४५६) किसी का किसी बात में वृद्धि पा जाना गुणी होने का प्रमाण नहीं है। (४५७) अत्यन्त पुराना भी नीम का काठ चाकू बनाने के काम नहीं आता, इसी प्रकार दुष्ट लोग पुराने होकर भी अपनी दुष्टता नहीं छोड़ते। (४५८) जैसा बीज वैसा ही फल। जैसे माता-पिता व समाज वैसे ही व्यक्ति। (४५९) जैसी जिसकी शिक्षा, वैसी ही उसकी बुद्धि होती है। (४६०) जैसा कुल, परिवार व समाज, वैसा ही उसका आचार व्यवहार। (४६१) गुड आदि संस्कारों से संस्कृत हुआ भी नीम का 'वृक्ष अपनी स्वाभाविक कटुता नहीं त्यागता, दुर्जन भी इसी प्रकार अपनी दुष्टता किसी उपदेश से नहीं छोड़ता।' (४६२) ध्रुव अल्प सुख को अनागत अध्रुव वृहत् सुख के लिए न छोड़े। (४६३) मनुष्य स्वयं ही अपने दुःखों का कारण बन जाता है।

राजा के लिए लोकाचार का पालन आवश्यक

(४६४) रात्रि में भ्रमण न करे। (४६५) आधी रात विता कर न सोए। (४६६) जीवन चर्या की विधि अनुभवी विद्वानों से सीखे। (४६७) बिना उचित कारण और बिना अधिकार के दूसरे के घर में प्रवेश न करे। (४६८) जानते-बूझते हुए भी लोग अपराध कर बैठते हैं। (४६९) लोकाचार शास्त्र के आधार पर ही प्रचलित होते हैं। (४७०) शास्त्र का ज्ञान न हो तो शिष्ट पुरुषों के आचार का ही अनुगमन करे। (४७१) शास्त्र का महत्त्व शिष्टों के आचार से अधिक नहीं है। (४७२) राजा अपने जासूसों की आँखों से दूर तक देख सकता है। (४७३) सामान्य लोग भेड़-चाल होते हैं। (४७४) मनुष्य जिसके सहारे अपनी जीविका चलाता है, उसकी निन्दा न करे। (४७५) जितेन्द्रियता ही तपस्या का सार है। (४७६) स्त्री के वन्धन से छुट-कारा पाना कठिन है। (४७७) स्त्री वन्धन समस्त अशुभ कार्यों का क्षेत्र है। (४७८) स्त्रियों की परीक्षा पुरुष नहीं कर सकता है। (४७९) स्त्रियों की विचारशक्ति चंचल होती है। (४८०) अशुभ से द्वेष करने वाले व्यक्ति स्त्रियों में आसक्त नहीं होते।

मोक्ष से ही दुःख निवारण

(४८१) तीनों वेदों को वे ही जान सकते हैं जो समस्त यज्ञों के फल को ठीक-ठीक समझ चुके हैं। (४८२) कर्मफल से प्राप्त सुख योग सदा नहीं रहते। (४८३) भौतिक सुख नाश से अधिक कोई दुःख नहीं है। (४८४) देही को वर्तमान देह में इतनी आसक्ति होती है कि वह इसे छोड़ इन्द्र का पद भी नहीं लेना चाहता। (४८५) मोक्ष प्राप्ति ही दुःख निवारण का एकमात्र उपाय है। (४८६) अनार्यों से सौहार्द बढ़ाने की अपेक्षा आर्यों की शत्रुता अच्छी है। (४८७) दुर्वचन से कुल के गौरव का न.श हो जाता है। (४८८) सन्तान प्राप्ति सुखों में सर्वोत्तम है। (४८९) कलह व विवाद में धर्म को मत भूलो। (४९०) ब्राह्म मुहूर्त में उठकर दिन भर के कामों का

चिन्तन करे। (४६१) प्रातःकाल पाप का चिन्तन नहीं करना चाहिए। (४६२) जिसका विनाशकाल आता है, वही अनीति को अपनाता है। (४६३) जिसे दूध की आवश्यकता है, वह हथिनी को लेकर क्या करे ? अपने प्रयोजन के उपयोगी वस्तु का ही संग्रह करना चाहिए। (४६४) लोक को वश में करने का उपाय दान जैसा दूसरा नहीं है। (४६५) दूसरे के हाथ में फँसे अपने पदार्थ को प्राप्त करने के लिए घबराहट मत पैदा करो, शान्ति से उसका उपाय सोचो। (४६६) पापियों की समृद्धि का पापी ही भोग करते हैं। (४६७) नीम का फूल कौए ही खाते हैं। इसी प्रकार पाप से प्राप्त धन को पापी ही अपने भोग में लगाते हैं। (४६८) समुद्र का खारा पानी प्यास को नहीं बुझाता। पापी का धन भी किसी श्रेष्ठ काम में नहीं लग सकता। (४६९) रेत अपने रूखे स्वभाव को पकड़े रहती है। दुष्ट पुरुष अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता। (५००) भद्रपुरुष दुष्ट पुरुषों के साथ मिलकर नहीं रह सकते।

६. आशा के साथ ही पुरुषार्थ भी

(५०१) हंस श्मशान भूमि में नहीं रहते। गुणी अयोग्यों के संग नहीं रहते। (५०२) सारा संसार अर्थ संग्रह में लगा हुआ है। (५०३) आशा में सब लोक बंधा हुआ है। (५०४) केवल आशापरायण—पुरुषार्थ हीन—व्यक्ति श्री हीन रहता है। (५०५) आशा के दास व्यक्ति में धैर्य नहीं होता। (५०६) दीन बनने से तो मर जाना उत्तम है। (५०७) आशा की दासता से लज्जा का नाश हो जाता है। (५०८) माता, बहिन, लड़की, के पास भी अकेले नहीं बैठना चाहिए। (५०९) अपनी प्रशंसा स्वयं नहीं करनी चाहिए। (५१०) दिन में नहीं सोना चाहिए। (५११) धन से अंधा व्यक्ति सम्पर्क में आने वालों की हित की बात नहीं सुनता। (५१२) स्त्री के लिए पति से अधिक कोई पूजनीय नहीं है। (५१३) पत्नी के पति के अनुकूल चलने से दोनों को सुख मिलता है। (५१४) अतिथि और अभ्यागत -- अर्थात् समय निश्चित न करके आने वाला— दोनों का यथा विधि सत्कार करे। (५१५) यज्ञ के लिए अथवा पात्र में दिया गया दान कभी व्यर्थ नहीं जाता। (५१६) बुद्धि भ्रष्ट होने पर शत्रु भी मित्रवत् दिखाई पड़ता है। (५१७) मृग मरीचिका जल की तरह दिखाई पड़ती है। इसी प्रकार संसार के भोग ऊपर से सुन्दर पर भीतर से खोखले होते हैं। (५१८) मूर्खों के बनाए शास्त्र अल्प बुद्धि लोगों को ही ठगते हैं। (५१९) सत्संग ही स्वर्ग तुल्य सुखदायक होता है। (५२०) सज्जन पुरुष दूसरों के साथ अपने जैसा व्यवहार करते हैं। (५२१) जैसा रूप वैसा ही गुण होता है।

प्रजा राजा की आज्ञा का पालन करे

(५२२) जहाँ सुख से निवास हो, वही उत्तम स्थान है। (५२३) विश्वासघाती का कभी कल्याण नहीं होता। (५२४) ईश्वर के नियम से प्राप्त दुःख के लिए मनुष्य

को चिन्ता नहीं करनी चाहिए। (५२५) आश्रितों के दुःख को उत्तम पुरुष अपना ही दुःखवत् समझते हैं। (५२६) दुष्ट लोग मन की दुष्टता को छिपाते हुए केवल जिह्वा से मीठा बोलते हैं। (५२७) बुद्धि हीन व्यक्ति पिशाच जैसा ही घृणित होता है। (५२८) बिना आत्म-रक्षा के साधनों के अकेला मार्ग पर न चले। (५२९) अपनी सन्तान की प्रशंसा अपने आप ही नहीं करनी चाहिए। (५३०) भृत्य लोग अपने स्वामी को लोकप्रिय बनाने के लिए उसकी प्रशंसा किया करें। (५३१) धर्म कार्यों को अपना न बताकर स्वामी का ही बताया करें। (५३२) राजा के आज्ञापालन में वृथा देर न लगाएँ। (५३३) राजा की ओर से जैसी आज्ञा प्राप्त हो, वैसा ही करे। (५३४) बुद्धिमानों के शत्रु नहीं होते। (५३५) अपने दोषों को प्रकट न करे। (५३६) क्षमावान् ही सब कार्यों में सफल होता है। (५३७) आपत्ति काल के लिए धन का संचय करे। (५३८) उत्तम कार्य के लिए साहस करने वालों के साथ सहयोग करना चाहिए। (५३९) कल का काम मनुष्य आज करे। (५४०) दोपहर का काम दिन के पहले भाग में ही कर लेना चाहिए।

प्रजा के साथ राजा का सम्पर्क आवश्यक

(५४१) धर्म व्यवहार में आने वाला होना चाहिए। (५४२) लोक व्यवहार को समझना ही उत्कृष्ट ज्ञान है। (५४३) लोक व्यवहार न जानने वाला शास्त्रज्ञ भी मूर्ख सदृश होता है। (५४४) शास्त्र की उपयोगिता लौकिक-पारलौकिक ज्ञान करा देने में ही है। (५४५) तत्त्वज्ञान से ही कार्य-अकार्य का ज्ञान प्रकाशित होता है। (५४६) व्यवहार में पक्षपात नहीं करना चाहिए। (५४७) धर्म से भी बड़ा लोक व्यवहार है। (५४८) आत्मा ही व्यवहार का साक्षी है। (५४९) सारे विश्व का साक्षी परमात्मा ही है। (५५०) मिथ्या पक्ष का साक्षी मनुष्य न हो। (५५१) मिथ्या साक्षी देने वाले नरक में जाते हैं। (५५२) छिपकर किए हुए पापों के साक्षी पंच-महाभूत होते हैं, अथवा, भौतिक परिस्थितियाँ होती हैं। (५५३) पापी का पाप स्वयं ही प्रकाशित हो जाता है। (५५४) मनुष्य की आकृति से उसके मन के गुप्त विचार प्रकट हो जाते हैं। (५५५) अपनी मुखाकृति को छिपा सकना देवों के लिए भी संभव नहीं है। (५५६) राजा, चोर और भ्रष्ट राजपुरुषों से जनता के धन की रक्षा करे। (५५७) प्रजा के साथ कभी सम्पर्क न करने वाला राजा प्रजा का विनाशक बन जाता है। (५५८) प्रजा के साथ सम्पर्क रखने वाला राजा प्रजा को सुखी-प्रसन्न रखता है। (५५९) न्यायशील राजा को प्रजा मातृ-तुल्य मानती है। (५६०) इस प्रकार का राजा वर्तमान तथा भविष्य में सुख और प्रजा के आशीर्वाद को प्राप्त होता है। यही उसका स्वर्ग है।

धर्म का स्वरूप

(५६१) धर्म का लक्षण अहिंसा है। (५६२) उत्तम पुरुष अपने शरीर को भी

दूसरों की सेवा में लगाने वाला होता है। (५६३) माँस भक्षण सबके लिए अनुचित है। (५६४) ज्ञानी व्यक्ति को संसार के दु:ख से भय नहीं होता। (५६५) आत्मज्ञान रुपी प्रकाश द्वारा संसार बन्धन से मुक्त हो जाता है। (५६६) सम्पूर्ण भौतिक पदार्थ और उनसे प्राप्त सुख-दु:ख अनित्य है। (५६७) कृत्ति विष्ठा, और मूत्र का घर यह शरीर पुण्य-पाप के अर्जन का कारण होता है। (५६८) जन्म-मरण आदि में दु:ख ही दु:ख है। (५६९) तप से स्वर्ग—अर्थात् सुख की प्राप्ति होती है। (५७०) क्षमाशील की तप से वृद्धि होती है। (५७१) इसलिए तप से ही सबके शुभ काम सिद्ध होते हैं।

चाणक्य नीति

१. ग्रहण करने और त्याग करने योग्य

(१) मूर्ख छात्रों को पढ़ाने और दुष्टा स्त्री के पालन-पोषण से तथा दुःखियों के साथ सम्बन्ध रखने से बुद्धिमान् व्यक्ति भी दुःखी होता है।

(२) दुष्टा स्त्री, छली मित्र जवाब देने वाला नौकर और जिस घर में साँप हो, उसमें रहना — यह सब मौत के सदृश ही है।

(३) विपत्ति में काम आने लिए धन की रक्षा करे, धन से अधिक स्त्री की रक्षा करे और इन दोनों से अधिक अपने आत्मा की सतत रक्षा करे।

(४) आपत्ति के लिए धन की रक्षा करे, पर धनी को विपत्तियाँ कैसी ? लक्ष्मी चंचल है, कभी संचित धन भी नष्ट हो जाता है।

(५) जिस देश में आदर नहीं, जीविका नहीं, बन्धु-बान्धव नहीं, न ही विद्या की प्राप्ति है, वहाँ निवास नहीं करना चाहिए।

(६) जहाँ धनी, विद्वान्, राजा, नदी और वैद्य—यह पाँच न हों, वहाँ एक दिन भी नहीं रहना चाहिए।

(७) जहाँ जीविका, भय, लज्जा, चातुर्य्य और त्याग की वृत्ति—यह पाँच न हों, वहाँ किसी का संग न करे।

(८) नौकर को कहीं काम के लिए भेजने पर, भाई-बन्धु की संकट के समय, मित्र की विपत्ति काल में और धन नाश होने पर स्त्री की—इन चारों की परीक्षा होती है।

(९) बीमारी में, विपत्ति काल में, अकाल के समय शत्रु से संकट प्राप्त होने पर राजद्वार में (गवाही आदि में) और श्मशान में—जो साथ दे वही बन्धु है।

(१०) जो निश्चित को छोड़कर अनिश्चित को प्राप्त करना चाहता है, उसका अनिश्चित तो पहले ही नष्ट है पर निश्चित पदार्थ भी नष्ट हो जाता है।

(११) बुद्धिमान् अच्छे कुल में उत्पन्न कुरूप कन्या से विवाह कर ले पर नीच कुल उत्पन्न रूप-शील युक्त भी कन्या से विवाह न करे।

(१२) नदियों का, नख वालों (व्याघ्र-सिंह आदि) का, सींग वालों का और

जिनके हाथ में शस्त्र है, स्त्रियों और राजकुल के व्यक्तियों का—इनका कभी विश्वास न करे।

(१३) विष से भी अमृत, अपवित्र स्थान से भी सोना, नीच कुल से भी विद्या और दुष्ट कुल से भी स्त्री—इनका ग्रहण कर लेना चाहिए।

(१४) पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का भोजन दुगुना, लज्जा चौगुणी, साहस छः गुणा और काम वासना आठ गुणी होती है।

२. उत्तम जीवन के विविध रूप

(१) भोजन के पदार्थ और उनके पचाने की शक्ति, उत्तम स्त्री और रति करने की शक्ति, उत्तम धन और दान के लिए उत्साह—कम तपस्या करने वाले को इनकी प्राप्ति नहीं होती।

(२) जिसकी सन्तानें आज्ञापालक हों, भार्या अपने स्वभाव के अनुकूल हो, अपने धन में जो सन्तुष्ट है—उसके लिए स्वर्ग यहीं है।

(३) पुत्र वही है जो पिता का भक्त है, पिता वही है जो सन्तान का पोषक है, मित्र वही है जो विश्वस्त हो, और पत्नी वही है जिससे सुख शान्ति प्राप्त हो।

(४) पीठ पीछे कार्य का नाश करने वाला और सामने मीठा बोलने वाला—ऐसे मित्र को भीतर विष भरे पर ऊपर से दूध की कुछ मात्रा वाले घट की तरह छोड़ देना चाहिए।

(५) बुरे मित्र का विश्वास न करे, अच्छे मित्र का भी विश्वास न करे क्योंकि कभी क्रुद्ध हो जाने पर अच्छा मित्र भी रहस्य को प्रकट कर देगा।

(६) मन में निश्चित किये काम को कभी वाणी से प्रकट न करे। मन्त्र की तरह उसकी रक्षा करते हुए उसे कार्य में परिणत करना चाहिए।

(७) मूर्खता निश्चय ही कष्ट है, यौवन भी निश्चय ही कष्टपूर्ण है पर सबसे अधिक कष्टप्रद दूसरे के घर में निवास करना है।

(८) प्रत्येक पर्वत पर मणि नहीं होती, प्रत्येक हाथी के सिर में मोती नहीं होते, साधु सर्वत्र नहीं मिलते और प्रत्येक वन में चन्दन नहीं होता।

(९) बुद्धिमान् अपनी सन्तानों को विविध प्रकार के व्यवहारों में लगाए क्योंकि नीतिज्ञ और शीलयुक्त सन्तानें ही कुल में सम्मानित होती हैं।

(१०) वे माता-पिता वैरी हैं जिन्होंने सन्तान को नहीं पढ़ाया। वह सन्तान हंसों की सभा में वक के समान कहीं भी शोभा को प्राप्त नहीं होती।

(११) बहुत अधिक लाड-प्यार से कई दोष पैदा हो जाते हैं और ठीक ढंग से दिए गए दण्ड से गुण पैदा होते हैं। इसलिए पुत्र और शिष्य को अनुशासन में ही रखे, लाड-प्यार में ही न लगा रहे।

(१२) एक श्लोक, उसका आधा, उसका भी आधा अथवा एक अक्षर प्रतिदिन पढ़ना चाहिए और प्रतिदिन दान, पठन-पाठन आदि श्रेष्ठ कर्म से दिन को सार्थक करे।

(१३) पत्नी का वियोग, अपने ही लोगों द्वारा अपमान, ऋण का बकाया, दुष्ट राजा की सेवा, हृदय में दरिद्र भाव, प्रतिकूल सभा—यह सब विना आग के भी देह को जलाने वाले हैं।

(१४) नदी के किनारे के वृक्ष, दूसरे के घर में जाने वाली स्त्री, और मैत्री के बिना राजा—यह शीघ्र ही निश्चय से नष्ट हो जाते हैं।

(१५) विद्वान् ब्राह्मण का बल विद्या, राजाओं का बल सैन्य, वैश्यों का बल धन और शूद्र का बल नम्रता सहित सेवा है।

(१६) वेश्या निर्धन पुरुष को, प्रजा पराजित राजा को, पक्षी बिना फल वाले पेड़ को, अतिथि भोजन करने के बाद गृहस्थ के घर को—यह सब छोड़ चले जाते हैं।

(१७) ब्राह्मण दक्षिणा लेकर यजमान को, शिक्षा प्राप्त कर शिष्य गुरु को और जले हुए वन को मृग—यह सब छोड़ देते हैं।

(१८) दुष्ट आचार वाले, पाप दृष्टि वाले, गन्दे स्थान में रहने वाले और दुर्जन व्यक्ति—इनसे जो मित्रता करता है, वह शीघ्र नष्ट हो जाता है।

(१९) समान लोगों के साथ प्रेम शोभा देता है, राजा की नौकरी अच्छी होती है, व्यवहार में लेन-देन और घर में स्त्री की शोभा होती है।

३. उत्तम सन्तान के स्वरूप

(१) किसके कुल में दोष नहीं है? कौन ऐसा है जिसे रोग नहीं सताता? दुःख किसने नहीं पाया? सदा सुखी कौन रहा?

(२) मनुष्य का आचार कुल का, बोलने का तरीका देश का, विशेष आदर प्रेम का और शरीर भोजन का परिचय देने वाला होता है।

(३) लड़की का सम्बन्ध अच्छे कुल से, सन्तान का सम्बन्ध उत्तम शिक्षा से, शत्रु का सम्बन्ध विपत्ति से और मित्र का सम्बन्ध धर्म से जोड़ना चाहिए।

(४) दुर्जन और सर्प—इन दोनों में से सर्प अच्छा है, दुर्जन नहीं क्योंकि सर्प तो काल आने पर ही डसता है, दुर्जन पग-पग पर डसता है। इसीलिए राजा कुलीन पुरुषों का ही संग्रह करते हैं क्योंकि राजा के अभ्युदय, साधारण स्थिति और विपत्ति में भी वह राजा को नहीं छोड़ते।

(५) प्रलय काल में समुद्र अपनी मर्यादा छोड़ देते हैं पर उत्तम पुरुष प्रलय काल में भी अपनी मर्यादा नहीं छोड़ते।

(६) मूर्ख से बचना चाहिए क्योंकि वह दो पैर वाला प्रत्यक्ष शत्रु है। नेत्रहीन को जैसे काँटा बींधता है, वैसे ही वचन रूपी काँटे से वह बींधता है।

(७) सुन्दर रूप, यौवन और बड़े कुल में उत्पन्न व्यक्ति भी विद्या से रहित शोभा प्राप्त नहीं करते जैसे बिना सुगन्ध के फूल।

(८) कोकिल का रूप उसका स्वर है, स्त्री का रूप पतिव्रत धर्म, कुरूपों का रूप विद्या और तपस्वी का रूप क्षमा है।

(६) कुल की रक्षा के लिए एक का, ग्राम की रक्षा के लिए कुल का, देश की रक्षा के लिए ग्राम का और अपने आत्मा की रक्षा के लिए पृथ्वी का त्याग कर दे।

(१०) उद्योगी के लिए निर्धनता नहीं, जाप करने वाले के लिए पाप नहीं, मौनी के लिए कलह नहीं और जागने वाले के लिए भय नहीं रहता।

(११) अत्यन्त सुन्दर होने से सीता, अत्यन्त अभिमानी होने से रावण, अति-दानी होने से बलि—यह सब कष्ट में फँसे। इसलिए सदा अति का त्याग करे।

(१२) समर्थ के लिए कोई वस्तु भारी नहीं, उद्योगी के लिए कोई स्थान दूर नहीं, विद्वान् के लिए कोई विदेश नहीं और मीठा बोलने वाले के लिए कोई शत्रु नहीं।

(१३) एक भी सुगन्धित फूल वाले वृक्ष से वन सुगन्धित हो जाता है। इसी प्रकार एक सुपुत्र से सारा कुल सुगन्धित हो जाता है।

(१४) सूखे और जलते वृक्ष से जैसे सारा वन जल जाता है, ऐसे ही एक कुसन्तान से कुल का नाश हो जाता है।

(१५) रात्रि के अन्धकार को जैसे एक चन्द्रमा दूर कर देता है, वैसे ही विद्या युक्त एक सन्तान से ही कुल उज्ज्वल हो जाता है। शोक और सन्ताप देने वाली बहुत सन्तानों से क्या लाभ ? कुल को आश्रय देने वाला एक ही पुत्र सबसे श्रेष्ठ है।

(१६) पाँच वर्ष तक सन्तान को प्यार करे, दस वर्ष का होने पर ताडना कर उसे भले मार्ग में प्रेरणा करे, और सोलह वर्ष का हो जाने पर सन्तान को मित्रवत् समझे।

(१७) भयंकर उपद्रव होने, और दुर्भिक्ष होने तथा दुष्ट का संसर्ग होने पर जो भाग जाता है, वही जीवित रहता है।

(१८) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इनमें से जिसके पास एक भी नहीं है, उसका अनेक जन्म लेने का फल केवल मरण ही है।

(१९) जहाँ मूर्खों का मान नहीं होता, जहाँ अन्न ठीक प्रकार रखा जाता है, पति-पत्नी में कलह नहीं है, वहाँ लक्ष्मी स्वयं आती है।

४. सुखी परिवार

(१) आयु, कर्म, वित्त, विद्या और मृत्यु—इन पाँचों का निश्चय शरीरधारी के लिए गर्भ में ही हो जाता है।

(२) साधु-महात्माओं के संसर्ग से पुत्र, मित्र, बन्धु और उनके साथी सांसारिक वृत्तियों से मुक्त हो अपने कुल को उज्ज्वल करने वाले होते हैं।

(३) मछली, कछुआ, चिड़िया, जिस प्रकार देख-रेख, स्पर्श और दृष्टि से अपने बच्चों को पालते हैं, इसी प्रकार सज्जनों के संग से पाप से रक्षा प्राप्त होती है।

(४) जब तक यह शरीर स्वस्थ है, जब तक मृत्यु दूर है, तब तक आत्म कल्याण करे, मरने के समय क्या करेगा ?

(५) विद्या कामधेनु के सदृश सदा फल देने वाली, परदेश में माता के समान, गुप्त धन के सदृश है।

(६) सौ निर्गुण पुत्रों से एक गुणवान् पुत्र अच्छा है। रात का अन्धकार एक चन्द्रमा ही दूर करता है, हजारों तारे मिलकर भी जो दूर नहीं कर सकते।

(७) बड़ी आयु में प्राप्त मूर्ख पुत्र की अपेक्षा जन्मते ही मर जाने वाला पुत्र अच्छा है क्योंकि पहला सारी आयु दुःख देने वाला होता है जब कि दूसरा कुछ समय के लिए ही कष्टप्रद होता है।

(८) बुरे गाँव में रहना, नीच कुल की सेवा, बुरा भोजन, क्रोधी पत्नी, मूर्ख सन्तान, और विधवा कन्या—यह छः बिना अग्नि के शरीर को जला देते हैं।

(९) उस गौ से क्या लाभ जो न दूध देती और न बच्चे वाली हो। ऐसी सन्तान से क्या लाभ जो न विद्वान् और न भक्तिशील हो।

(१०) संसार के दुःखों से संतप्त व्यक्ति के लिए तीन-तीन विश्रान्ति देने वाले हैं, सन्तान, पत्नी और श्रेष्ठों का संग।

(११) राजा एक ही बार बोलता है, विद्वान् एक ही बार बोलता और कन्या एक ही बार दी जाती है। यह तीनों एक ही बार होते हैं।

(१२) तप अकेले का, पढ़ना दो का मिलकर, गाना तीन का मिलकर, यात्रा चार के साथ, खेती पाँच के साथ और युद्ध कई सहायकों के होने पर ही होता है।

(१३) वही पत्नी अच्छी है जो पवित्र, चतुर, पतिव्रता, पति को प्रसन्न करने वाली हो।

(१४) बिना सन्तान के गृह शून्य, बिना बन्धु-बांधव के दिशाएँ शून्य, मूर्ख का हृदय शून्य और सबसे अधिक निर्धनता शून्य है।

(१५) अभ्यास न करने से विद्या विष, अजीर्ण होने पर भोजन विष, मूर्ख (दरिद्र) के लिए विद्वानों की सभा विष और वृद्ध के लिए युवती विष तुल्य है।

(१६) दया रहित धर्म, विद्या रहित गुरु, क्रोधी भार्या, बिना स्नेह वाले बाँधव —इनका त्याग कर दे।

(१७) बहुत मार्ग चलना मनुष्य के लिए जरा, घोड़े को एक जगह बाँध देना जरा, स्त्री के साथ पुरुष का समागम न होना जरा और वस्त्रों को धूप में रखना जरा है।

(१८) समय कैसा है, कौन मित्र है, कैसा देश है, आय-व्यय क्या है, मैं कौन हूँ और मेरी शक्ति क्या है— यह सब बार-बार सोचे।

(१९) द्विजातियों का देवता अग्नि, मुनियों का देवता हृदय में, अल्प बुद्धि वालों का देवता मूर्ति में और समदर्शियों के लिए सर्वत्र देवता हैं।

५. उत्तम गुणों की पहचान

(१) स्त्रियों का गुरु (सम्मान पात्र) पति ही है, अतिथि सबका गुरु है, द्विजों का गुरु अग्नि है और चारों वर्णों का गुरु ब्राह्मण (विद्वान्) है।

(२) जिस प्रकार सोने की परीक्षा घिसने, काटने तपाने और पीटने, इन चार उपायों से होती है, वैसे ही त्याग, शील, गुण और कर्म से मनुष्य की पहचान होती है।

(३) भय से तभी तक डरना चाहिए जब तक वह आता नहीं है पर आते हुए भय को देखकर नि:शंक प्रहार कर देना चाहिए।

(४) एक ही माता के पेट से और एक ही नक्षत्र में पैदा होते हुए भी समान गुणशील वाले नहीं होते, जैसे बेर वृक्ष और उसके काँटे।

(५) जिसका जिस वस्तु से प्रेम नहीं, वह उसका अधिकारी नहीं, जो विषय भोगी नहीं वह शृंगार प्रिय नहीं होगा, जो चतुर नहीं वह मीठा वचन नहीं बोलता और स्पष्ट कहने वाला कपटी नहीं होता।

(६) मूर्खों के पंडित, निर्धनों के धनी, विधवाओं के सुहागन और कुलटा स्त्रियों के वैरी कुल धर्मपालक स्त्रियाँ होती हैं।

(७) आलस्य से विद्या, दूसरे के हाथ में गया धन, बीज की कमी से खेत और बिना नायक के सेना—इनका नाश होता है।

(८) अभ्यास से विद्या प्राप्त होती है, कुल की वृद्धि शील से होती है, आर्य की पहचान गुण से और क्रोध की आँख से होती है।

(९) धर्म की रक्षा धन से, विद्या की रक्षा अष्टांग योग से, राजा की रक्षा कोमलता से और घर की रक्षा श्रेष्ठ स्त्री से होती है।

(१०) वेद का पांडित्य व्यर्थ है, शास्त्र और आचार-विचार व्यर्थ है—ऐसा सबको अन्यथा कहकर शान्ति पाने वाले लोग व्यर्थ क्लेश करते हैं—अर्थात् वे स्वयं ही व्यर्थ है।

(११) दरिद्रता का नाश दान से, दुर्गति का नाश सुशीलता से, मूर्खता का नाश सद्बुद्धि से और भय का नाश अच्छी भावना से होता है।

(१२) काम (व्यभिचार) के समान कोई रोग नहीं, मोह के समान कोई शत्रु नहीं, क्रोध के समान कोई आग नहीं और ज्ञान से बढ़कर कोई सुख नहीं है।

(१३) अकेला ही मनुष्य जन्मता, मरता, अकेला ही शुभ-अशुभ कर्मों का फल भोगता, अकेला ही नरक जाता और अकेला ही परम पद प्राप्त करता है—कोई साथ नहीं जा सकता।

(१४) ब्रह्मचारी के लिए स्वर्ग तृण के समान, शूरवीर की दृष्टि में जीवन तृण सदृश, इन्द्रिय जयी के लिए स्त्री तृणवत् और जिसे किसी वस्तु की इच्छा नहीं, उसके लिए समस्त संसार तृणवत् है।

(१५) विदेश में मित्र विद्या, घर में मित्र स्त्री, रोगी की मित्र औषधि और मृत व्यक्ति का मित्र धर्म है।

(१६) समुद्र में वर्षा व्यर्थ, सन्तुष्ट व्यक्ति के लिए भोजन व्यर्थ, धनिक को दान देना व्यर्थ और दिन में दीपक जलाना व्यर्थ है।

(१७) बादल के जल के सदृश दूसरा जल नहीं, आत्म बल के सदृश दूसरा बल नहीं, आँख के सदृश दूसरा प्रकाश नहीं और अन्न के सदृश दूसरा प्रिय पदार्थ नहीं है।

(१८) निर्धन धन चाहता है, पशु-पक्षी वाणी चाहते हैं, मनुष्य स्वर्ग (सुख) और विद्वान् मोक्ष चाहते हैं।

(१९) सत्य से पृथ्वी स्थित है, सत्य से सूर्य तपता है, सत्य से वायु बहता है, संसार के सभी पदार्थ सत्य में निहित हैं।

(२०) लक्ष्मी अनित्य, प्राण अनित्य, जीवन अनित्य, घर अनित्य। इस अनित्य संसार में धर्म ही नित्य है।

(२१) पुरुषों में नापित (नाई) धूर्त, पक्षियों में कौआ, पशुओं में गीदड़, और नारियों में मालिन धूर्त होती है।

(२२) जन्म देने वाला, यज्ञोपवीत देने वाला, अन्न देने और भय से रक्षा करने वाला—यह पाँच पितर कहे गए हैं।

(२३) राजा की पत्नी, गुरु की पत्नी, मित्र की पत्नी, अपनी पत्नी की माता और अपनी माता—यह पाँच माताएँ कही गई हैं।

६. गुण-दोषों की परख

(१) शास्त्रों को सुनकर धर्म को जानता है, सुनकर ही मूर्खता को छोड़ता, सुनकर ही ज्ञान प्राप्त करता और शास्त्रों को सुनकर ही मोक्ष पद प्राप्त करता है।

(२) पक्षियों में कौआ, पशुओं में कुत्ता, ऋषि-मुनियों में पाप और मनुष्यों में सबसे बड़ा चण्डाल परनिन्दक है।

(३) राख से काँसे का बर्तन, खटाई से ताँबे का बर्तन, रजो धर्म से स्त्री और धारा के वेग से नदी—शुद्धि के साधन हैं।

(४) प्रजा की रक्षा के लिए घूमने वाला राजा, उपदेश व शिक्षा के लिए भ्रमण शील ब्राह्मण (विद्वान्) और योगी पूज्य होते हैं। पर घूमने वाली स्त्री नाश को प्राप्त होती है।

(५) जिसके पास धन है उसके कई मित्र, कई भाई-बन्धु होते हैं और जिसके पास धन, वहीं पुरुष और वही पण्डित कहा जाता है।

(६) जैसा होनहार होता है, वैसी ही बुद्धि, वैसा ही उद्योग-धन्धा और वैसे ही सहायक मिल जाते हैं।

(७) पंच भूतों को काल पचाता—विभिन्न रूपों में करता है, काल ही सब प्राणियों का नाश करता, सोते हुओं में काल ही जागता, प्रलय काल में भी काल रहता है। निश्चय ही काल को कोई लाँघ नहीं सकता।

(८) जन्मान्ध, कामान्ध और स्वार्थी और अभिमान में अन्धा, अपने दोष को नहीं देख पाते।

(९) आत्मा स्वयं ही कर्म करता स्वयं ही फल भोगता, स्वयं ही संसार में से फँसता और स्वयं ही संसार से छुटकारा पाता है।

(१०) राजा राष्ट्र के पाप को, पुरोहित राजा के पाप को, पति अपनी पत्नी

के पाप को और गुरु अपने शिष्य के पाप को भोगता है।

(११) सन्तान पर ऋण छोड़कर जाने वाला पिता, व्यभिचारिणी माता, रूपवती भार्या और मूर्ख सन्तान—यह सब शत्रु हैं।

(१२) लोभी को धन से, अभिमानी को हाथ जोड़कर, मूर्ख को उसके अनुसार बर्ताव से और पण्डित को सचाई से वश में करना चाहिए।

(१३) दुष्ट राज्य की अपेक्षा बिना राज्य के रहना उत्तम, दुष्ट मित्र की अपेक्षा बिना मित्र रहना अच्छा-बुरे शिष्य की अपेक्षा बिना शिष्य के रहना अच्छा है।

(१४) दुष्ट राजा के राज्य में प्रजा को सुख कहाँ, दुष्ट मित्र से शान्ति कहाँ, दुष्ट स्त्री से घर में सुख कहाँ, और दुष्ट शिष्य को पढ़ाने से यश कहाँ प्राप्त हो सकता है ?

७. पशु-पक्षियों से शिक्षा

सिंह से एक गुण, बगुले से एक गुण, मुर्गे से चार गुण, कौए से पाँच गुण, कुत्ते से छः और गधे से तीन गुण सीखने चाहिए। इनका विवरण—

(१) **सिंह**—मनुष्य जो काम करना चाहता है, चाहे वह छोटा हो व बड़ा—वह हर प्रकार से करना ही है—यह गुण सिंह से सीखना चाहिए। सिंह पकड़े हुए शिकार को नहीं छोड़ता।

(२) **बगुला**—बगुले की तरह सारी इन्द्रियों को काबू में कर, देश, काल और बल को समझ कार्य करे। बगुला सब प्रकार से अपने को सिकोड़कर तालाब की मछली का शिकार करता है।

(३) **मुर्गा**—ब्रह्म मुहूर्त में उठना, रण से पीछे न हटना, बन्धुओं में वस्तु को समभाग में बाँटना, और स्वयं चढ़ाई करके अपने भक्ष्य को ले लेना—यह चार गुण मुर्गे से सीखे।

(४) **कौआ**—एकान्त (गुप्त) स्थान में मैथुन करना, छिपकर चलना, समय-समय पर अभीष्ट वस्तुओं का संग्रह, सदा सावधान रहना, किसी पर विश्वास न करना—यह पाँच गुण कौए से सीखे।

(५) **कुत्ता**—बहुत भोजन करने की शक्ति रखता हुआ भी अल्प से ही सन्तुष्ट, अच्छी नींद लेना, पर तनिक खटके से जाग जाना, स्वामीभक्त और शूरता—यह छः गुण कुत्ते से सीखे।

(६) **गधा**—अत्यन्त थक जाने पर भी बोझ ढोना, शीत-उष्ण का विचार न करना, सदा सन्तुष्ट हो विचारना—यह तीन गुण गधे से सीखे।

जो मनुष्य इन उपर्युक्त बीस गुणों का सदा स्मरण कर, इनके अनुकूल ही आचरण करता है, वह सदा सब कार्यों में विजय प्राप्त करता है।

८. स्वर्ग और नरक

(१) बुद्धिमान् पुरुष धन के नाश, घर की बुराई, किसी धूर्त से ठगे जाने और अनादर को किसी से न कहे।

(२) धन और अन्न के लेन-देन में, विद्या प्राप्ति के समय, भोजन और व्यवहार में संकोच न करने वाला पुरुष सुखी रहता है।

(३) शान्त चित्त वाले सन्तुष्टों को सन्तोष रूपी अमृत से जो सुख प्राप्त होता है, वह इधर-उधर भागने वाले धन के लोभियों को नहीं प्राप्त होता है।

(४) अपनी स्त्री, भोजन और धन – इन तीनों में सन्तोष करना चाहिए। विद्या, तप और दान —इन तीन में सन्तोष नहीं करना चाहिए।

(५) दो विद्वानों के, विद्वान् और अग्नि के, स्त्री और पुरुष के, मालिक और नौकर के तथा हल व बैल—इनके बीच में नहीं जाना चाहिए।

(६) पैर से अग्नि, गुरु, विद्वान्, गौ, कन्या, वृद्ध और बालक – इन्हें नहीं छूना चाहिए।

(७) गाड़ी से पाँच हाथ, घोड़े से दस हाथ, हाथी से हजार हाथ, दूर बचकर रहना चाहिए और दुष्ट पुरुष का स्थान ही छोड़ देना चाहिए।

(८) हाथी केवल अंकुश से, घोड़ा चाबुक से, सींग वाला पशु लाठी से, दुष्ट मनुष्य तलवार से—वश में किया जाता है।

(९) विद्वान् भोजन पाने पर, मोर बादल के गर्जने पर, अच्छे पुरुष दूसरे की सम्पत्ति बढ़ने पर, दुष्ट पुरुष दूसरों की आपत्ति पर—सुखी होते हैं।

(१०) बलवान् शत्रु को उसके अनुकूल चलकर दुर्बल को उससे उलटा चल कर, समान बल वाले को अपने बल व नम्रता से—जैसा समय हो, वश में करना चाहिए।

(११) बाहु बल राजा का, ब्रह्मज्ञान विद्वान् का और सुन्दरता, यौवन व मीठी बोली—स्त्रियों के बल हैं।

(१२) बहुत सरल स्वभाव से रहना अच्छा नहीं होता। वन में जाकर देखो, जो सीधे पेड़ हैं वे काटे जाते और टेढ़े-मेढ़े टिके रहते हैं।

(१३) जिस सरोवर में जल रहता है, हंस वहीं वास करते हैं। सूख जाने पर उसे छोड़ देते हैं। हंस के तुल्य मनुष्य को नहीं होना चाहिए कि बार-बार छोड़े और बार-बार आश्रय ले, अर्थात् एक समान रहना चाहिए।

(१४) कमाए हुए धन का दान व उसका व्यय ही उसकी रक्षा है, जैसे तालाब में पानी का बहते रहना ही उत्तम है।

(१५) जिसके पास धन है, उसी के मित्र, बन्धु, बान्धव होते हैं। जिसके पास धन है, वही सम्मान पाता और जिसके पास धन हो, वही जीवित रहता है।

(१६) इस संसार में स्वर्ग का सुख भोगने वाले के चार चिह्न होते हैं—दान

की प्रवृत्ति, मधुरवाणी, ईश्वर का पूजन और विद्वानों की सेवा।

(१७) बहुत क्रोध, कटुवाणी, आलस्य, प्रमाद, अपनों से वैर, नीचों का संग, कुलहीन की सेवा—नरक में स्थित लोगों के यह चिह्न हैं।

(१८) कोई व्यक्ति यदि सिंह की माँद में जाए तो वहाँ गज मोती पाता है, और यदि सियार की माँद में जाता है तो वहाँ बछड़े की पूँछ और गधे के चमड़े का टुकड़ा पाता है। बड़े के पास बड़ी और छोटे के पास छोटी चीज़ें ही प्राप्त होती हैं।

(१९) कुत्ते की पूँछ उसके गुप्त अंग को ढाँप नहीं सकती और न ही मच्छर काटने से हटा सकती है, अतः व्यर्थ है। वैसे ही विद्या के बिना मनुष्य-जीवन व्यर्थ है।

(२०) वाणी की पवित्रता, सत्य भाषण, मन की शुद्धि इन्द्रिय निग्रह और सब जीवों पर दया करना परमार्थियों की शुद्धि है।

(२१) फूल में सुगन्ध, तिल में तेल, काठ में आग, दूध में घी, ईख में गुड़ आदि जैसे रहते हैं, वैसे ही अपने शरीर में आत्मा को जानो।

९. दान और विद्या के विविध रूप

(१) निकृष्ट लोग धन, मध्यम लोग धन और मान और उत्तम केवल मान चाहते हैं।

(२) ईख, जल, दूध, कन्दमूल, पान, फल और औषध—इन्हें खाकर भी स्नान, दान आदि कार्य कर सकते हैं।

(३) दीपक अन्धकार को खाता और कालिख को पैदा करता है। इसी प्रकार मनुष्य जैसा अन्न खाता है, वैसी ही उसकी सन्तान होती है।

(४) हे बुद्धिमान् पुरुष! धन गुणियों को ही दो, अन्यत्र नहीं। देखो! समुद्र का जल मेघ के मुँह में जाकर सदा मीठा हो जाता है और पृथ्वी के चर-अचर जीवों और पृथ्वी को भी जीवन दान देकर और अनेक गुण बढ़कर वही जल पुनः समुद्र में चला जाता है।

(५) तेल लगाने, चिता में आग लगाने, मैथुन और बाल कटवाने पर तब तक मनुष्य अशुद्ध रहता है, जब तक स्नान न कर ले।

(६) अजीर्ण में पानी औषध है, पचने पर वह बल प्रद है, भोजन में थोड़ा-थोड़ा जल पान अमृत सदृश और भोजन के अन्त में जल विष तुल्य होता है।

(७) बिना क्रिया के ज्ञान व्यर्थ, बिना ज्ञान के मनुष्य मृतवत्, सेनापति के बिना सेना नष्ट और पति के बिना स्त्री का जीवन नष्ट के समान ही है।

(८) बुढ़ापे में पत्नी वियोग, बन्धु के हाथ में गया धन, और दूसरे के वश का भोजन—तीनों चीज़ें पुरुषों के लिए दुःखदायी हैं।

(९) अग्निहोत्र के बिना वेद पढ़ता व्यर्थ, बिना दान के यज्ञादि कर्म व्यर्थ, बिना श्रद्धा के सिद्धि नहीं होती। इसलिए, सर्वत्र भावना (श्रद्धा) ही प्रधान है।

(१०) काष्ठ, पत्थर और धातुओं का उपयोग उन्हें ठीक प्रकार सिद्ध करने से

होता है। इसी प्रकार श्रद्धा होने पर सिद्धि मिलती है।

(११) काठ, पत्थर मिट्टी की पूजा से परमात्मा प्राप्त नहीं होता है। वह तो श्रद्धा से ही प्राप्त होता है। इसलिए श्रद्धा का बड़ा महत्त्व है।

(१२) शान्ति के तुल्य तप नहीं, सन्तोष से बढ़कर सुख नहीं, तृष्णा से अधिक रोग नहीं और दया से अधिक कोई धर्म नहीं।

(१३) क्रोध यमराज की मूर्ति है, तृष्णा दुःखदायी नदी है, विद्या कामधेनु है और सन्तोष इन्द्र के नन्दन वन सदृश सुखद है।

(१४) गुण से रूप की, शील से कुल की, सिद्धि से विद्या की और ठीक भोग से धन की शोभा है।

(१५) गुण हीन की सुन्दरता व्यर्थ, दुष्ट का कुल व्यर्थ, जिसने सिद्ध नहीं किया उसकी विद्या व्यर्थ और ठीक उपयोग न करने से धन व्यर्थ है।

(१६) पृथ्वी के भीतर का पानी शुद्ध है, पतिव्रता नारी शुद्ध है--कल्याण करने वाला राजा पवित्र है और सन्तोषी विद्वान् पवित्र है।

(१७) असन्तुष्ट द्विज और सन्तोषी राजा, लज्जाशील वेश्या और निर्लज्ज कुलीन स्त्री—यह नष्ट होते हैं।

(१८) विद्याहीन बड़े कुलों से क्या लाभ ? व्यर्थ हैं। नीच कुल का भी विद्वान् देवों से सम्मान पाता है।

(१९) लोक में विद्वान् की सर्वत्र प्रशंसा होती और उसका गौरव होता है। विद्या से सब कुछ प्राप्त होता और विद्या का सर्वत्र मान होता है।

(२०) रूप, यौवन युक्त और बड़े कुल में उत्पन्न होकर भी विद्या हीन की कोई शोभा नहीं होती, जैसे गन्ध हीन पलाश का फूल।

(२१) माँस खाने वालों, मदिरा पीने वालों और निरक्षर मूर्खों—इन पुरुष रूप पशुओं से पृथ्वी दुःखी रहती है।

(२२) अन्नहीन यज्ञ राजा को, मंत्रहीन यज्ञ ऋत्विक् को और दानहीन यज्ञ यजमान को जला देता है।

(२३) यज्ञ के समान कोई शत्रु नहीं है यदि वह सावधानता और नियमानुसार न किया जाए।

१०. कौन जागे और कौन सोये

(१) भाई हे प्रिय ! यदि मोक्ष चाहते हो तो विषयों को जहर की तरह छोड़ो और क्षमा, नम्रता, दया, पवित्रता और सत्य को अमृत की तरह अपनाओ।

(२) जो नीच आपस की गुप्त बातों को दूसरों से कह देते हैं, वह ही बाल्मीक के भीतर रहने वाले सांप के सदृश हो जाते हैं।

(३) सोने में सुगन्ध, गन्ने में फल, चन्दन में फूल, विद्वान् को धनी और राजा को चिरंजीवी ब्रह्मा ने नहीं बनाया। पता चलता है कि उसे कोई बुद्धि देने वाला नहीं मिला।

(४) सब औषधियों में अमृता (गुरुचि) प्रधान है, सब सुखों में भोजन मुख्य है, सब इन्द्रियों में नेत्र मुख्य है और सब अंगों में सिर मुख्य है।

(५) जिसका दूत आकाश में नहीं घूमता, न तो ग्रहण की कोई बात चलती है, पहले किसी से न बताया गया और न ही कोई प्रकरण रहता है। तब भी आकाश में होने वाले चन्द्रमा और सूर्य के ग्रहण को स्पष्ट रूप से जो द्विज जानता है, वह विद्वान् क्यों नहीं? अर्थात्, निश्चय ही विद्वान् है।

(६) विद्यार्थी, नौकर, पथिक, भूख से पीड़ित, भय से कातर, भंडारी और द्वारपाल—ये सब सोते हों तो इन्हें अवश्य जगा दे। साँप, राजा, सिंह, बर्रे, बालक, दूसरे का कुत्ता और मूर्ख—सोते हुए इन सातों को जगाना नहीं चाहिए।

(७) धन के लिए वेद पढ़ाने वाले, शूद्रों का अन्न खाने वाले विद्वान्, विष हीन साँप की तरह क्या कर सकते हैं? वह बेकार हैं।

(८) जिसके नाराज़ होने से डर नहीं, और प्रसन्न होने पर धन की प्राप्ति नहीं, जिसे दण्ड देने अथवा दया करने का सामर्थ्य नहीं; वह नाराज़ होकर क्या करेगा।

(९) विष हीन सांप को भी अपने बड़े फण को दिखाते रहना चाहिए क्योंकि विष रहे या न रहे पर फण का आडम्बर भी बड़ा भयंकर होता है।

(१०) अपने हाथ से गूँथी माला, अपने हाथ से घिसा चन्दन, अपने हाथ से लिखा स्तोत्र—अपने श्रम से किए गए यह कार्य इन्द्र के महत्त्व को भी कम कर देते हैं।

(११) ईख, तिल, दुष्ट, पत्नी, सोना, भूमि, चन्दन, दही और पान—इनका मर्दन ही लाभदायक होता है।

(१२) निर्धनता के साथ धैर्य, बुरे वस्त्र के साथ सफाई बुरा अन्न गर्म करने से, और कुरूपता के साथ अच्छा स्वभाव—सब दोषों को दूर करने वाले हो जाते हैं।

११. विद्या, धन और प्रभु विश्वास

(१) निर्धन मनुष्य छोटा नहीं है। अपने निश्चय पर दृढ़ रहना ही धन है। पर, विद्या रूपी धन से हीन सब प्रकार से हीन है।

(२) आँख से देखकर पैर रखे, कपड़े से छानकर जल पीए, सत्य के अनुसार शुद्ध कर वाणी बोले और मन से विचार कर कार्य करे।

(३) यदि सुख चाहता है तो विद्या पढ़ना छोड़ दे और यदि विद्या पढ़ना चाहता है तो सुख छोड़ दे। सुख चाहने वाले को विद्या कहाँ और विद्या चाहने वाले को सुख कहाँ?

(४) कवि (विद्वान्) क्या नहीं देखता? नारी क्या नहीं कर सकती? मदिरा पीने वाला क्या नहीं बकता? और कौआ क्या नहीं खाता?

(५) भाग्य कंगाल को राजा और राजा को कंगाल, धनी को निर्धन और निर्धन को धनी कर देता है।

(६) लोभियों का शत्रु भिक्षुक है और मूर्खों का शत्रु बुद्धिमान् है। व्यभिचारिणी स्त्री का शत्रु उसका पति और चोर का शत्रु चन्द्रमा है।

(७) जिसके पास न विद्या, न तप, न दान, न शील और न गुण व न धर्म है, ऐसे मनुष्य इस पृथ्वी पर मनुष्य के रूप में मृग सदृश ही हैं।

(८) जिनके हृदय के भीतर अपनी कोई शक्ति नहीं, उनके लिए उपदेश व्यर्थ है। मलयाचल की वायु के संसर्ग से बाँस चन्दन नहीं हो जाता।

(९) जिसकी अपनी बुद्धि नहीं है, शास्त्र उसके लिए क्या कर सकता है? जैसे आँख से रहित व्यक्ति के लिए दर्पण बेकार है।

(१०) दुर्जन को सज्जन बनाने का पृथ्वी पर कोई उपाय नहीं, जैसे सैकड़ों बार धोये जाने पर भी गुदा स्थान उत्तम इन्द्रिय नहीं बन सकता।

(११) आप्त, विद्वान्, ऋषि के साथ द्वेष करने से मृत्यु, दूसरों के साथ द्वेष से धन नाश, राजा के साथ द्वेष से विनाश और विद्वान् के साथ द्वेष करने से कुल का नाश होता है।

(१२) बाघ और बड़े-बड़े हाथियों वाला वन रहने के लिए अच्छा है, वृक्ष पर घर बना पके फल और सरोवर का जल पीना अच्छा, तिनकों पर सोना और वल्कल व जीर्ण वस्त्र पहनना अच्छा, पर भाई-बन्धु के बीच धन हीन होकर रहना कदापि अच्छा नहीं।

(१३) विद्वान् वृक्ष के तुल्य, सन्ध्या उसकी जड़, वेद शाखाएँ, धर्म और कर्म पत्ते। इसलिए विद्वान् का कर्त्तव्य है कि मूल (सन्ध्या) की रक्षा करे। मूल के कट जाने पर पत्ते व शाखाएँ नहीं रह सकतीं।

(१४) जिसकी माता लक्ष्मी, पिता विष्णु, विष्णु के भक्त जिसके भाई-बन्धु—उसके लिए तीनों लोक अपने देश सदृश ही हैं। वह सबको आत्मवत् देखता है।

(१५) रात्रि में एक ही वृक्ष पर रहने वाले अनेक प्रकार के पक्षी प्रातः होते ही दसों दिशाओं में उड़ जाते हैं। उसमें किसी को किसी की चिन्ता क्या?

(१६) जो बुद्धिमान् है, वही बली है। बुद्धिहीन को बल कहाँ? जैसे वन में मतवाला सिंह बुद्धि द्वारा गीदड़ से मारा गया।

(१७) यदि भगवान् विश्व का भरण-पोषण करने वाला कहा जाता है, तो मुझे अपने जीवन में क्या चिन्ता? यदि ईश्वर रक्षक न हो तो बच्चे के जीवन के लिए माता के स्तन से दूध कैसे निकले? यह बार-बार सोचकर हे प्रभो! मैं तेरे चरणों की सेवा में ही अपना समय लगाता हूँ।

(१८) यद्यपि मेरी बुद्धि देववाणी का आदर करती है, तथापि मैं अन्य प्रकार की वाणियों का लोभी बन गया है। जैसे अमृत पीने पर भी देवताओं की इच्छा स्वर्ग भोग की ओर लगी रहती है।

(१९) शाक खाने से रोग बढ़ते हैं, दूध से शरीर बढ़ता, घी से वीर्य बढ़ता पर माँस खाने से माँस ही बढ़ता है, जिससे बुद्धि का तो नाश हो ही जाता है।

१२. उत्तम और नीच पुरुषों के लक्षण

(१) दान देना, मीठा बोलना, धैर्य और उचित कर्त्तव्य की पहचान—यह अभ्यास से नहीं किन्तु स्वाभाविक गुण हैं।

(२) जो अपने वर्ण को छोड़कर दूसरे वर्ण का आश्रय लेता है, वह स्वयं नष्ट हो जाता है, जैसे अधर्म से राज्य।

(३) हाथी मोटे शरीर वाला है पर, अंकुश से वश में आ जाता है। क्या अंकुश हाथी के बराबर है? दीपक के जलने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है। क्या अन्धकार दीपक के ही बराबर है? वज्र से मारे गए पर्वत भी गिर जाते हैं। क्या पर्वत वज्र के ही तुल्य है? सत्य यह है कि जो तेजपूर्ण है, वही बली है। मोटेपन का क्या महत्त्व है?

(४) घर में आसक्त को विद्या नहीं प्राप्त होती, माँस भोगी को दया, धन के लालची को सत्यता और स्त्री में आसक्त को पवित्रता प्राप्त नहीं होती।

(५) अनेक प्रकार से समझाया गया भी दुर्जन उत्तम दशा को प्राप्त नहीं कर सकता। दूध, घी से मूल तक खींचा गया भी नीम का वृक्ष मधुर नहीं हो सकता।

(६) मलिन हृदय मनुष्य सैकड़ों तीर्थ स्नान करने पर भी शुद्ध नहीं होता, जैसे मदिरा का बर्तन जलाये जाने पर भी शुद्ध नहीं हो सकता।

(७) जो जिसके गुण को नहीं जानता, वह उसकी सदा निन्दा करता है, जैसे भिल्लनी हाथी के गंड स्थल से प्राप्त मुक्ता को छोड़ गुंजाफल (रत्ती) को पहनती है।

(८) जो पूरे वर्ष मौन रह कर भोजन करते हैं, वे युगों तक पूजा को प्राप्त होते हैं।

(९) काम वासना, क्रोध, लालच, स्वाद, शृंगार, खेल, अतिनिद्रा और अत्यन्त सेवा—विद्यार्थी इन आठों का त्याग कर दे।

(१०) बिना जोते हुए स्थान से प्राप्त फल—मूल खाने वाला, सदा वनवास से प्रेम करने वाला, प्रतिदिन श्रद्धा से कार्य करने वाला, विप्र ऋषि कहाता है।

(११) एक बार भोजन से सन्तुष्ट, छः कर्म (यज्ञ करना-कराना, वेद पढ़ना-पढ़ाना, दान देना और लेना) सदा करने वाला, गृहस्थ में ऋतुकाल का पालन करने वाला विप्र द्विज कहा जाता है।

(१२) विप्र संसार के धन्धों में लगा, पशुओं का पालन करने वाला और व्यापार तथा खेती करता है, वह वैश्य कहा जाता है।

(१३) लाक्षा (लाख), तेल, तिल, फूल, मधु, घी, मदिरा, माँस—इनका बेचने वाला विप्र शूद्र कहा जाता है।

(१४) दूसरे के कार्य का नाशक, दम्भी, स्वार्थी, कपटी, द्वेषी, ऊपर से कोमल भीतर से निष्ठुर, विप्र मार्जार कहा जाता है।

(१५) बावली, कूँआ, तालाब, बगीचा और देवमन्दिर को निर्भय होकर तोड़ने

वाला विप्र, क्लेच्छ कहा जाता है।

(१६) देवता का धन, गुरु का धन, परस्त्रीगामी, सबका अन्न खाने वाला विप्र, चाण्डाल कहा जाता है।

(१७) अच्छे लोगों को चाहिए कि भोजन सामग्री और धन सदा देते रहें। इनका संचय न करें। देखो! राजा कर्ण और बलि की कीर्ति आज भी स्थित है।

(१८) मधुमक्खियाँ सोचती हैं कि हमारा बहुत दिनों का इकट्ठा किया मधु-दान और भोग से रहित दैव वश नष्ट हो गया। यह सोच अपने दोनों पैर घिसती है।

१३. धन्य गृहस्थ आश्रम

(१) घर आनन्द से युक्त हो, सन्तान बुद्धिमान् हो, पति-पत्नी में प्रेम हो, इच्छा पूरी करने वाला धन, सेवा, प्रभु भक्ति व पूजा, घर में प्रतिदिन मीठा भोजन, निरन्तर सत्संग, आज्ञा पालक सेवक, प्रतिदिन अतिथि सेवा—जिस परिवार में यह सब हो, वह गृहस्थ धन्य है।

(२) विद्वानों की दया की भावना से, अपनी इच्छा से दुःखी को दिया अल्पदान भी अनन्त फलदायक होता है। विद्वानों को जितना दिया जाता है, हे राजन्! वह अधिक होकर ही फलदायक होता है।

(३) अपने वर्ग के प्रति उदारता, दूसरों पर दया, दुर्जनों के प्रति दृढ़ता, उत्तम पुरुषों से प्रेम, दुष्टों के प्रति सावधानता, विद्वानों के प्रति नम्रता, शत्रुओं के प्रति वीरता, गुरुजनों के प्रति सहनशक्ति, नारी वर्ग में चातुर्य—इन कलाओं में जो समझदार हैं, उन्हीं के आश्रय यह संसार ठहरा हुआ है।

(४) दोनों हाथ दान से रहित, दोनों कान वेद-शास्त्र के विरोधी, दोनों नेत्र महात्माओं के दर्शन से वंचित, दोनों पैर तीर्थ-यात्रा से रहित, केवल अन्याय से कमाए धन से पेट भर अभिमान से ऊँचा सिर करने वाले, धूर्त्त गीदड़ सदृश हे मानव! निन्दा के योग्य इस शरीर को शीघ्र छोड़ दे।

(५) जिनकी भक्ति परमात्मा के प्रति नहीं है, जिनकी जिह्वा भक्तिपूर्ण प्रभु गुणगान में नहीं लगी, जिनके कान वेद वाणी सुन पवित्र नहीं हुए, ऐसे लोगों को कीर्तन का मृदंग धिक्, धिक्, तान्—ऐसा लगातार कहता है।

(६) वसन्त ऋतु में करील के वृक्ष पर पत्ता नहीं आता तो वसन्त का क्या दोष? दिन में यदि उल्लू को दिखाई नहीं देता तो सूर्य का क्या दोष? चातक के मुख में यदि वर्षा का जल नहीं पड़ता तो मेघ का क्या दोष? भाग्य ने पहले से ही माथे पर जो लिख दिया है, उसे कौन मिटा सकता है?

(७) दुष्टों में साधु पुरुषों के संग से साधुता आ जाती है पर दुष्टों के संग से भी उत्तम लोग नीच नहीं हो जाते। फूल की सुगन्ध को मिट्टी ग्रहण कर लेती है पर मिट्टी की गन्ध को फूल ग्रहण नहीं करता।

(८) साधु पुरुषों का दर्शन पुण्य रूप है क्योंकि साधु ही तीर्थ रूप है। तीर्थ-यात्रा का फल समय के बाद मिलता है पर साधु समागम तत्काल फलदायक होता है।

(९) कोई किसी विद्वान् से पूछता है—हे विप्र ! इस नगर में सबसे बड़ा कौन है? उत्तर मिलता है—कि ताड़ के पेड़ों का समुदाय। नगर में दानी कौन है? उत्तर—धोबी क्योंकि वह प्रतिदिन प्रातः वस्त्र लेकर शाम को दे देता है। चतुर कौन है? उत्तर—दूसरों का धन और स्त्री चुराने वाला। हे मित्र! तो तुम कैसे जीवित रहते हो? उत्तर—मैं जहर के कीड़े की तरह किसी प्रकार जीता हूँ।

(१०) विद्वानों के पैर धोने से जिस घर में कीचड़ नहीं होता, वेदशास्त्रों की जहाँ ध्वनि नहीं, यज्ञ में स्वाहा—स्वधा से जो घर वर्जित है—ऐसे घर श्मशान के तुल्य हैं।

(११) सत्य मेरी माता, ज्ञान मेरा पिता, धर्म मेरा भाई, दया मेरी मित्र, शान्ति पत्नी, क्षमा पुत्र—यह छः मेरे बन्धु-बान्धव हैं।

(१२) शरीर अनित्य है, सम्पत्ति सदा रहने वाली नहीं, मृत्यु सदा समीप है, इसलिए धर्म का संचय करना चाहिए।

(१३) परस्त्री को मातावत्, परद्रव्य को मिट्टी के ढेले के सदृश और सब प्राणियों को जो आत्मवत् देखता है, वही पंडित है।

(१४) धर्म में सदा तत्परता, मुख में मिठास, दान के लिए उत्साह, मित्र को धोखा न देना, गुरु के प्रति विनय का भाव, चित्त में सदा गम्भीरता, आचार में पवित्रता, उत्तम गुणों में आकर्षण, शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा, रूप में सुन्दरता, प्रभु में भक्ति—यह सब गुण हे राम! तुम में ही हैं।

(१५) हे राम! काष्ठ कल्प तरु है, सुमेरु पहाड़ है, चिन्तामणि पत्थर है, सूर्य तीक्ष्ण किरणों वाला है, चन्द्रमा क्षीण होता रहता है, समुद्र खारा है, काम देव बिना शरीर का है, राजा बलि दैत्य पुत्र है, कामधेनु पशु है। इतने उत्तम यह सब पैदा हुए हैं। तब हे राम! मैं तुलना करता हूँ, तुम्हें किसकी उपमा दूँ? अर्थात् तुम सर्वश्रेष्ठ हो।

(१६) बिना विचारे खर्च करने वाला, असहाय होकर झगड़ा करने वाला, और सभी जगह व्याकुल रहने वाला मनुष्य शीघ्र नष्ट हो जाता है।

(१७) बुद्धिमान् भोजन की चिन्ता न करे, केवल धर्म का ही चिन्तन करे। यह निश्चय है कि मनुष्यों का आहार जन्म के साथ ही पैदा हो जाता है।

(१८) लगातार एक-एक बूंद से घड़ा भर जाता है। इसी प्रकार धर्म, धन और विद्या का धीरे-धीरे संग्रह करे।

(१९) दुष्ट वह है जो आयु के पक जाने पर भी दुष्ट रहता है। पूर्ण पका हुआ भी इनारू नाम का फल मीठा नहीं होता।

१४. मन का महत्त्व

(१) मनुष्य उत्तम कर्म द्वारा एक घड़ी व क्षण भर भी जीए तो अच्छा है किन्तु दोनों लोकों के विरोधी कष्टमय जीवन से कल्प भर भी जीना श्रेष्ठ नहीं है।

(२) बीते हुए का शोक नहीं करना चाहिए और भविष्य की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। सामने आए हुए समय को देखकर विद्वान् कार्य में प्रवृत्त होता है।

(३) उत्तम स्वभाव से ही, देवता, सज्जन और पिता सन्तुष्ट होते हैं। बन्धु

वर्ग खान-पान से और मीठी तथा श्रेष्ठ वाणी से पंडित प्रसन्न होते हैं।

(४) अहो ! आश्चर्य है कि महात्माओं के स्वभाव विचित्र होते हैं। वे लक्ष्मी को तृण के समान समझते हैं और उसके प्राप्त होने पर उसके बोझ से नम्र हो जाते हैं।

(५) जिसे किसी से मोह है, वही डरता है, मोह ही दुःख का हेतु है। कष्टों का मूल मोह ही है। उसे छोड़ सुख में रहे।

(६) आने वाली बातों को पहले ही सोचकर करने वाले और आई हुई विपत्ति पर तुरन्त विचार करने वाले—यह दोनों सुखी रहते हैं और जो होगा सो होगा—ऐसा सोचने वाला नष्ट हो जाता है।

(७) जैसा राजा वैसी प्रजा। धर्मात्मा राजा के राज्य की धर्मात्मा और पापी के राज्य की पापी और मध्यम वर्ग के राजा की प्रजाएँ मध्यम—अर्थात् प्रजा राजा का अनुकरण करती है।

(८) मैं धर्महीन मनुष्य को जीवित रहते हुए भी मृतवत् ही समझता है। धर्म युक्त मनुष्य चिरजीवी होता है—इसमें सन्देह नहीं।

(९) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इनमें से एक को भी जिसने प्राप्त नहीं किया, उसका जन्म व्यर्थ है।

(१०) नीच मनुष्य दूसरे की अत्यन्त तीक्ष्ण यश रूपी अग्नि से जलते हैं और उस पद तक न पहुँचने के हेतु दूसरों की निन्दा करते हैं।

(११) विषयों में मन की आसक्ति ही बन्धन का कारण है और विषय-वासना रहित मन मुक्ति का कारण है।

(१२) मन ही मनुष्यों के बन्ध और मोक्ष का हेतु है। परमात्मा का ज्ञान प्राप्त होने पर देहाभिमान नष्ट हो जाता है और मन समाधि युक्त हो जाता है।

(१३) मन से इच्छित सब सुख किसे मिलते हैं ? किसी को भी नहीं। यह तो ईश्वर के वश में है। इसलिए सन्तोष का ही आश्रय लेना चाहिए।

(१४) जैसे हजारों गौओं के बीच बछड़ा अपनी माता के पास ही जाता है, ऐसे ही कृत कर्म कर्त्ता का ही अनुसरण करते हैं।

(१५) अत्यवस्थित कार्य करने वाले को जनसमुदाय व वन स्थल—कहीं भी सुख नहीं प्राप्त होता है क्योंकि जन-समूह का संसर्ग उसे जलाता और वन निर्जन होने से उसे जलाते हैं।

(१६) जैसे मनुष्य कुदाल से खोद भूमि में से जल को प्राप्त करता है, वैसे ही शिष्य सेवा से गुरु से विद्या प्राप्त करता है।

(१७) मनुष्य का कर्म-फल भोग कर्म के ही आधीन है। बुद्धि कर्म के अनुसार ही होती है। अतः बुद्धिमान् और आचार्य पूर्ण विचार कर ही कार्य करते हैं।

(१८) अपनी पत्नी, भोजन और धन—इन तीनों में सन्तोष करना चाहिए पर विद्या, जप और दान—इन तीनों में कभी सन्तोष नहीं करना चाहिए।

(१९) एक भी अक्षर पढ़ाने वाले गुरु को जो प्रणाम नहीं करता, वह कुत्ते की सैकड़ों योनियाँ भोग कर चाण्डाल योनि में पैदा होता है।

(२०) प्रलय काल में चाहे मेरु पर्वत डगमगाए और कल्प के अन्त में सातों समुद्र चलित हो जाएँ पर उत्तम पुरुष अपने निश्चित मार्ग से कभी विचलित नहीं होते ।

१५. मानव देह की श्रेष्ठता

(१) पृथ्वी पर तीन रत्न हैं, जल, अन्न और सुभाषित। पर मूर्ख पत्थर के टुकड़ों को ही रत्न समझते हैं ।

(२) निर्धनता, रोग, दुःख, बन्धन और दुर्व्यसन —यह मनुष्यों के अपने आत्मा के अधर्म रूपी वृक्ष के फल हैं ।

(३) धन, मित्र, पत्नी और पृथ्वी—यह बार-बार मिल जाते हैं पर मानव देह बार-बार नहीं मिलता है ।

(४) बहुत सारी शक्तियों का समूह शत्रुओं को जीत लेता है, जैसे वर्षा की धारा को धारण करने वाले मेघ के जल का निवारण तृण समूह से भी हो जाता है ।

(५) पानी में तेल, दुष्ट में गुप्त बात, उत्तम पात्र में दिया गया दान और बुद्धिमान् के पास थोड़ा शास्त्र ज्ञान भी—अपनी शक्ति से विस्तृत हो जाते हैं ।

(६) धार्मिक कथा सुनने, श्मशान में और रोग आने पर जैसी बुद्धि होती है—यदि वह स्थिर रहे तो संसार के बन्धन से कौन जीव छुटकारा नहीं पा सकता ?

(७) पश्चात्ताप से जैसी बुद्धि उत्पन्न होती है, वह यदि पहले भी रहे तो किसका भाग्योदय न होगा ।

(८) दान में, तपस्या में, वीरता में, ज्ञान में और नम्रता में—इनमें से किसी में भी विशेषता देख आश्चर्य नहीं करना चाहिए क्योंकि पृथ्वी अनेक रत्नों से भरी है ।

(९) जिसके मन में जिसके प्रति अपनत्व है, वह उससे दूर रहता हुआ भी दूर नहीं है और जो हृदय में स्थान नहीं प्राप्त कर सका, वह समीप होते हुए भी दूर ही है ।

(१०) जिससे अपना लाभ प्राप्त करना चाहे, उससे सदा प्रिय बोले । जैसे, शिकारी मृग को मारने के लिए सदा मीठे स्वर में गीत गाता है ।

(११) राजा, अग्नि, गुरु और स्त्री—इनके अत्यन्त समीप होने से नाश और दूर रहने पर कोई फल नहीं मिलता, इसलिए, मध्यम व्यवहार करना चाहिए ।

(१२) अग्नि, जल, स्त्री, मूर्ख, साँप और राजकुल —इन छः का सेवन सावधानता से करना चाहिए क्योंकि यह प्राण हरने वाले हैं ।

(१३) जिसके पास गुण है और जिसके पास धर्म है, वही जीवित है । गुण और धर्म से हीन का जीवन व्यर्थ है ।

(१४) यदि एक ही कर्म से सारे जगत् को वश में करना चाहते हो तो पहले पन्द्रह छिद्रों (मुखों) में चरने वाली मन रूपी गौ को संयम में लाओ । यह पन्द्रह मुख हैं—आँख, कान, नाक, जीभ, त्वचा, मुख, हाथ, पैर, लिंग, गुदा, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द ।

(१५) जो प्रस्ताव के योग्य बातों को और प्रभाव के अनुसार प्रिय कार्य व वचन को और अपनी शक्ति के अनुसार क्रोध को जानता है, वही पंडित है ।

(१६) एक ही वस्तु अपनी-अपनी दृष्टि से तीन प्रकार से देखी जाती है, जैसे सुन्दर नारी, योगी के लिए मृतक के रूप में कामुक के लिए कामिनी के रूप में और कुत्तों द्वारा माँस के रूप में देखी जाती है ।

(१७) अतिसिद्ध औषध, धर्म, अपने घर के दोष, मैथुन, बुरा भोजन और बुरी मृत्यु—बुद्धिमान् इन्हें किसी को न बताए ।

(१८) कोकिल के मौनपूर्वक दिन तभी तक बीतते हैं, जब तक वह सबको आनन्द देने वाली उसकी वाणी का प्रारम्भ नहीं होता ।

(१९) धर्म, धन, अन्न, गुरु का उपदेश और औषध—इनका संग्रह उत्तम प्रकार से करना चाहिए, अन्यथा कल्याण नहीं होता ।

(२०) दुष्ट को साथ छोड़, सज्जन का संग कर, दिन रात धर्म कर और नित्य ईश्वर का स्मरण कर ।

१६. विद्वान् और कुलीन

(१) सब प्राणियों के प्रति दया की भावना होने से जिसका चित्त पिघल जाता है, उसी को ज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति होती है, जटा-भस्म लगाने से क्या ?

(२) जो गुरु एक ही अक्षर शिष्य को पढ़ा देता है, उस छात्र के लिए पृथ्वी की कोई वस्तु ऐसी नहीं जिसे देकर वह ऋण मुक्त हो जाए ।

(३) दुष्ट और कांटे से बचने के दो ही उपाय हैं—जूतों से उनका मुख तोड़ना अथवा उनसे दूर ही रहना ।

(४) गन्दे वस्त्र वाले, दाँतों पर मैल वाले, बहुत खाने वाले, कठोर भाषी, सूर्योदय और सूर्याण काल में सोने वाले को लक्ष्मी छोड़ देती है, चाहे वह साक्षात् विष्णु ही क्यों न हो ?

(५) धन हीन को मित्र, पत्नी, नौकर और हितैषी छोड़ देते हैं। वही जब धन वाला हो जाता है, तो फिर यह सब उसका आश्रय ले लेते हैं ।

(६) अर्थ ही मनुष्य का बन्धु है । अन्याय से प्राप्त किया धन दस वर्ष तक रहता है, ग्यारहवें वर्ष के आने पर मूल सहित नष्ट हो जाता है ।

(७) बुरा भी समर्थ के लिए अच्छा है और अच्छा भी नीच के लिए दोष-कारक हो जाता है, जैसे अमृत राहु के लिए मृत्यु और विष शंकर के लिए भूषण हो गया ।

(८) भोजन वही है जो विप्रों के भोजन से बचे, भलाई वही है जो दूसरों के लिए की जाती है, बुद्धिमान् वही है जो पाप नहीं करता और धर्म वही है जिसमें दम्भ नहीं है।

(९) मणि पैर के आगे लोटती हो काँच सिर पर धारण किया गया हो। पर

खरीदने और बेचने के समय कांच-कांच ही रहता है और मणि-मणि ही रहती है।

(१०) शास्त्रों का अन्त नहीं, विद्याएँ अनेक प्रकार की हैं, जीवन का समय कम और विघ्न अनेक हैं। अतः सार वस्तु ही ग्रहण करनी, जैसे हँस जल में से दूध ही लेता है।

(११) दूर से आये, मार्ग से थके आये, विना जरूरत के घर आये—ऐसे अतिथि को जो बिना खिलाए खाता है, वह चाण्डाल है।

(१२) चारों वेदों और अनेक धर्म शास्त्रों को बुद्धिहीन पढ़ तो लेते हैं पर आत्मज्ञान से रहित हैं—जैसे कड़छी सब व्यंजनों में चलती हुई भी रस को नहीं जानती।

(१३) इस संसार में द्विज रूपी नौका धन्य है। समुद्र को पार करने में इसकी गति उलटी है। इसमें ऊपर बैठने वाला नहीं किन्तु नीचे बैठने वाला पार होता है, विद्वानों के प्रति विनम्र होना चाहिए।

(१४) दूसरे के घर जाकर कौन छोटा नहीं हो जाता? देखो, यह अमृत का भण्डार, औषधियों का स्वामी, अमृत शरीर और शोभा युक्त चन्द्रमा, सूर्य के मंडल में जाते ही प्रकाशहीन हो जाता है।

(१५) कुमुदिनी के पत्तों के बीच स्थित कमलिनी के पराग (रज) के मद आस्वादन से मतवाला हो और आलसी बन यह भौंरा दैववश परदेश में आकर कौरेय के पुष्प रस को ही बड़ा समझने लगा है।

(१६) लक्ष्मी कहती है—हे नाथ! अगस्त्य ने मेरे पिता (समुद्र) को क्रोध से पी डाला, भृगु ने मेरे स्वामी (विष्णु) की छाती में लात मार दी। बड़े-बड़े विद्वानों ने बचपन से बुढ़ापे तक मेरी वैरिणी (सरस्वती) को अपने मुँह में रखा और प्रतिदिन शंकर पूजा के लिए मेरा घर (श्रीफल पत्र) तोड़ते हैं—इन कारणों से दुःखी हो आपके और द्विजों के घर को छोड़ देती हूँ—यह मैं उचित ही करती हूँ।

(१७) बन्धन अनेक हैं पर प्रेम का बन्धन निराला है। लकड़ी के छेदन में समर्थ भी भौंरा कमल की कलियों में निष्क्रिय हो जाता है।

(१८) कटा हुआ चन्दन वृक्ष अपनी गंध नहीं छोड़ता, वृद्ध गजराज भी क्रीड़ा को नहीं छोड़ता, ईख पेरी गयी भी मिठास नहीं छोड़ती, कुलीन पुरुष क्षीण होने पर भी शील के गुणों को नहीं छोड़ता।

१७. धार्मिक और सम्मान युक्त जीवन

(१) संसार से छुटकारा पाने के लिए विधिवत् ईश्वर-चिन्तन नहीं किया, स्वर्ग के द्वार खोलने में सहायक धर्म का अर्जन नहीं किया, ऐसे व्यक्ति का जीवन व्यर्थ ही है।

(२) धन को पाकर कौन अभिमानी नहीं हुआ? किस विषय भोगी की आपत्तियाँ नष्ट हो गयीं? इस पृथ्वी पर कामवासना से किसका मन ऊबा नहीं?

(३) राजा का अतिप्रिय कौन हुआ? काल के सामने कौन टिक सका? कौन

भिक्षुक आदर को पा सका ? कौन दुर्जन संसार मार्ग पर कल्याण पूर्वक चल सका ?

(४) सोने का मृग कभी बना नहीं, न ही पहले कभी देखा व सुना गया। तथापि राम को इसकी प्राप्ति की इच्छा हुई। विनाशकाल आने पर बुद्धि उलटी हो जाती है।

(५) नीचे आसन पर भी बैठा पुरुष उत्तम गुणों से बड़प्पन को पाता है। भवन के शिखर पर बैठा कौआ क्या गरुड़ के सदृश हो सकता है ?

(६) गुणों की ही सर्वत्र पूजा होती है, बड़ी सम्पत्तियों की नहीं। क्या पूर्ण-मासी का चन्द्रमा उसी प्रकार नमस्कार योग्य माना जाता है, जैसा निष्कलंक द्वितीया का चन्द्रमा।

(७) दूसरों से गाए जाने वाले गुणों के फलस्वरूप गुणहीन व्यक्ति भी गुणी हो जाता है। पर अपने मुंह से अपनी प्रशंसा करने वाला इन्द्र भी छोटा हो जाता है।

(८) विवेकी पुरुष को गुण प्राप्त कर वह आकर्षक वन जाते हैं। सोने में जड़ा हुआ रत्न स्वयं ही अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो जाता है।

(९) आश्रयहीन मनुष्य गुणशाली होता हुआ भी कष्ट प्राप्त करता है, जैसे, अनमोल श्रेष्ठमणि की शोभा भी स्वर्ण के आश्रय से ही होती है।

(१०) अत्यन्त दु:ख से और धर्म को छोड़ने तथा शत्रुओं के सम्मुख झुकने से जो धन प्राप्त होता है, वह धन मुझे प्राप्त न हो।

(११) केवल वधू के सदृश घर में बैठी उस सम्पदा से क्या लाभ जो सदा बन्द रहे। धन वही श्रेष्ठ है जो सब के उपयोग में आने वाला हो।

(१२) धन, जीवन के साधन, स्त्री और भोजन—इनमें सभी प्राणी असन्तुष्ट रह कर संसार से चले गए और चले जाते हैं और चलते जाएँगे।

(१३) सभी दान, यज्ञ, होम, बलि वैश्व देव—क्रियाएँ नष्ट हो जाती हैं पर उत्तम व्यक्तियों को दिया गया दान और सब ज़ीवों के प्रति अभय दान—यह नष्ट नहीं होते।

(१४) तिनका हलका होता है, उससे भी हलकी रुई और रुई से भी हलका याचक होता है। तब वायु इसे क्यों नहीं उड़ा ले जाता ? इसलिए कि वायु डरता है कि मुझसे भी यह माँगने लगेगा।

(१५) मानहानि के जीवन की अपेक्षा प्राण छोड़ना श्रेष्ठ है क्योंकि प्राण त्यागने से तो एक क्षण कष्ट होता है पर अपमान से प्रतिक्षण दु:ख होता है।

(१६) प्रिय बोलने से सब प्रसन्न होते हैं। इसलिए मीठा ही बोले। वचनों में कंजूसी क्यों ? संसार रूपी अचल वृक्ष के अमृत रूप दो ही फल हैं--सरस मीठा वचन और श्रेष्ठ पुरुषों की संगति।

(१७) अनेक जन्मों में अभ्यास किया हुआ जो दान, अध्ययन और तप रहता है, उसी के अभ्यास से मनुष्य पुनः इस जन्म में अभ्यास करता है।

(१८) जो विद्या पुस्तकों में है, जो धन दूसरों के हाथ में है यह दोनों समय आने पर लाभदायक नहीं हो सकते। विद्या अपने कंठ में हो और धन अपनी गाँठ में हो।

१८. गुण-दोष विवेचन

(१) जिन्होंने केवल पुस्तकों को पढ़ा किन्तु गुरु से नहीं पढ़ा, वह गर्भवती व्यभिचारिणी स्त्री के सदृश सभा में शोभा प्राप्त नहीं कर पाते।

(२) उपकार के बदले उपकार और हिंसा पर प्रतिहिंसा करनी चाहिए। इसमें दोष नहीं आता। दुष्ट के प्रति दुष्टता करनी चाहिए।

(३) जो बहुत दूर है, जो कष्ट साध्य है और जो दूर स्थित है तप से वह प्राप्त हो सकता है। तप सबसे प्रबल है।

(४) मनुष्य में यदि लोभ है तो अन्य दुर्गुण से क्या ? यदि चुगलीपन है तो अन्य पापों से क्या ? यदि सत्य बोलता है तो अन्य तप से क्या ! यदि मन पवित्र है तो तीर्थ-यात्रा से क्या ? यदि सज्जनता है तो अन्य गुणों से क्या ? यदि कीर्ति है तो आभूषणों से क्या ? यदि उत्तम विद्या है तो धन से क्या ? यदि संसार में निन्दा है तो मृत्यु से क्या ?

(५) जिसका पिता समुद्र है, लक्ष्मी जिसकी बहिन है, ऐसा होते हुए भी शंख भीख माँगता है। बिना दिया हुआ पदार्थ सामने नहीं आता।

(६) शक्तिहीन साधु होती है, धनहीन ब्रह्मचारी होता है, रोगी देवभक्त और वृद्ध स्त्री पतिव्रता होती है।

(७) अन्न दान और जल दान के समान दूसरा दान नहीं, द्वादशी तिथि तुल्य अन्य तिथि नहीं, गायत्री तुल्य मंत्र नहीं और माता समान कोई देवता नहीं।

(८) साँप के दाँत में विष, मधुमक्खी के सिर में विष, बिच्छू की पूँछ में विष पर दुर्जन के सारे अंगों में विष होता है।

(९) पति की आज्ञा बिना उपवास करने वाली नारी अपने पति की आयु नष्ट करती है और नरक में जाती है।

(१०) नारी न दान से, न सैंकड़ों उपवासों, से न तीर्थ-यात्रा से सफल हो सकती है, जैसी पति सेवा से।

(११) पैर धोने से बचा, पीने से बचा और सन्ध्या से बचा जल व्यर्थ होता है। उसे पीने से कोई लाभ नहीं होता।

(१२) हाथ की शोभा दान से, सोने के कंकण से नहीं होती, शरीर की शुद्धि स्नान से चन्दन के लेप से नहीं होती, सम्मान से तृप्ति भोजन से नहीं, ज्ञान से मुक्ति होती है, शरीर के शृंगार से नहीं।

(१३) नाई के घर में बाल बनवाना, पत्थरों पर चन्दन लगाना, जल में अपना मुँह देखना—यह सब लक्ष्मी के नाशक हैं।

(१४) कुन्दरू तुरन्त बुद्धि नाशक, विषय भोग तत्काल शक्ति नाशक और दूध तत्काल बल देता है।

(१५) यदि स्त्री गुणवती हो, घर में लक्ष्मी हो, सन्तान विनयशील हो, और

पुत्र का पुत्र (पौत्र) हो— तो इससे बढ़कर स्वर्ग का सुख क्या है ?

(१६) जिनके हृदय में सदा परोपकार की भावना है, उनकी सारी विपत्तियाँ नष्ट हो जाती और पग-पग पर सम्पत्तियाँ आती हैं।

(१७) भोजन, निद्रा भय और मैथुन—यह मनुष्य और पशु में बराबर हैं। मनुष्य में धर्म की विशेषता है, धर्म के बिना वह पशु तुल्य है।

(१८) गजमद की अभिलाषा से हाथी के पास गए भौंरे मदांध गज द्वारा कानों के फड़फड़ाने से यदि दूर कर दिए गए तो इससे भौंरों की क्या हानि, अपितु गजराज के दोनों गण्डस्थलों की शोभा की ही हानि है। भौंरे तो, फिर भी, किसी विकसित कमल के वन में जाकर बस जाएंगे। अभिप्राय यह कि किसी विद्वान् का धनी द्वारा सम्मान न किए जाने पर विद्वान् की हानि नहीं, धनी की ही हानि है क्योंकि विद्वान् के लिए तो सारा संसार खुला पड़ा है।

(१९) राजा, वेश्या, यमराज, अग्नि, चोर, बालक, भिक्षुक और काँटा—यह आठों दूसरे के दुःख को नहीं जान सकते।

(२०) हे अंधे ! इस भूमि पर गिरे किस पदार्थ को तू देख रहा है। अंधा कहता है—हे मूर्ख ! क्या तू नहीं जानता, मैं अपने बीते युवा काल को ढूंढ़ रहा हूँ।

(२१) हे केतकी ! यद्यपि तू साँपों का घर है—फलहीन है, काँटेदार है, कीचड़ में पैदा होती है, दुःख से प्राप्त होती है—तब भी केवल अपने एक गुण सुगंध से तुम सबकी प्रिय हो। केवल एक गुण ही समस्त दोषों को नष्ट कर देता है।

भर्तृहरि नीति

(१) अज्ञानी सरलता से समझाया जा सकता है और ज्ञानी तो उसकी अपेक्षा भी सरलता से समझाया जा सकता है पर जो थोड़ा-सा जानकर ही गर्व में आ गया है, उसे ब्रह्मा भी नहीं समझा सकता।

(२) मनुष्य मगरमच्छ की नोकीली दाढ़ों से बलपूर्वक मणि निकाल सकता है। चंचल, लहरों से क्षुब्ध समुद्र को भी तैर सकता है। कुपित साँप को भी फूल के हार के समान सिर पर धारणा कर सकता है किन्तु बुराइयों नें फँसे हुए मूर्ख के चित्त को कोई नहीं हटा सकता है।

विवेक

(३) रात-दिन जिसकी स्मृति को मैं चित्त में संजोये रखता हूँ, वह मुझसे प्रेम नहीं करती। वह किसी अन्य पुरुष पर मुग्ध है। उस पुरुष का झुकाव भी किसी अन्य नारी की ओर है। उस पुरुष की अभिलाषित नारी भी मेरी ओर आकृष्ट है। इसलिए रानी को, रानी के चहेते पुरुष को, उस पुरुष की चहेती वेश्या को और मुझे धिक्कार है। सबसे अधिक इस दुष्ट काम-वासना को धिक्कार है जिसने यह सारा कुचक्र तैयार किया।

(४) प्रयत्न पूर्वक पीडने से चाहे बालू में से तेल निकल आए, प्यासे को चाहे मृग मरीचिका में से जल भी पीने को मिल जाए, और घूमते-फिरते चाहे कभी खरगोश के सींग भी मिल जाएँ। यह सब असम्भव चाहे संभव हो जाएँ, पर हठी मूर्ख का सुधारना तो असम्भव ही है।

(५) वह मनुष्य कमल के कोमल तन्तुओं से हाथी को बाँधना चाहता है। शिरीष के फूल की पंखड़ी से हीरे को वींधना चाहता है। शहद की एक बूंद से खारी समुद्र को मीठा करना चाहता है, जो अमृत मय मधुर वचनों से दुष्ट को सन्मार्ग पर लाना चाहता है।

(६) भगवान् ने अपने आधीन मौन रहने का एक ऐसा गुण बनाया है जो

मूर्खता को प्रकट नहीं होने देता। विशेषत : विद्वानों के समुदाय में तो मौन भूषण माना जाता है।

(७) जब मैं थोड़ा जानता था तब मस्त हाथी की तरह गर्व में अन्धा हो गया था। उस समय मैं अपने को सर्वज्ञ समझता था। किन्तु विद्वानों के संग से जब कुछ-कुछ ज्ञान हुआ तो पता चला कि मैं तो मूर्ख हूँ। मेरा वह अभिमान ज्वर की तरह मुझ से दूर हो गया।

(८) कीड़ों से भरे हुए, लार से भीगे, बदबूदार घृणित, माँस रहित सूखी हड्डी को बड़े प्रेम से चबाता हुआ कुत्ता पास में खड़े इन्द्र की भी परवाह नहीं करता। क्योंकि, क्षुद्र मनुष्य अपनी ग्रहण की हुई वस्तु की तुच्छता पर ध्यान नहीं देता।

(९) यह गंगा स्वर्ग से महादेव के शिर पर गिरी, फिर उसके सिर से हिमालय पर, हिमालय से पृथ्वी पर और पृथ्वी से समुद्र में जा गिरती है, इस प्रकार, क्रमशः- नीचे ही गिरती गई। इसी प्रकार विवेक से भ्रष्ट व्यक्ति का सैंकड़ों प्रकार सेअधः पतन होता जाता है।

(१०) जल से अग्नि को शान्त किया जा सकता है, छाते से सूर्य की तेज धूप को, तीक्ष्ण अंकुश से मस्त हाथी को, और उद्धत बैल और गधे को डंडे से वश में किया जा सकता है। शास्त्र में सबकी औषध है। किन्तु मूर्ख को सीधा करने अथवा दुष्ट को सज्जन बनाने की कोई औषधि नहीं है।

(११) जो मनुष्य साहित्य, संगीत तथा अन्य किसी कला से विहीन है वह बिन पूंछ और सींग का साक्षात् पशु है। मनुष्य रूपी यह पशु बिना घास खाये भी जीवित रहता है, अन्यथा पशुओं का चारा भी समाप्त कर देता है।

विद्या का महत्त्व

(१२) जो मनुष्य विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील, गुण और धर्म से हीन है, वह संसार में पृथ्वी पर भारभूत ही मनुष्य के रूप में पशु ही है।

(१३) दुर्गम पर्वतों और जंगलों में पशु-पक्षियों के साथ रह लेना अच्छा किन्तु मूर्ख के साथ इन्द्र के भवनों में भी रहना अच्छा नहीं।

(१४) शास्त्रों के अनुशीलन से सुन्दर वाणी का प्रयोग करने, शिष्यों को पढ़ाने योग्य शास्त्रों पर अधिकार रखने वाले और विख्यात कवि जिस राजा के राज्य में निर्धनता से दुःखी रहते हैं, वह राजा की ही मूर्खता है। जो जौहरी मणि का मूल्य ठीक नहीं आँकता, उसमें मूर्खता जौहरी की है, मणि की नहीं।

(१५) छीनने अथवा चुराने वाले को जो दीख नहीं पड़ता, जो सदा सुख और शान्ति को बढ़ाता है। विद्यार्थियों को देने से जो घटने के बदले उत्तरोत्तर बढ़ता जाता और कल्पान्त में भी जिसका विनाश नहीं होता, ऐसा विद्या रूपी गुप्त धन जिसके पास है। हे नृप गण ! ऐसे विद्वानों से अभिमान छोड़ कर व्यवहार करो क्योंकि उनकी तुलना कौन कर सकता है ?

(१६) अध्यात्म तत्त्व के जानने वाले विद्वानों का निरादर मत करो। तिनके के

समान तुम्हारी तुच्छ लक्ष्मी उन्हें वश में नहीं कर सकती क्योंकि मदोन्मत्त हाथी कभी कमल तन्तुओं से बांधे नहीं जा सकते हैं।

(१७) अत्यन्त क्रोध में आया विधाता हँस को कमल वन का आनन्द लूटने से तो वंचित कर सकता है, किन्तु दूध और पानी को पृथक् करने की उसकी चतुरता को संसार में कोई उससे छीनने में समर्थ नहीं हो सकता।

(१८) सुन्दर बाजूबन्द, चन्द्रमा के समान चमकीला मोतियों का हार, स्नान, चन्दन, पुष्प शृंगार से अलंकृत केश मनुष्य को भूषित नहीं कर सकते। मनुष्य का आभूषण तो सधी हुई और मीठी वाणी है। अन्य समस्त आभूषण नष्ट होने वाले हैं, वाणी ही सच्चा आभूषण है।

(१९) विद्या मनुष्य की सुन्दरता, विद्या ही गुप्त धन है। विद्या भोग, यश और सुख देने वाली है, विद्या गुरुओं की गुरु है। विदेश यात्रायें विद्या बन्धु हैं, विद्या ही सबसे बड़ा देवता है। राजाओं में विद्या का ही आदर होता है। विद्या हीन मनुष्य पशु तुल्य है।

(२०) जिसमें सहन शक्ति है, उसे कवच से क्या? जो क्रोधी है उसे शत्रु की क्या आवश्यकता? जिसकी जाति-बिरादरी है उसे अग्नि से क्या? जिसके हितैषी मित्र हैं उसे अमोघ औषधियों से क्या? यदि दुर्जनों से सम्पर्क है तो साँपों से क्या? जिसके पास सुन्दर विद्या है, उसे धन से क्या? जो लज्जाशील है, उसे आभूषणों से क्या? जो सुकवि है, उसके लिए राज्य का क्या महत्त्व?

(२१) अपनों के साथ सरलता, दूसरों पर दया, दुष्टों के साथ कठोरता, सज्जनों से प्रेम, राजाओं के साथ नीतियुक्त व्यवहार, विद्वानों के प्रति नम्रता शत्रुओं के प्रति शूरता, गुरुजनों के प्रति आदर, स्त्रियों के प्रति बुद्धियुक्त व्यवहार – इन कलाओं में जो पुरुष निपुण हैं उनके आधार पर ही संसार की स्थिति है।

(२२) सत्संग द्वारा बुद्धि की जडता दूर होती, वाणी में सत्य की प्रतिष्ठा होती, सम्मान में वृद्धि होती, और पाप दूर होता है। इससे चित्त प्रसन्न रहता और चारों ओर यश फैलता है। सत्संग से भला क्या कुछ प्राप्त नहीं होता?

सत्-पुरुष

(२३) वीर रस आदि नौ रसों पर अधिकार रखने वाले कवि संसार में सर्वश्रेष्ठ हैं क्योंकि उनके यशरूपी शरीर में बुढ़ापे व मृत्यु का कोई भय नहीं होता।

(२४) क्षुद्र लोग विघ्न के भय से कोई सत्कार्य प्रारम्भ नहीं करते, मध्यम कोटि के लोग प्रारम्भ तो कर देते हैं पर विघ्न आने पर बीच में ही छोड़ देते हैं पर उत्तम प्रकृति के मनुष्य बार-बार विघ्न आने पर भी प्रारम्भ किए काम को पूरा किए बिना नहीं छोड़ते।

(२५) सत्पुरुषों को उचित है कि क्षुद्रजनों से कभी न माँगे, निर्धन मित्र से कभी याचना न करें। जीविका का उपार्जन न्याय मार्ग से करें प्राण चाहे चले जाएँ पर पाप मार्ग में प्रवृत्त न हों। विपत्ति में धैर्य का परिचय दें, सदा सज्जनों के मार्ग

पर चलें। तलवार की धार से भी व्रत पालन का यह मार्ग सज्जनों के लिए स्वाभाविक ही है।

(२६) भूख से व्याकुल, बुढ़ापे से क्षीण शरीर, पराक्रम से हीन, शोचनीय दशा को प्राप्त, नष्ट तेज, मरणासन्न भी, मस्त हाथी के मस्तक को ग्रास बनाने को इच्छुक, अभिमानियों में अग्रसर सिंह क्या कभी सूखी घास खा सकता है? कभी नहीं।

(२७) स्नायु और चर्बी से सने हुए, मांस रहित बैल की हड्डी के टुकड़े को पाकर कुत्ता बहुत प्रसन्न होता है, चाहे उससे क्षुधा शान्त न हो। किन्तु सिंह अपनी गोद में आए हुए गीदड़ को छोड़ हाथी पर आक्रमण करता है। अतः कष्ट के समय भी अपनी शक्ति अनुसार प्रत्येक फल चाहता है।

(२८) कुत्ता टुकड़ा देने वाले के आगे पूँछ हिलाता पैरों पर गिरता, पृथ्वी पर लेट कर मुख और पेट दिखाता है पर हाथी अपने अन्नदाता की ओर गम्भीरता से देखता और सैंकड़ों खुशामद के बाद खाता है।

(२९) इस संसार में उसी मनुष्य का जन्म सार्थक है जिसके जन्म लेने से वंश की उन्नति हो। इस परिवर्तनशील संसार में यूँ तो, अनेक जन्म लेते और मरते हैं।

(३०) पुष्प के गुच्छे के समान दृढ़ विचारशील पुरुष की दो ही गति होती हैं। या तो सबके सिर पर विराजना अथवा जंगल में ही सूख कर गिर जाना।

(३१) यद्यपि बृहस्पति आदि अन्य भी पाँच प्रतिष्ठित ग्रह आकाश में हैं किन्तु विशेष पराक्रमियों से लोहा लेने वाला राहु उनसे वैर नहीं करता। देखो! अमावस्या और पूर्णिमा को कटे सिर वाला राहु पूर्ण तेज युक्त सूर्य और चन्द्रमा पर ही आक्रमण करता है। अर्थात्, वीर पुरुष अपने समकक्ष पर ही आक्रमण करता है निर्बल पर नहीं।

तेजस्वी पुरुष

(३२) शेषनाग ने अपने फणों पर सारे भुवनों को धारण किया है, उस शेषनाग को भी कच्छप ने अपनी पीठ पर धारण किया है। उस कच्छप को भी समुद्र अनायास अपनी गोद में रखता है। अहो! महापुरुषों की उदारता की कोई सीमा नहीं।

(३३) चेतना हीन भी सूर्यकान्त मणि सूर्य के किरण रूप पैर की ठोकर खाकर आग उगलने लगती है। इसलिए चेतनावाण् तेजस्वी पुरुष भला किसी से प्राप्त अनादर को कैसे सहन कर सकता है?

(३४) सिंह का छोटा बच्चा भी मस्त हाथी पर आक्रमण के लिए झपटता है। तेजस्वियों का यह स्वभाव ही है। आयु तेजस्वी बनाने का हेतु नहीं है।

(३५) मनुष्य की वही इन्द्रियाँ हैं, वही व्यवहार है, वही कुशास्त्र बुद्धि है और वही वचन है। किन्तु धन की गर्मी न होने से क्षण-भर में कुछ-का-कुछ हो जाता है, यह आश्चर्य है।

(३६) जिस मनुष्य के पास धन है वही कुलीन, वही बुद्धिमान्, वही शास्त्र-

वेत्ता गुणी, वही वक्ता और सुन्दर भी है। स्पष्ट है, सारे गुण धन में ही रहते हैं।

(३७) खोटी सम्मति से राजा, अधिक मेल-जोल से संन्यासी, लाड-प्यार से सन्तान, विद्या न पढ़ने से ब्राह्मण, कुपुत्र से कुल, दुष्ट की संगत से शील, शराव से लज्जा, बिना देखभाल से खेती, विदेश में अधिक रहने से प्रेम, उद्धतता से मित्रता, अनीति से धन सम्पत्ति और लापरवाही से धन—नाश को प्राप्त होते हैं।

धन का सदुपयोग

(३८) दान देना, भोग लेना और नाश—धन के यह तीन मार्ग हैं। जो पुरुष न दान करता और न भोगता है, उसके धन की तीसरी गति, अर्थात् नाश ही होता है।

(३९) शान पर घिसे हुए हीरे की, युद्ध में विजयी घायल की, मद से क्षीण हुए हाथी की, शरद् ऋतु में कम जल वाली नदी की, द्वितीया के चन्द्रमा की, रति से खिन्न बाल वनिता की, अतिदान से निर्धन हुए पुरुष की—इन सबकी शोभा कृशता अथवा दुर्बलता में है।

(४०) अत्यन्त निर्धनता में मनुष्य मुट्ठी भर जौ के लिए तरसता है। धन आ जाने पर यही पुरुष पृथ्वी को तिनके के समान समझता है। इसलिए गुरुता, लघुता कोई निश्चित नहीं। अवस्था ही मनुष्य को विस्तृत और संकुचित बना देती है।

(४१) हे राजन्! यदि इस पृथ्वी रूपी गौ को अच्छी तरह दोहना चाहते हो तो बछड़ा रूपी प्रजा का भली-भाँति पोषण करो। जब यह बछड़ा निरन्तर पुष्ट किया जाएगा, तब यह भूमि कल्पलता के समान नाना प्रकार के फल-फूल प्रदान करेगी।

(४२) राजाओं की नीति कहीं सच्ची, कहीं झूठी, कहीं कठोर, कहीं मधुर, कहीं मारने वाली, कहीं दया करने वाली, कहीं लोभ वाली, कहीं उदार, कहीं संग्रह करने वाली और कहीं पुष्कल व्ययपूर्ण— वेश्या के समान अनेक रूप धारण करने वाली होती है।

(४३) विद्या की प्राप्ति, यश का प्रसार, विद्वानों का पालन, दान, स्वयं भोगना और मित्रों का रक्षण—यह छः गुण जिनमें नहीं आये, उन पुरुषों को राजा के पास अधिकार पाने से क्या लाभ?

(४४) भगवान् ने भाग्य में जितना भी थोड़ा व अधिक नियत कर दिया है, वह अवश्य मिलेगा। मरू-भूमि में भी जाने पर उसमें कोई कमी नहीं आएगी और सोने के पर्यप्त सुमेरु जाने पर भी उसमें वृद्धि न होगी। अतः धीर बनो और धनवानों के पास जाकर मत गिड़गिड़ाओ। देखो, घड़ा कुँए और समुद्र में से एक समान ही जल ले सकता है।

(४५) हे मेघ! यह बात कौन नहीं जानता कि चातकों के प्राणाधार तुम्हीं हो। फिर हमारे दीन वचनों की क्यों प्रतीक्षा कर रहे हो? अर्थात्, आश्रितों की इच्छा पूर्ति तुम्हें बिना याचना के ही करनी चाहिए।

(४६) हे पपीहा! क्षण भर के लिए सावधान हो मेरी बात सुनो। आकाश में बादल तो बहुत हैं पर सब एक समान नहीं हैं। इनमें से कुछ तो घनघोर वृष्टि से सारी

पृथ्वी को सींच देते हैं और कुछ व्यर्थ ही गरजते रहते हैं। इसलिए, हे मित्र ! जो भी सामने आए उसी से दीन वचन मत कह।

दुर्जन का स्वरूप

(४७) निर्दयता, बिना कारण लड़ाई झगड़ा, दूसरे के धन और स्त्री की इच्छा, सज्जनों और कुटुम्बियों की प्रशंसा को न सहना—यह छः दुर्गुण दुष्टों के स्वाभाविक रूप से होते हैं।

(४८) दुष्ट मनुष्य विद्वान् हो तो भी उसका बहिष्कार करना चाहिए क्योंकि मणि से भूषित सर्प क्या भयंकर नहीं होता ? अर्थात् अधिक भयंकर होता है।

(४९) दुष्ट जन लज्जाशील को मूर्ख, व्रती को दम्भी, पवित्र को छली, शूर को दयाहीन, मुनि को विपरीत बुद्धि, मीठा बोलने वाले को दीन, तेजस्वी को घमण्डी, वक्ता को बड़बड़ाने वाला, शान्त चित्त को निकम्मा कहते हैं। गुणियों का ऐसा कौन-सा गुण है जो दुष्टों ने कलंकित न कर दिया हो ?

(५०) यदि लोभ है तो किसी अन्य अवगुण की क्या आवश्यकता ? यदि चुगली करता है तो अन्य पातक की क्या आवश्यकता ? यदि सत्यवादी है तो अन्य तप की क्या आवश्यकता ? यदि सौजन्य है तो फिर अपनों की क्या कमी ? जिन का यश फैल रहा है, उन्हें अन्य आभूषणों से क्या ? यदि उत्तम विद्या है तो फिर धन से क्या करना ? यदि अपयश है तो मृत्यु से क्या ? अर्थात् जीवित ही मृत के समान है।

(५१) दिन का कान्ति हीन चन्द्रमा, यौवन हीन नारी, बिना कमल का तालाब, सुन्दर मूर्ख, धन लोलुप राजा, निर्धन सत्पुरुष, राजसभा में सम्मानित दुर्जन—यह सातों मेरे मन में कांटे की तरह खटकने वाले हैं।

(५२) जैसे अग्नि हवन करने वाले को भी जला देती है, इसी प्रकार राजाओं का भी कोई मित्र नहीं होता। राजा और अग्नि का विश्वास नहीं करना चाहिए।

(५३) चुप रहने से गूंगा, चातुर्य से बात करने वाले को बकवासी, पास रहने वाले को ढीठ, दूर रहने वाले को अभिमानी, क्षमा करने वाले को डरपोक, असहिष्णु को अकुलीन—इस प्रकार लोग कहते हैं। वस्तुतः, सेवा धर्म अत्यन्त कठिन है और योगियों के लिए भी उसका निभाना कठिन है।

(५४) सब दुष्टों को उभारने वाले, उच्छृंखल, पूर्वजन्म के अधर्म कर्म जिसके प्रकट हो रहे हैं, भाग्य से जिसके पास धन भी है, गुणों से अत्यन्त द्वेष करने वाले दुष्ट के पास रह कर कौन सुखी रह सकता है ?

(५५) जैसे दिन के पहले भाग की छाया पहले लम्बी फिर क्रमशः घटती जाती है, वैसे ही दुष्ट की मित्रता भी पहले बहुत घनिष्ट और फिर धीरे-धीरे कम होती जाती है। सज्जन की मित्रता मध्याह्न की छाया के समान उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है।

(५६) हरिण, मछली और सज्जन—यह तीनों बिना किसी को सताए, घास, जल और सन्तोष से अपना निर्वाह करते हैं पर शिकारी और दुर्जन इनके बिना कारण ही शत्रु हैं।

सज्जन की प्रशंसा

(५७) सत्संग में रुचि, परगुणों में प्रेम, गुरुजनों के प्रति नम्रता, विद्या में व्यसन, पत्नीव्रत धर्म पालन, लोक निन्दा से भय, ईश्वर में भक्ति, मन में संयम और दुष्ट मनुष्यों के संग का त्याग —जिनमें यह सद्‌गुण हैं उन्हें हमारा प्रणाम है।

(५८) विपत्ति में धैर्य, अपनी उन्नति में भी क्षमा, सभा में भाषण चातुर्य, युद्ध में शूरता, यश में इच्छा, शास्त्र में व्यसन—यह छः गुण महात्मा लोगों में स्वभाव से होते हैं।

(५९) गुप्त रूप से दान देना, घर में आए अतिथि का सत्कार, उपकार करके मौन, दूसरे के उपकार का सभा में वर्णन, धन पाकर अभिमान न करना, बिना बुराई की चर्चा के दूसरों के सम्बन्ध में कहना—वह कठोर नियम तलवार की धार पर चलने के समान सत्पुरुषों के लिए किसने बनाए हैं ? अर्थात्, स्वाभाविक ही हैं।

(६०) हाथों द्वारा किया गया त्याग प्रशंसनीय है, गुरुजनों के प्रति सिर झुकाना प्रशंसनीय है, सत्य वचन बोलने वाला मुख प्रशंसनीय है, पराक्रम दिखाने वाले बाहु प्रशंसनीय हैं, हृदय में स्वच्छ वृत्ति और शास्त्र श्रवण से कान प्रशंसनीय होते हैं। यश के अभिलाषी मनुष्य में यह गुण अवश्य होने चाहिए।

(६१) महात्माओं का चित्त सम्पत्ति में कमल से भी कोमल होता है और विपत्ति में पर्वत की बड़ी चट्टान के समान कठोर होता है।

(६२) गर्म लोहे पर गिरी पानी की बूँद का नाम निशान भी नहीं रहता। वही बूँद कमल के पत्ते पर गिरी हुई मोती की तरह झलकती है। पुनः, वही बूंद स्वाति नक्षत्र में समुद्र की सीप में पड़कर मोती ही बन जाती है। इसलिए अधम, मध्यम और उत्तम गुण मनुष्य में संग से ही उत्पन्न होते हैं।

(६३) जो अपने आचरणों से पिता को प्रसन्न रखे, वही सच्चा पुत्र है, जो सदा अपने पति का हित चाहती है, वही पत्नी है, सुख-दुःख में जो बराबर सहायक हो, वही सच्चा मित्र है। यह तीनों सुख जगत् में पुण्यशाली को ही मिलते हैं।

(६४) एक ही ईश्वर की उपासना करनी चाहिए, एक ही मित्र हो चाहे वह राजा हो व संन्यासी, एक ही निवास स्थान हो, चाहे नगर में हो अथवा वन में हो, एक ही भार्या हो चाहे वह सुन्दर स्त्री हो अथवा पर्वत गुफा हो।

(६५) जो सत्पुरुष नम्रता द्वारा ही ऊँचे उठते हैं, दूसरों के गुणों के वर्णन से अपने गुणों को प्रसिद्ध करते हैं, दूसरों का हित करते हुए अपना काम बनाते हैं, कठोर वाक्यों का प्रयोग करने वाले दुष्टों को अपने क्षमा गुण से दूषित कर देते हैं, ऐसे अद्‌भुत कर्म करने वाले महात्मा संसार में सबके पूज्य होते हैं।

(६६) फलों के लगने से वृक्ष झुक जाते हैं, जल से भरे मेघ पृथ्वी की ओर नम्र जाते हैं। इसी प्रकार सज्जन ऐश्वर्य प्राप्त होने पर नम्र हो जाते हैं क्योंकि श्रेष्ठ पुरुषों का यही स्वभाव है।

(६७) कान की शोभा वेद-शास्त्रों को सुनने से ही, कुण्डल पहनने से नहीं,

हाथों की शोभा दान देने से ही, स्वर्ण कंकण पहनने से नहीं, दयाशील पुरुषों का शरीर परोपकार से ही शोभित होता है, चन्दन आदि से नहीं।

(६८) सच्चा मित्र वही है जो पाप से रोकता और श्रेष्ठ मार्ग पर लगाता है, गुप्त बातों को छिपाता और गुणों को प्रकट करता है, संकट आने पर कभी नहीं छोड़ता और समय पर देता है। अच्छे मित्र के यही लक्षण उत्तम पुरुष बताते हैं।

(६९) सूर्य बिना प्रार्थना किए ही कमलों को खिलाता है और चन्द्रमा भी स्वयं ही कुमुदों को प्रफुल्लित करता है। बादल भी बिना माँगे जल बरसाता है। इसी प्रकार सज्जन पुरुष स्वयं ही परोपकार के कामों में लगे रहते हैं।

(७०) निज स्वार्थ को लक्ष्य में न रखते हुए उत्तम पुरुष परोपकार करने वाले होते हैं। अपने काम को न बिगाड़ते हुए दूसरों की भलाई करने वाले सामान्य पुरुष होते हैं। अपने स्वार्थ को पूरा करने के लिए जो दूसरों का अहित करते हैं वे राक्षस हैं और जो बिना किसी अपने स्वार्थ के दूसरों के हित का नाश कर देते हैं, उन्हें किस नाम से पुकारा जाए, यह हम नहीं जानते।

(७१) दूध ने अपने साथ मिले हुए जल रूपी मित्र को अपना गुण और रूप देकर अपने जैसा बना लिया। इस उपकार के बदले जलने भी दूध को जलता हुआ देख पहले अपने आपको अग्नि के अर्पण कर दिया, फिर दूध ने भी मित्र की यह अवस्था देख अग्नि में गिरना चाहा पर जल के छींटों के रूप में फिर अपने मित्र को प्राप्त हो शान्त हुआ। सज्जनों की मित्रता इसी प्रकार की होती है।

(७२) समुद्र में एक ओर शेषनाग पर विष्णु सो रहे हैं, दूसरी ओर दैत्य समूह निवास कर रहा है। एक ओर शरणागत पर्वत पड़े हुए हैं। दूसरी ओर अग्नियों को धारण किए बडवानल धधक रहा है। आश्चर्य है, इतने पर भी समुद्र का महान् पराक्रमी और भार सहने वाला शरीर अचल और अडिग है।

(७३) तृष्णा को काट कर क्षमा को धारण करो, मद को दूर करो, पाप में प्रीति मत करो, सत्य भाषण करो, सज्जनों के मार्ग का अनुसरण करो, विद्वानों की सेवा करो, सम्मान के योग्य व्यक्तियों का सत्कार करो, शत्रुओं से भी नम्रता का व्यवहार करो, अपने गुणों और यश की रक्षा करो, दुखियों पर दया करो—सत् पुरुषों के यही लक्षण हैं।

(७४) मन, वचन और शरीर द्वारा पवित्रता रूपी अमृत की धाराओं से तीनों लोकों को उपकारों से तृप्त करने वाले, दूसरे के छोटे गुणों को भी बड़ा मान कर अपने हृदय को सदा प्रसन्न रखने वाले, सन्त पुरुष विरले ही होते हैं।

(७५) उस स्वर्ण पर्वत सुमेरु और चाँदी के पर्वत कैलाश से क्या लाभ, जिन पर खड़े हुए वृक्ष जैसे के तैसे ही बने रहते हैं। हमारी दृष्टि में तो मलय पर्वत ही श्रेष्ठ है जिस पर खड़े कंकोल और नीम जैसे वृक्ष भी चन्दन बन जाते हैं।

(७६) देवों ने मूल्यवान् रत्नों को प्राप्त कर ही सन्तोष नहीं किया, न ही भयंकर विष को देख भय किया। उन्होंने तब तक विश्राम नहीं किया जब तक सुधा

को प्राप्त नहीं कर लिया। धीर व्यक्ति लक्ष्य को प्राप्त किए विना कभी विश्राम नहीं लेता है।

(७७) कभी भूमि पर शयन और कभी पलंग पर, कभी शाक-पात से उदरपूर्ति और कभी स्वादिष्ट भोजन, कभी गुदड़ी से शरीर ढाँपना और कभी सुन्दर वस्त्रों को धारण करना—दृढ विचारों वाला मनुष्य सुख-दुख की परवाह नहीं करता।

(७८) ऐश्वर्य की शोभा सज्जनता, शूरता की शोभा वाणी का संयम, ज्ञान की शोभा शान्ति, विद्या की शोभा नम्रता, धन की शोभा सुपात्र को दान, तप की शोभा क्रोध न करना, प्रभुता की शोभा क्षमा और धर्म की शोभा छल रहित होना है। और इन सबका मूल हेतु शील सबसे बड़ा आभूषण है।

(७९) नीतिज्ञ लोग चाहे निन्दा व स्तुति करें, लक्ष्मी (धन) चाहे प्राप्त हो व चली जाए, मृत्यु आज ही हो व युगों के बाद हो, पर धीर पुरुष न्याय के मार्ग से कभी विचलित नहीं होते।

भाग्य और पुरुषार्थ

(८०) पिटारे में वन्द होने से दुःखी, भूख से व्याकुल, जीवन से निराश, साँप के पिटारे में रात को छेद करके चूहा घुस गया। भूखे साँप ने उसे खा लिया और फिर उसी मार्ग से वाहर भी निकल गया। मनुष्यो! देखो, इसी प्रकार भाग्य ही व्यक्ति की घटती और बढ़ती का कारण है।

(८१) आलस्य ही मनुष्य के शरीर में आया महान् शत्रु है। उद्योग के समान दूसरा कोई बन्धु नहीं है। इसका सहारा पकड़ मनुष्य कभी दुःखी नहीं होता।

(८२) कटा हुआ वृक्ष समय पाकर फिर बढ़ जाता है, क्षीण हुआ चन्द्रमा फिर पूर्ण हो जाता है। यह विचार कर मनुष्य कभी घबराता नहीं।

(८३) यद्यपि मनुष्य को अपने कर्मानुसार ही फल मिलता है, बुद्धि भी कर्मानुसार ही होती है। फिर भी, बुद्धिमान् मनुष्य को विचार कर ही काम करना चाहिए।

(८४) गंजा पुरुष सूर्य की किरणों से समाप्त हो छाया की इच्छा से भाग्यवश ताड़ के वृक्ष के नीचे चला गया। वहाँ एक बड़ा फल आवाज़ करता हुआ इसके सिर पर गिर गया और सिर फूट गया। प्रायः, भाग्यहीन मनुष्य जहाँ-जहाँ जाता है, उसके साथ-साथ आपत्तियाँ भी चली आती हैं।

(८५) भगवान् किसी मनुष्य को सर्वगुण सम्पन्न और संसार का भूषण बनाता है किन्तु उसका जीवन क्षणभंगुर होता है। भगवान् की इस मूर्खता पर महान् खेद है।

(८६) करील के वृक्ष पर यदि पत्ते नहीं आते, तो इसमें वसन्त का क्या दोष? उल्लू को यदि दिन में नहीं दीखता तो इसमें सूर्य का क्या दोष? यदि बादल की वर्षा चातक के मुख में नहीं पड़ती तो बादल का क्या दोष? जिसके भाग्य में जो लिखा है, उसे कौन मिटा सकता है?

कर्मफल का महत्त्व

(८७) हम देवों को नमस्कार करते हैं, वे देव विधाता के आधीन हैं। हम विधाता को नमस्कार करते हैं, वह भी कर्म अनुसार फल देने वाला है। जब फल कर्माधीन ही है तो फिर देवों और भगवान् से क्या ? फिर तो कर्मों को ही नमस्कार है जिसे टालने में भगवान् भी असमर्थ है। कर्मफल अवश्य मिलता है, भगवान् का नाम लेने से वह टल नहीं सकता।

(८८) जिस कर्म के प्रभाव से ब्रह्मा कुम्हार के समान संसार की रचना करता है, जिस व्यवस्था के आधीन विष्णु को दस अवतार लेने के कष्टों में जाना पड़ा, रुद्र के हाथ में खप्पर देकर उसे भीख माँगने को बाध्य होना पड़ा। जिस कर्म-व्यवस्था से सूर्य नित्य आकाश में घूमता रहता है, उस कर्म-व्यवस्था के लिए हमारा नमस्कार !

(८९) मनुष्य के लिए सुन्दर आकृति, उत्तम कुल, शील, विद्या और यत्नपूर्वक की हुई सेवा फल नहीं देती। केवल पूर्व तप से संचित कर्म ही समय पर वृक्ष के समान फल देते हैं।

(९०) बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि अच्छा व बुरा काम करने से पहले उसके परिणाम पर विचार करे क्योंकि बिना विचारे अति शीघ्रता से किए कर्म का फल मरण पर्यन्त हृदय में काँटे के समान खटकता रहता है।

(९१) जो अभागा मनुष्य इस मानव देह को पाकर तप आदि द्वारा पवित्र कर्म नहीं करता, वह उस महा मूढ के समान है जो चन्दन के इंधन से वैदूर्य मणि के पतीले में तिल-कणों को पकाता है, आक की जड़ खोदने के लिए सोने के हल से पृथ्वी को जोतता है, अथवा कपूर के टुकड़ों को काट कर खेत की बाड़ लगाता है।

(९२) चाहे मनुष्य मोतियों के लिए समुद्र में गोता लगाए, सोने के लिए सुमेरु पर्वत की चोटी पर चढ़ जाए, संग्राम में शत्रुओं को जीते, व्यापार-कला आदि सब विद्याओं को सीखे, पक्षी की तरह आकाश में उड़ता फिरे, पर कर्मफल कभी टाल नहीं सकता। यह सर्वथा असम्भव है।

(९३) भयंकर जंगल भी उस मनुष्य के लिए सुन्दर नगर बन जाता है, सब लोग उसके मित्र बन जाते और सारी पृथ्वी उसके लिए रत्न पूर्ण बन जाती है जिसके पूर्वकृत अनेक शुभ कर्म है।

उत्तम गुणों का स्वरूप

(९४) लाभ क्या है ? सत् संगति। दुःख क्या है ? दुष्टों का साथ। हानि क्या है ? समय का नाश अथवा समय पर काम न करना। निपुणता क्या है ? धर्म से प्रेम। वीर कौन है ? जितेन्द्रिय। अच्छी स्त्री कौन है ? पतिव्रता। धन क्या है ? विद्या। सुख क्या है ? परदेश में प्रवास न करना। राज्य क्या है ? आज्ञा का सफल होना।

(९५) जो अप्रिय वचन नहीं बोलते, सदा मधुर भाषी हैं, अपनी पत्नी में ही सन्तुष्ट, पर निन्दा से रहित—ऐसे सत पुरुषों से ही यह पृथ्वी सुशोभित है।

(९६) धीर पुरुष कितना ही संकट ग्रस्त क्यों न हो, कभी धैर्य नहीं छोड़ता। अग्नि का मुख भले ही नीचे कर दो, उसकी ज्वाला सदा ऊपर को ही रहती है।

(९७) जिस पुरुष के हृदय पर नारी के कटाक्ष प्रभाव नहीं डालते, जिसके चित्त में क्रोध रूपी अग्नि नहीं है, जिसे इन्द्रियों के आकर्षक विषय नहीं खींचते, ऐसा पुरुष अकेला ही तीनों लोकों को जीत सकता है।

(९८) महान् वीर अकेला ही अपने पराक्रम से सारे संसार को वश में करता है जैसे अकेला सूर्य अपने तेज से सारे विश्व को प्रकाशित करता है।

(९९) उस पुरुष के लिए अग्नि जल के समान, समुद्र एक नाली के समान, क्षुद्र, सुमेरु एक पर्वत शिला के समान, सिंह एक हिरण के सदृश, और विषधर सर्प हार के समान, और प्राण नाशक विष अमृत तुल्य बन जाता है, जिसके जीवन में शील विद्यमान है।

(१००) लज्जा आदि गुणों को उत्पन्न करने वाली, माता सदृश शुद्ध हृदय वाली, और सदा स्वाधीन रहने वाली प्रतिज्ञा को तेजस्वी पुरुष कभी नहीं छोड़ता। भले ही प्राण क्यों न छोड़ने पड़ें?

कुछ उत्कृष्ट पुस्तकें

चरित्र बल	: धर्मपाल शास्त्री एम० ए०	८.००
सच्चाई की करामात	: सत्यार्थी	६.००
पढ़ाई की करामात	: धर्मपाल शास्त्री एम० ए०	६.००
राष्ट्रीय एकता	: प्रो० रामस्वरूप कौशल	९.००
हम एक हैं	: ,, ,,	७.००
देश भक्त शहीदों की गाथाएँ	: श्रीव्यथितहृदय	८.००
धर्मवीर शहीदों की गाथाएँ	: ,, ,,	७.००
देश भक्त बनें	: सत्यव्रत शर्मा	५.००
एकता निर्भयता और सदाचार	: देवदत्त द्विवेदी	६.००
भारतीय वीरांगनाएँ	: राजकुमार अनिल	४.५०
उषाकाल (राष्ट्रीय उपन्यास)	: हरिनारायण आप्टे	१५.००
उषाकाल (किशोर संस्करण)	: ,, ,,	८.००
तूफान के बाद	: जगन्नाथ प्रभाकर	६.००
मालवीय जी के सपनों का भारत	: ईश्वर प्रसाद वर्मा	१२.००
राष्ट्र नेता स्वामी दयानन्द	: राजकुमार अनिल	२.५०
देश भक्त स्वामी श्रद्धानन्द	: ,, ,,	२.५०
सुख की खोज	: डा० सत्यपाल	८.००
हमारे राष्ट्रीय गान	: ओमदत्त शर्मा	६.००
प्यारे नानक की प्यारी बातें	: धर्मपाल शास्त्री	६.००
वीरता भरा जीवन	: ,, ,,	७.००
वीर बालक बनें	: ओमदत्त शर्मा	४.००
अनुशासन (अच्छी आदत)	: विजय कुमारी एम० ए०	२.५०
शिष्टाचार (एक कला)	: ,, ,,	२.५०
स्वामी विवेकानन्द	: राजकुमार अनिल	८.००
अनमोल वचन	: प्रो० सुधाकर एम० ए०	७.००
परमाणु दर्शन	: ,, ,,	६.००
जय हे भारत	: विजयरानी बी० एड०	३.००
विधिना तेरी गति लखि न परै	: श्रीचन्द्र जैन	३.५०
राजस्थान की ऐतिहासिक गाथाएँ	: मदन सिंह देवड़ा	५.५०
दर्शनीय मालवा	: ,, ,,	३.००
प्रेरक जीवन कहानियाँ	: दीनानाथ सिद्धान्तालंकार	४.००